नेहरू-युग
जानी-अनजानी बातें

नेहरू-युग
जानी-अनजानी बातें

लखक

एम ओ मथाई

अनुवादक

विजयकुमार भारद्वाज

दो-वर्षीया प्रिया और पाँच वर्षीया कविता के नाम—

पड़ोस के दो प्यारे बच्चे, जो इस पुस्तक के
लिखने के दौरान अक्सर मेरे साथ खेलते थे,
और अक्सर अपने माता पिता को चकमा
देकर मेरे पास चले आया करते थे।

आमुख

यह पुस्तक न तो इतिहास है और न ही किसी का जीवन चरित। बस इसम मेरी कुछ यादें हैं जो बातचीत के लहजे मे कही गयी हैं। यह अलग बात है कि इसमे भारत के इतिहास के एक महत्वपूण दौर से सबधित एतिहासिक और व्यक्तिपरक तथ्य भी हैं।

मेरे अनेक मित्रा ने मुझसे अपने सस्मरण लिखने का आग्रह कई बार किया और हर बार मेरा यही उत्तर रहा या तो निमुक्त होकर लिखूगा या कतई नही लिखूगा।" इस पुस्तक का लिखने म मेरा मागदशन मुख्य रूप से एक दृष्टि न किया है जा मुझे फ्रेडरिक मसन के तेरह खडो वाले ग्रथ 'नेपोलियन एत सा फेमिल' के पाचवें खड की प्रस्तावना पढकर प्राप्त हुई थी। इसमे वे लिखते हैं 'समय आ गया है कि अब हम किसी लोकप्रिय व्यक्ति के सावजनिक जीवन, जिस पर इतिहास अपना दावा कर सकता है और उसके निजी जीवन म, जिस पर इतिहास का कोई दावा नही है निरथक भिनता दिखाना बद कर दें। हमारे सामने मात्र व्यक्ति हो। व्यक्ति का चरित्र उसकी प्रकृति के समान अविभाजित होता है। जब कोई व्यक्ति एतिहासिक भूमिका अदा कर चुका होता है तो वह इतिहास का हो जाता है। इतिहास के सामने जब भी वह पडता है, इतिहास उसे अपनी गिरफ्त म ल लता है क्याकि उसके अस्तित्व की नगण्य से-नगण्य वस्तु उसकी भावनाआ को प्रकट करनेवाली कोई भी तुच्छ उक्ति और उसकी आदतो के बारे म कोई भी मामूली-सी बात उसके विषय म नयी जानकारी देती है। अगर उसम कोई बुराई या अस्वाभाविक रुझान या उसकी प्रवत्ति का कोई भद्दा पहलू हाता है तो मुझे दुख होता है क्याकि इतिहास म यह सभी आ जायगे। और अगर वह भगा या पगु है तो यह भी इतिहास बता देगा। इतिहास उसके मुह से निकले शब्दा को इकट्ठा करेगा चाहे वे प्यार मे अस्फुट स्वर मे ही कहे गये हा। वह उसकी प्रेमिकाओ स पूछताछ करगा, उसक चिकित्सक से बात करेगा उसके सेवक से सवाल करेगा और उसके मन की सारी बातें जानन वाले से प्रश्न करेगा। अगर कही उसक हाथ उसकी रोकड-वही हाथ लग गयी तो वह उसका बारीकी से अध्ययन करेगा और बतायेगा कि उसकी सेवाआ की व्यवस्था का भुगतान किस तरह किया जाता था उसने किस तरह धन बटोरा या लुटाया और वह अपने पीछे कितनी सपत्ति छोड गया। वह उसके कफन को हटाकर देखेगा कि वह किस रोग स ग्रस्त हाकर मरा और जब

मृत्यु उसके सामने थी तो उसके मन मे अतिम भाव क्या था। जिस दिन से उसने इतिहास म अपनी भूमिका अदा करने का प्रयत्न किया उसने उसी दिन अपने आपको उसे दे दिया।

यही तरीका अपनाने से इतिहास सिर्फ राजनीतिक ब्यौरा और किस्सा भर नही रहेगा बल्कि मानवीय रूप ले लेगा। इतिहास तारीखों और शब्दा नामा और तथ्या का कालानुक्रम आकलन न रहकर कुछ ऐसी वस्तु बन जायेगा जो आपको जीते-जागते जीवन की याद दिलाने लगेगा। उस जीवन की जिसम से अस्थि मज्जा की गध आती है प्रेम का स्वर और पीडा का चीत्कार सुनायी देता है जिसमे उद्दाम भाव केलि करते हैं और जिसम से अत म ऐसे व्यक्ति का ढाँचा तयार होगा जिससे हम भ्रातभाव म भिड सकें।

क्या कहते हैं आप—कि कविता को मानवता के सभी उद्दाम भावो को अभिव्यक्ति देने नाटक को उन्हे मच पर दर्शाने और कथा-साहित्य की कल्पना के आधार पर उन्हे फिर से चित्रित करने का अधिकार दे दिया जाय? इसके विपरीत इतिहास को क्या यह दण्ड दिया जावे कि वह हमेशा के लिए झूठा शान और कल्पित प्रतिष्ठा का बोझ अपने सिर पर उठाये रखे और राजतत्रीय इतिहास लेखन की परपराओं का भारी भरकम चोगा पहन रहे? इस तरह क्या वह परिष्कृत सामान्य तथ्या के दायरे म अपने को सीमित रखे और इसाना के बारे म इस तरह बात करे कि जसे खगोल पिंडा के बारे म बातें की जा रही हो? वर्ना उस पर छिछोरा होने का आरोप थोप दिया जायेगा और आचरण दुराग्रही तथा शुद्धता के आचार्य उसके विरुद्ध फतवा दे डालेगे। क्या इतिहास मानवता का आलेख दश न्यायशैली म सहज वर्जनाओ का आवरण उतारकर ललित वाक्यो म सवेदना के साथ प्रस्तुत करे कि इस इसान ने प्रेम और पाप तथा उद्दाम वासनाओ को अनुभूत किया था? बहुत ही कम स्थितियो म ऐसे राजनीतिक कायकलाप घटित होते रहे गये हैं जिसका शुद्ध राजनीतिक कारण रहा हो। अगर घटित हुए भी है तो कितने!

इस पुस्तक के लिखने म बर्ट्रेंड रसल की असाधारण रूप से स्पष्ट आत्मकथा से भी मैं प्रेरित रहा हू जो तीन खण्डो म है।

इस पुस्तक का लिखना शुरू करने से पहले मैंने अपने मन म से औपचारिक किस्म की सभी व्यक्तिगत निष्ठाए निकालकर ताक पर रख दी। केवल इतिहास के प्रति अपना दायित्व मेरे सामने रहा।

जिन ऐतिहासिक व्यक्तियो के निकट सपर्क म मैं आया इस पुस्तक म मैंने उनका पूर्ण मूल्याकन नही किया है। यह काय तो भविष्य म विद्वान इतिहासकार करेंगे।

अगर किसी पाठक को इस पुस्तक म उद्घाटित कुछ तथ्यो के नगेपन पर धक्का लगता है तो मैं उसे इस पुस्तक के आमुख को फिर से पढ जाने के लिए कहूँगा।

मद्रास

एम ओ मथाई

क्रम

1

नेहरूजी और मैं

1945 म नेहरूजी के जेल से छूटने के तुरत बाद मैंने असम स उन्हे एक पत्र लिखा। मैं उस समय असम म ही था। मैंने उसम लिखा था कि मैं उनके साथ रहकर राष्ट्र की सेवा करना चाहता हूँ। जवाब म उनका कोई पत्र नहीं मिला क्योकि खुफिया पुलिस न उसे बीच म ही रोक लिया था। मैंने एक पत्र और उन्हें लिखा। उन्होन तुरत इसका जवाब दिया और इस बार मुझे यह पत्र मिल गया। उन्होने लिखा था कि वे शीघ्र ही असम आन वाले हैं और तब मैं उनसे मिल सकता हू। उन्होने पत्र म मुलाकात की जगह तारीख और अनुमानित समय भी दे दिया था। मैंने उनसे भेंट की। शुरू म हम आम किस्म की बात करत रहे। मैंने अपने कालिज जीवन के एकमात्र राजनीतिक अनुभव के बार म उन्हे बताया। त्रावणकोर म कांग्रेस का कोई आदोलन नही था। लेकिन सर सी० पी० रामास्वामी अय्यर के दमनकारी शासन के दिनो म मैंन निषेधाज्ञा का उल्लघन करत हुए विद्यार्थियो द्वारा एक सार्वजनिक प्रदर्शन का सगठन किया था। क्षेत्रीय पुलिस का मुख्य अधिकारी प्रदर्शन के मुख्य सगठनकर्ता की गिरफ्तारी क आदेश लेकर कालिज म आया। उसने बहुत स विद्यार्थियो से पूछताछ की लेकिन किसी ने भी उसे मेरा नाम नहीं बताया। मैंन नेहरूजी को यह भी बताया कि मद्रास विश्वविद्यालय से डिग्री लेने के बाद मुझे काम भी करना पडा था क्योकि मैं अपन माता पिता और बहन भाईयो क प्रति अपने दायित्व से भागना नही चाहता था। साथ ही यह भी कह दिया कि मैं अभी तक कुवारा हूँ और आग भी विवाह करन का कोई इरादा नही है और मैं जिंदगी म किसी लक्ष्य की तलाश म हूँ और इसके लिए खतर उठाकर भी जीने के लिए तयार हूँ। विदा होन से पहल मैंने उनस कहा कि इसी महीने मैं अपन माता पिता से मिलन के वास्त थोडे समय के लिए असम स त्रावणकोर जाऊँगा। उन्होन मुझसे कुछ दिना के लिए इलाहाबाद आकर

अपने पास रहने और तसल्ली स बात करने के लिए कहा। इस भेंट के समय हम दोनो मे से किसी को भी सरकार के बदल जान का गुमान नही था हालाँकि बाद मे ऐसा ही हुआ कि एक साल से कम अरसे मे ही सरकार बदल गयी।

दिसबर 1945 म आनद भवन म हुई भेंट म भी इधर उधर की बातें ही हुइ। वे केरल के केला नारियल मसालो झीलो और समुद्रतालो के बारे म कहते रहे। मैंन कालिदास के मलयाली होने की दृष्टि म उन्ह कालिदास का ही एक श्लोक सुनाया यवनि मुख पदमनाम, तत्र केरल योशिताम। सुनकर व हँसने लगे। उन्होने कहा कि हिमालय की शानदार खूबसूरती क बाद भारत म केरल ही सबसे सुदर स्थान है। मैंने बताया कि विध्याचल और पश्चिमी घाट की पवत शृखलाएँ तो हिमालय स भी प्राचीन है और त्रावणकोर म ही एक-दो नगर ऐसे हैं जो पाँच हजार फुट से ज्यादा की ऊचाई पर बस है। मैंने उन्ह यह भी बताया कि अगस्त्यकूडम (अगस्त्य ऋषि का आश्रम) केरल मे ही था और हनुमान जो मारुतमाला (औषधि-पवत) कुमाऊ से लाये थे वह उन्होंने पश्चिमी घाट के पहाडा म ही रख दी थी। उन्ह इन बातो के बारे में कोई जानकारी नही थी।

मेरे इलाहाबाद छोडन के कुछ समय पहल नेहरूजी न जरा अफसोस के साथ वेतन के रूप म कुछ न दने म अपनी असमथता जतायी और कहा कि इस तरह मेरा भविष्य बिगाडने क खयाल से उन्ह नफरत है। मैंने कहा कि मुझ पसा नही चाहिए और इस बारे मे उनकी तसल्ली कराने क लिए मैंने अपनी आर्थिक स्थिति के बारे मे उन्हें जानकारी दी। उन्होने माना कि इतना धन मरे लिए पर्याप्त स भी अधिक है। मैंने उनसे कहा कि मेरे भावी जीवन की फिक्र मेरे अलावा किसी और का नही होनी चाहिए और यह कहकर मैंने अपने स्वतत्र स्वभाव का सकेत दे दिया कि किसी भी सूरत म लक्ष्य के लिए मैं पसे लेकर काम करन को तयार नहीं हूँ। वे मेरी तरफ ध्यान स देखन लगे और उन्होने कहा कि वे जल्दी ही मलाया जाने वाले हैं सचिव क तौर पर मुझे अपने साथ इस यात्रा पर ल जाना चाहगे। लेकिन उन्होने मुझे पहले अपने माता पिता स मिल आन को कहा। उन्हाने फरवरी 1946 के शुरू म मलाया लौटने से जरा पहले इलाहाबाद आने की सलाह दी। मलाया यात्रा पर सचिव के रूप म वे अपन बहनोई गुणोत्तम पुरुषोत्तम हठीसिंग को ले गय।

मैं अपना लगभग सारा सामान आनद भवन म ही छोड गया और योजना क अनुसार माता पिता से मिलकर इलाहाबाद लौट आया। घर पर मुझे पता चला कि मेरे पिताजी ने परिवार की सपत्ति का बँटवारा पहले स ही कर रखा है और सपत्ति का मुख्य भाग मेरे नाम कर दिया है। घर छोडन से पहले मैंन रजिस्टड करारनामे के जरिए अपना हिस्सा अपन भाइयो के नाम कर दिया। मेरे माता पिता नेहरूजी के साथ मेरे काम करने क विरुद्ध थ क्योकि उनका खयाल था कि मुझे शीघ्र ही जेल म जाना पड जायेगा। और हुआ भी यही।

फरवरी 1946 के शुरू म मेरे इलाहाबाद पहुचने के तुरत बाद नेहरू मलाया मे लौट आय। इलाहाबाद म अपनी पहली भेंट के दौरान ही मैंने उनसे कहा था कि उनक साथ एक सप्ताह रहन के बाद ही बता सकूगा कि मैं किस हैसियत म उनके लिए उपयोगी हो सकता हू। यह जानन म मुझे एक सप्ताह से भी कम समय लगा। मैं यह समझ पाया कि नेहरूजी के पास सचिव के रूप म काम करन के लिए कोई उपयुक्त सहायक नहीं है। उन्ह अपने कागजात तक खुद ही फाइल

म लगाने पडते थे। उनकी किताबें, रायल्टिया और पैसे के सामान्य लेनदेन के कागजात बेतरतीब और बिखरे हुए थे। मैंने उन्हें बताया कि मोटे अनुमान से ही मुझे भान हो गया है कि मैं सचिव के रूप में सहयोग देकर ही उनके लिए काम का सिद्ध हो सकता हूँ और मैंने यह अरुचिकर काम एक साल तक करने का फैसला किया है। वे बेहद खुश हुए। मैंने उन्हें अपना यह इरादा कतई नहीं बताया कि वर्ष के खत्म होने से पहले अपने खर्च पर मैं एक आदमी नौकरी पर रखूंगा और उसे प्रशिक्षण देकर रूटीन कामों से मैं छुटकारा ले लूंगा। इस तरह नेहरूजी को शीघ्र ही इस तरह के गैर-जरूरी बोझ से मुक्ति मिल गयी।

1946 में एक दिन मेरे कुछ परिचित अमेरिकी नेहरूजी के दर्शन करने आनंद भवन आये। मुझे वहां देखकर वे नेहरूजी के सामने ही ऊंचे स्वर में बोले 'हैलो मैक'। उसके बाद से नेहरू और उनके बड़े परिवार के सभी सदस्यों के लिए मैं मैक हो गया। बाद में माउंटबैटन-दंपति भी मुझे इसी नाम से बुलाने लगे।

शीघ्र ही हम दिल्ली और शिमला में ब्रिटिश कैबिनेट मिशन और बाद में बंबई में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठकों में उलझ गये। बंबई में नेहरू ने मौलाना आजाद से कांग्रेस-अध्यक्ष की बागडोर अपने हाथ में ली। फिर वायसराय लार्ड वैवल से अंतरिम सरकार बनाने के विषय पर बातचीत हुई। इन दोनों घटनाओं के बीच के अरसे में हम अचानक कश्मीर के दौरे पर निकल गये, जहां सीमा पर ही हमें गिरफ्तार कर लिया गया। इस तरह मुझे नेहरूजी की अंतिम जेलयात्रा पर साथ जाने का गौरव हासिल हुआ लेकिन यह जेल-यात्रा बड़ी छोटी रही—केवल हफ्ता भर की।

2 सितंबर 1946 के दिन अंतरिम सरकार बनी और नेहरूजी मुझे अपने साथ विदेशी मामलों के विभाग में ले गये। शाम को मैंने उनसे कहा कि सरकार में काम करने की मेरी कतई इच्छा नहीं है। अगले दिन मैंने दफ्तर जाने से इंकार कर दिया। 15 अगस्त 1947 तक मैं सरकार से बाहर ही रहा। नेहरूजी मुझसे नाराज थे। लेकिन उनके निवास पर ही करने के लिए बहुत काम था। वहां मैंने स्टाफ में चुन-चुनकर सहायक रखे, जो सरकारी सचिवालय के अंतर्गत ही आते थे। इस तरह रोजमर्रा किये जाने वाले सभी कामों से मुझे छुटकारा मिल गया। नेहरूजी द्वारा किया जाने वाला अधिकांश महत्वपूर्ण काम 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्र अधिराज्य सरकार बनने से पहले उनके निवास पर ही होता था।

अंतरिम सरकार में कार्य सम्हालने के तुरंत बाद नेहरूजी ने अचानक आवेश में आकर उत्तर-पूर्वी सीमांत प्रांत के कबायली इलाकों का दौरा करने का फैसला किया। यह कबायली इलाके विदेशी मामलों के विभाग के अंतर्गत आते थे। उस समय उत्तर-पूर्वी सीमांत प्रांत में बहादुर और बेमिसाल नेता खान साहब के नेतृत्व में कांग्रेस की सरकार थी। लगभग सभी ने इस दौरे के खिलाफ सलाह दी थी लेकिन नेहरूजी अड़ गये और वहां जाने की उनकी जिद और जोर पकड़ गयी। हालांकि मुझे सरकार से कुछ लेना देना नहीं था लेकिन इस दौरे पर मैं उनके साथ गया। इसका जिक्र मैंने आगे इस पुस्तक के 'कुछ किताबें' अध्याय में दिया है। परिणामों से साफ सिद्ध हुआ कि यह दौरा कितने गलत समय, कितनी गलत सलाह पर किया गया था और राजनीतिक दृष्टि से भी बहुत ही गलत था। इससे मुस्लिम लीग को बहुत फायदा हुआ।

सितम्बर 1946 से आगे के दो वर्ष बहुत ही कठिन और बुरे रहे। मैं दिन रात

काम-ही-काम में डूबा रहता और सोने के लिए बहुत ही कम समय मिल पाता। अनगिनत रातें ऐसी रही कि झपकी तक लिए बिना जागकर काट दी। सारी रात टेलीफोन की घंटियाँ बजती रहती थीं। ज्यादातर टेलीफोन शरणार्थियों के वहशी गिरोहों से घिरे मुसलमानों के होते थे। एक बार आधी रात का फोन आया कि वी एफ एच बी तैयबजी के घर पर हमला हो गया है। मैंने तुरंत पुलिस जीप मंगायी और हमारे निवास 17 यार्क रोड पर तैनात सुरक्षा टुकड़ी में से कुछ सिपाही बुलाये। नेहरूजी उस समय ऊपर वाले कमरे में काम में व्यस्त थे। जीप और सिपाहियों के आने का शोर सुनकर वे तेजी से नीचे उतर आये। उन्होंने मुझसे पूछा कि मैं कहाँ जा रहा हूं। मैंने कहा कि यह बताने के लिए समय नहीं है। वे तुरंत जीप में कूद पड़े और मैं ड्राइवर तथा उनके बीच बुरी तरह पिच गया। जीप में मैंने उन्हें सारी स्थिति समझा दी। जब हम बदरुद्दीन तैयबजी के जिन्हें मैं बदर कहता था निवास स्थान पर पहुंचे तो वहाँ दीवान चमनलाल को पाया, जो पास के मकान में ही ठहरे हुए थे और इस समय भीड़ को वहाँ से हटाने की बहादुरी से कोशिश कर रहे थे। चमनलाल में चाहे और खामियाँ कितनी थी लेकिन उनमें फिरकापरस्ती बिल्कुल नहीं थी। हमारे पहुँचते ही भीड़ भाग खड़ी हुई। कुछ सिपाहियों को वहाँ तैनात करके हम चले आये। बदर इस घटना से दहल गये थे लेकिन वे हताश नहीं हुए थे। बदर एक प्रतिष्ठित परिवार से थे जिसने कांग्रेस को एक अध्यक्ष दिया था। उन्होंने और पश्चिमी पंजाब के एक विशिष्ट परिवार से आये आज़िम हुसैन ने भारत सरकार में ही बने रहने का फैसला किया था। वे आई सी एस के लोग थे और अब सेवा से अवकाश प्राप्त हैं। वे ज़ाकिर हुसैन की तरह सच्चे देशभक्त हैं जो खुद भी हत्या से बाल-बाल बचे थे। वे और पाकिस्तानी हमले के खिलाफ कश्मीर की रक्षा में प्राण होम देने वाले ब्रिगेडियर उस्मान तथा पाकिस्तान के 1965 में लड़ी गयी लड़ाई में मरणोपरांत वीर चक्र पाने वाले उत्तर प्रदेश के छोटे-से परिवार से आये बहादुर जवान अब्दुल हमीद जैसे लोग निष्ठा से न डिगने वाले शूरवीर हैं। कोई अकृतज्ञ राष्ट्र ही इन्हें सम्मान देने में चूक कर सकता है।

1947 की गर्मियों में बिना नाम बताये किसी ने नेहरूजी के निवास पर फोन किया कि नयी दिल्ली के एक छोटे-से हॉस्टल में एक मुस्लिम लड़की खतरे में है। मैंने पास ही लगे पुलिस के तंबू से एक पिस्तौल ली और कार में सवार हो गया। कार खालिक नाम का बूढ़ा मुस्लिम ड्राइवर चला रहा था जो नौजवानी में मोतीलाल नेहरू का नौकर रह चुका था। उसकी छोटी-सी दाढ़ी थी और उसे साथ ले जाना ठीक नहीं था लेकिन उस समय वहाँ कोई और ड्राइवर नहीं था। लड़की के कमरे के सामने एक नौजवान लड़का सा सिख बैठा हुआ था। उसके हाथ में लम्बी तलवार थी और आँखों में तैरता खतरनाक गुस्सा। उसने खालिक की तरफ नफरत की निगाहों से देखा। उसे अच्छी अंग्रेज़ी आती थी। मैंने उसे वहाँ से तुरंत चले जाने को कहा। वह गुस्से में उठ खड़ा हुआ और तलवार लेकर मेरी तरफ लपका। मैंने पिस्तौल निकाली और सख्ती से कहा अगर तुम यहाँ से दफा नहीं हुए तो मैं तुम्हारा भेजा बाहर निकाल दूंगा। वह तुरंत भाग खड़ा हुआ। वह जब खालिक से काफी दूर चला गया तो मैं हॉस्टल के कमरे में घुसा और वहाँ मैंने चारपाई पर एक मुस्लिम लड़की को बैठे पाया जो पत्ते की तरह काँप रही थी। वह इतनी घबरायी और डरी हुई थी कि कुछ देर तक तो उसके मुंह से बोल तक न निकला। वह नागपुर के एक मुस्लिम परिवार से थी और

सरकारी नौकरी करती थी। उसका सभी सामान लूट लिया गया था। एक छोटे से सदूक म सिफ एक साडी बची थी। मैंने खालिक को अ दर बुलाया ताकि उसकी दाढी देखकर वह कुछ आश्वस्त हो जाये। मैंने उससे कहा डरो मत, मेरे साथ आओ।" मैं उसे कार मे नेहरूजी के निवास पर ले गया और इ दिरा के कमरे म ठहरा दिया। इन्दिरा उस समय शहर से बाहर गयी थी। कुछ दिनो बाद जब वह सामान्य हो गयी हमने उसे हवाई जहाज से एक सतरी के साथ नागपुर भेज दिया। बाद मे मुझे पता चला कि स्थिति सामान्य हो जाने पर वह दिल्ली वापस आ गयी थी और उसने अपनी सरकारी नौकरी पर फिर से जाना शुरू कर दिया था।

इन्ही दिनों फ्री प्रेस जनल' का एक सवाददाता मेरे लिए स्वेच्छा स कुछ काम कर रहा था। वह दक्षिण का ब्राह्मण था और उसके बाल घुघराले थे। वह बहुत-से समाचारपत्रों को पढता और महत्वपूण खबरो और टिप्पणियो को काट कर उनकी कतरन इकट्ठी करता था। यह दिल्ली से प्रकाशित समाचार-पत्रा स नही होती थी क्योकि नेहरूजी आमतौर पर दिल्ली स प्रकाशित समाचार-पत्र ही पढा करत थ। यह अखबारी कतरनें रोजाना नेहरूजी के सामन रखी जाती थी। एक शाम को वह सवाददाता टहलने के लिए बाहर गया। उसे शरणार्थियो के एक गिरोह न घेर लिया जिनके हाथो म चाकू थे। उन्ह वह मुसलमान लग रहा था। उसने ज़ोरो से प्रतिवाद भी किया कि वह तो दक्षिण भारत का हिंदू है। लेकिन उन्होने उस पर विश्वास नही किया और उससे कपडे उतारन को कहा। वह एकदम सुन्न हो गया और भयानक मौत के लिए उसने समपण कर दिया था क्योकि बचपन म ही उसकी सुन्नत न जाने किन कारणो से करा दी गयी थी, जिनका उसे भी पता न था। अचानक चमत्कार की तरह अनतशयनम आयगर जसा दीखने वाला एक ब्राह्मण वहा प्रकट हुआ जिसके सिर के पीछे छोटी सी चोटी थी और माथे पर त्रिशूल का तिलक बना हुआ था। वह ज़ोर से चीखा 'यह ब्राह्मण है। मैं इसे जानता हूँ।' भीड तुरत छँट गयी। मेरा वह पत्रकार मित्र बाद मे स्पेशल सलेक्शन बोड द्वारा विदेश सेवा म ले लिया गया। बाद म वह राजदूत के पद तक पहुँचा और अब सेवा से अवकाश प्राप्त है।

उन दिक्कत भरे दिना म हमेशा खाने-पीने की चीज़ो की बडी किल्लत रहती थी। कभी कभी दीवान चमनलाल कुछ अडे और गोश्त भेज दिया करत थे। एक बार हमारे गोआवासी खानसामा कोरडियेरो ने मुझसे कहा कि वह कही से मेमना ला सकता है और उसका मास डीप फ्रीज म रखा जा सकता है। मैंने उसे स्वीकृति दे दी। उन दिनो मैं गृह-कार्यों की देखभाल भी कर रहा था क्योकि इ दिरा दिल्ली से बाहर थी। नेहरूजी ने जब मेमने के बारे म सुना तो मुझ पर बहुत नाराज़ हुए। उन्हाने कहा कि अगर फिर कभी मैंने ऐसा किया तो वह गोश्त नही खाएँगे। इसकी ज़रूरत नही पडी क्योकि तब मैंने गवनर जनरल के गह-व्यवस्था नियत्रक से स्थायी प्रबन्ध कर लिया था।

अविभाजित पजाब म नेहरूजी के साथ किय गये दौरे मेरे जीवन के दुखदतम अनुभव थे। हम मुलतान लाहोर और अमृतसर मे तहस-नहस मकाना के मलबे और निरपराध लागो की लाशों के बीच म से गुज़रना पडता था। हमने इतिहास म आबादी का सबसे बडा तबादला देखा जिसकी लपेट म दोनो ओर स आने-जाने वाले 1 करोड 80 लाख लोग आये। कुछ वर्षों बाद मेरे एक मित्र ने पूछा, कौन अधिक नृशस था मुस्लिम या सिख?' मैंने उत्तर दिया एक पक्ष के

आधा दर्जन दूसरे पक्ष के छह के बराबर थे।" शायद सिख कुछ आगे ही थे और हिंदू भी उनसे कोई ज्यादा पीछे नहीं थे।

जब हम 17 याक रोड पर रह रहे थे तो मैंने देखा कि एक हफ्ते से एक गोल मटोल मोटी-सी जवान लड़की हर सुबह वहाँ आती है और बड़ी उदास नजरों से तकती हुई घर के सामने खड़ी रहती है। वह दूसरों की तरह अपने दुख की कहानी सुनाने के लिए नेहरूजी तक पहुंचने की कोशिश भी नहीं करती थी। एक दिन सुबह जब नेहरूजी अपने निवास से चल गये तो मैंने उस लड़की से कहा कि वह मुझे अपने बारे में सब कुछ कह सुनाये। वह पश्चिमी पजाब में मियावाली की रहने वाली थी और वह बी ए बी टी थी। उसके पिता जिला काग्रेस के अध्यक्ष थे। उन्होंने एक दल के साथ अपने परिवार को रेलगाड़ी (शरणार्थी स्पेशल) से दिल्ली भेज दिया था। उन्होंने कहा था कि जब तक उनके इलाके से भारत जाने का इच्छुक हर गैर मुस्लिम आदमी भारत नहीं चला जाता तब तक वे वहां से नहीं जायेंगे। जब उन्हें सतोष हो गया कि उन्होंने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया है तो वे दिल्ली के लिए गाड़ी में बैठ गये। लाहौर में उन्हें गाड़ी से बाहर खींच लिया गया और उनकी नृशस हत्या कर दी गयी। सुनाते समय लड़की की आखों से आसू बह रहे थे। मैंने पूछा कि वह कहां ठहरी हुई है। उसने कहा कनाट सर्कस के पास एक कोठी के कपाउंड में पेड़ के नीचे। मैंने उसे कार में बिठाया और उस पेड़ के नीचे छोड़ आया जहां उसकी दुखी मां बैठी हुई थी। जाने से पहले मैंने उस लड़की को अगले दिन सुबह-सुबह 17 याक रोड आने के लिए कहा और यह भी कहा कि शायद तब मैं उसे कुछ खबर दे सकूं। उस शाम मैंने नेहरूजी को उस लड़की के बारे में बताया। वे उद्वेलित हो उठे और उन्होंने कहा कि वे उसके पिता को जानते थे जो बहुत ही सज्जन व्यक्ति थे। मैंने उनसे उसे अपने सचिवालय में नौकरी पर रखने के लिए कहा। मैंने यह भी सुझाया कि वह उनके निवास पर उन बेबस शरणार्थियों से भेंट और बातचीत करने के काम पर रहेगी जिनकी तादाद हर सुबह लगातार बढ़ती जा रही है। वे तुरंत राजी हो गये। मैं उस समय सरकार में नहीं था लेकिन कुछ दिक्कत के बावजूद मैंने उसके लिए एक जगह निकलवा ही ली। जब अगली सुबह वह आयी तो मैंने उसके सामने नौकरी का प्रस्ताव रखा और यह भी कहा कि उसे अध्यापिका से अधिक वेतन दिलाने का प्रबंध किया जाएगा। उसने कृतज्ञता के साथ प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। उसे स्वागत-अधिकारी के पद पर नियुक्त कर दिया गया। वह वही गोलमटोल मिस विमला सिंधी थी जो बाद में दिल्ली की परिचित हस्ती बनी।

लगभग इसी समय मेरी निगाह एक छोटे-से लड़के पर भी पड़ी जो एकदम बच्चा था और सड़क के किनारे बैठा रो रहा था। उसे अंग्रेजी नहीं आती थी और मैं हिंदी नहीं जानता था। मैं उसे नेहरूजी के निवास पर ले गया। विमला सिंधी की मदद से पता चला कि लड़का पश्चिमी पजाब का है। उसका बाप नहीं था। दिल्ली आते समय वह अपनी मां से बिछुड़ गया था। मैंने इसके लिए कुछ कपड़े बनवाये और एक महीने तक उसे अपने कमरे में रखा। 17 याक रोड के दयालु मालिक ने जो एक धनी व्यक्ति थे लेकिन उनके कोई बच्चा नहीं था उस लड़के को उन्हें सौंप देने के लिए कहा और उसकी शिक्षा का प्रबंध करने का प्रस्ताव रखा। उन्होंने लड़के को पिलानी के एक स्कूल में भेज दिया जिसमें छात्रावास भी था। 17 याक रोड के मालिक ने उसकी मां की भी आर्थिक सहायता

की। लडका कुशाग्र बुद्धि नही था, लेकिन उसने मैट्रिक पास कर लिया। उसे आगे पढाने में कोई तुक नही थी। मैं तब सरकार मे था। मेरे कहने पर उसे प्रधानमंत्री-सचिवालय मे क्लर्क रख लिया गया क्योंकि वहा एक जगह खाली थी। वह लडका मोहन था जो आज भी प्रधानमंत्री के सचिवालय मे है और मुझे *पिताजी कहकर पुकारता हुआ धर्म सकट मे डाल देता है।* शरणार्थी के रूप मे उसे जो छोटा-सा प्लाट मिला था उस पर छोटा-सा घर बनाने मे नेहरूजी और मैंने उसकी मदद की थी। वह अपनी विधवा माँ की बराबर सेवा कर रहा है।

अगस्त 1947 के शुरू मे नेहरूजी ने मुझसे कहा कि वे अपने सचिवालय मे भी मेरी मदद चाहेगे। मैंने उनसे कहा कि मुझे फाइलो से नफरत है और नही जानता कि उनके सचिवालय मे इसके अलावा मैं और क्या काम कर सकता हूँ। उन्होने मुझसे कहा कि शुरू मे मैं वहा के कामो का जायजा ले सकता हूँ और धीरे धीरे काम निकल आएगा। साथ ही यह भी बताया इस महीने की पद्रह तारीख से हमारी सरकार आने वाली है। उनका अधिकाश काम तब सचिवालय मे ही होगा। अगर तुम वहाँ से दूर रहे तो तुम्हे पता नही चलेगा कि क्या हो रहा है। इसके अलावा मैं पूरी तरह से सरकारी नौकरी से भी नही घिरा रहना चाहता। मैं वमन से राजी हो गया। नेहरूजी के कहने पर एक दिन शाम को अपने घर जाते समय विदेशी मामलो के विभाग के महासचिव गिरिजा शकर बाजपयी मेरे पास आये और उन्होने सरकार मे मेरी नियुक्ति के बारे मे बताया। उन्होंने कहा कि मुझे प्रधानमंत्री के व्यक्तिगत निजी सचिव के पद पर नियुक्त किये जाने का प्रस्ताव है और प्रधानमंत्री को आने वाले सभी कागजात मेरे माध्यम से ही उन तक पहुँचेंगे। उन्होने यह भी कहा कि मैं प्रधानमंत्री द्वारा बताए गये गैर-सरकारी कामो को करने के लिए भी स्वतन्त्र रहूँगा। मैंने कहा कि मैं सचिवालय मे शामिल नही होना चाहता और मेरे पद की सीमाएँ तय नही होनी चाहिए, क्योंकि अत मे सचिवालय मे मैं अपने लिए काम पैदा कर लूगा। साथ ही मैंने यह शर्त भी रख दी कि मेरा पद प्रधानमंत्री के पद का प्रतिपूरक होना चाहिए। मेरी सभी शर्तें मान ली गयीं। फिर उन्होने कहा कि नेहरूजी ने कहा है कि मेरा वेतन मेरी मर्जी से तय किया जाय। उन्होने मुझसे पूछा कि मैं कितना वेतन चाहता हूँ। मैंने उत्तर दिया कि मुझे वेतन नही चाहिए। उन्होने कहा कि सरकार मे बिना वेतन के लोगो को नौकरी पर रखने का चलन नही है। *तब मैंने कहा कि मैं पाँच सौ रुपये प्रतिमाह ले लिया करूँगा* और साथ ही यह भी कह दिया कि यह वेतन तदर्थ वेतन होगा किसी ग्रेड मे नही होगा। वे मुस्कराये और उन्होंने मुझे सनकी समझा। यह सब बातें उन्होने नेहरूजी को बतायीं। नेहरूजी ने कहा कि मेरे द्वारा सुझाए गये वेतन मे ऊपर की तरफ ज्यादा परिवर्तन किया जाय इस तरह बाजपयी ने मेरा तदर्थ वेतन 750 रुपये माहवार तय किया और इसके लिए आगे मुझसे कोई पूछताछ नही की। हुआ यह कि सहायक निजी सचिव के पद पर काम करने वाला एक अधिकारी मेरे वेतन से लगभग दुगना वेतन ले रहा था। लेकिन मुझे इसकी जरा भी परवाह नही थी, क्योंकि मेरे दिमाग मे कभी यह बात आई ही नहीं कि एक व्यक्ति की उपयोगिता वेतन की तराजू से कसे तोली जा सकती है। मुझसे न तो कभी डाक्टरी जाच कराने के लिए कहा गया और न ही गोपनीयता के शपथपत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए।

जब वित्तमंत्री ने गैर उत्पादक सरकारी खर्चों मे बचत की अपील की तो

होगा। मैंने आपका बहुत बार गुस्सा होते देखा है लेकिन यह गुस्सा किसी बड़ की या अभद्रता पर होता है। तब मैंने उन्हें उस प्रोफेसर शास्त्रिक की कहानी सुनायी जिसने क्रोध में आकर एथेंस के जन-पुस्तकालय के पुस्तकालयाध्यक्ष पर हाथ उठाया था। कारण यह था कि पुस्तकालय में सुकरात की एक विशेष पुस्तक की प्रति नहीं थी। मैंने कहा कि मैं मानसिक रूप से उस शास्त्रिक के साथ हूँ। सुनकर वे मुस्कराने लगे।

सितम्बर 1946 से ही नेहरूजी की आदत रही थी कि वे रविवार और छुट्टी के दिनों में भी अपने सचिवालय में काम करते थे। वे बड़ी खतरनाक ढंग से और नेहरू रात को मुश्किल से पाँच घंटे की नींद ले पाते थे। नतीजा यह होता था कि वे बैठकों में ऊँघने लगते थे। मैं चाहता था कि वे रविवार और छुट्टी के दिनों में दोपहर बाद कुछ आराम कर लिया करें। लेकिन इससे कहने का कोई लाभ न था क्योंकि उन्हें अपने स्वास्थ्य पर घमंड था। इसलिए मैंने उनकी विवेक-बुद्धि जगाने का रास्ता अपनाया। मैंने उनसे कहा कि निजी सचिव और दूसरे कर्मचारी शादीशुदा और बाल-बच्चेदार लोग हैं और वे कभी-कभार अपनी बीवियों और बच्चों को सिनेमा वगैरह ले जाना चाहेंगे। साथ ही मैंने यह भी कह दिया कि उनका ख्याल करके आपको रविवार और छुट्टी के दिनों दोपहर बाद अपना सचिवालय बंद कर देना चाहिए। एक या दो निजी सचिव यहीं बुला लिये जायेंगे ताकि आप अपना काम कर सकें। फिर मैं तो यहाँ होऊँगा ही। राजी होने से पहले उन्होंने कहा, काम करने से कभी कोई नहीं मरा। मैंने उत्तर दिया, लेकिन काम का अधिक बोझ इंसान को तरोताजा नहीं रहने देता और आपका काम थके-चुके लोगों से नहीं चल सकता। जिसकी मुझे आशा थी वही हुआ। नेहरूजी रविवार और छुट्टी के दिनों लंच के बाद कुछ आराम करने लगे। मैंने सभी निजी सचिवों को सप्ताह में एक दिन की छुट्टी की इजाजत दे दी। मेरे कहने पर उनके लिए विशेष भत्ते की मंजूरी भी मिल गयी। इसके अलावा रात को ड्यूटी पर रहने वाले निजी सचिवों के लिए प्रधान मंत्री के आवास के पास ही मुफ्त आवास की व्यवस्था भी मैंने करायी। वे सभी कड़ी मेहनत करते थे और उनकी निगाह कभी भी अपनी घड़ियों की तरफ नहीं होती थी। बाद में प्रधान मंत्री को लंच के बाद रोजाना आधा घंटा आराम करने की आदत पड़ गयी।

नेहरूजी विश्व में अपने समय के अंग्रेजी के पाँच बड़े गद्य-लेखकों में से माने जाते थे और यही कारण था कि उन्हें नयाचार (प्रोटोकोल) संबंधी पत्रों को छोड़कर दूसरों के द्वारा तैयार किये गये किसी भी कागज पर हस्ताक्षर करना नापसंद था। फलस्वरूप उन्हें पत्र वगैरह लिखवाने और भाषणों तथा विज्ञप्तियों का मसौदा तैयार करने और बोलकर लिखवाने में बहुत समय लगाना पड़ता था। सारे सहायकों की तुलना में मेरे द्वारा तैयार किये गये पत्रों वगैरह पर उनके हस्ताक्षर सबसे अधिक हैं। कारण यह था कि जब पत्र और नोट उनके हस्ताक्षरों के बाद मेरे पास आते थे तो उनमें से कुछ को मैं रोक लेता था क्योंकि वे रात को थकान के समय लिखवाये गये होते थे। उनका मसौदा फिर से तैयार करके मैं हस्ताक्षर के लिए उनके पास भेज देता था।

नेहरूजी के कुछ श्रेष्ठतम भाषण या तो बिना किसी तैयारी के दिये गये हैं या उन्होंने अपने आप लिखे हैं। ऐसा उसी समय हुआ जब वे बिना किसी विघ्न के अकेले होते थे या उनकी भावनाएँ उद्वेलित होती थीं। 14-15 अगस्त 1947 को संविधान-सभा की आधी रात को हुई बैठक में दिया गया नियति से भेंट

नामक भाषण उन्होंने अपनी कलम से लिखा था। जब इस भाषण की टाइप प्रति और हस्तलिखित मसौदा निजी सचिव ने मुझे दिया तो मैंने रोजेट के अंतर्राष्ट्रीय कोश (थेसारस) को देखा और नेहरूजी के पास पहुँचा। मैंने कहा कि 'नियति से मुलाकात' वाक्यांश इस तरह के पावन समारोह के लिए अच्छा नहीं है। मैंने 'भेंट' या 'मिलन' शब्द सुझाया लेकिन साथ ही यह भी बता दिया कि युद्ध के समय में दिये गये अपने एक प्रसिद्ध भाषण में राष्ट्रपति फ्रैंकलिन रूजवेल्ट ने 'नियति से मिलन' वाक्यांश का प्रयोग किया था। उन्होंने एक क्षण के लिए सोचा और फिर टाइप प्रति में 'मुलाकात' के स्थान पर 'भेंट' शब्द लिख दिया। इस भाषण का 'मुलाकात' शब्द वाला हस्तलिखित मसौदा बरसों मेरे पास रहा और हाल ही में मैंने उसे अनेक दस्तावेजों और फोटुओं के साथ नेहरू म्यूजियम और पुस्तकालय को सौंप दिया।

गांधीजी की हत्या के दिन प्रसारित 'प्रकाश बुझ गया है" जैसे उदात्त शब्दों वाला भाषण बिना किसी तैयारी और बिना किसी नोट वगैरह की सहायता के दिया गया था।

1951 के अंत में मैं चाहता था कि एस डी उपाध्याय पहली लोकसभा के चुनावों में कांग्रेस टिकट पर चुनाव लड़ें, क्योंकि उन्होंने नेहरूजी और उनके पिता के साथ बरसों काम किया था और इस समय वे बेकार थे। दरअसल मैंने ही उपाध्यायजी को सुझाव दिया था कि वह किसी सही चुनाव-क्षेत्र में चुनाव लड़ें और इसके लिए अपना नाम प्रांतीय कांग्रेस कमेटी से प्रस्तावित करायें। एक दिन जब मैं नेहरूजी के साथ दाँतों के चिकित्सक श्री एन एन बेरी के यहाँ जा रहा था तो मैंने उपाध्यायजी के बारे में उनसे कहा। वे इस सुझाव पर बरस पड़े। कहने लगे 'वह लोकसभा में क्या करेगा? वह वहाँ के लिए एकदम नाकारा है।' मैंने कहा 'वे उतने ही अच्छे या बुरे रहेंगे, जितने लोकसभा के पचास प्रतिशत कांग्रेसी सदस्य हैं। फिर उनकी बुद्धिमानी न सही, वफादारी के लिए इससे अच्छा कौन-सा इनाम रहेगा?" सुन कर नेहरूजी चुप हो गये। उस समय नेहरूजी कांग्रेस के अध्यक्ष थे। डा बेरी के क्लिनिक से लौटते समय नेहरूजी ने मुझसे उपाध्यायजी को यह बताने के लिए कहा कि वह अपना नाम प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के जरिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में भिजवा दें। मैंने उन्हें बताया कि यह काम पहले ही कर लिया गया है और उनका चुनाव-क्षेत्र विंध्य प्रदेश में सतना सुझाया गया है। इस प्रकार उपाध्यायजी का लोकसभा में प्रवेश हुआ और वे कई बार लोकसभा या राज्य सभा के सदस्य बने रहे। अगर लोकसभा में एक बार भी मुँह न खोलने के लिए किसी व्यक्ति को सम्मानित किया जाना चाहिए तो वह व्यक्ति उपाध्यायजी के अलावा और कोई नहीं हो सकता। मुझे इसकी बड़ी खुशी है कि बेचारे को बुढ़ापे में (वे अब अठहत्तर वर्षों से अधिक आयु के हैं) लोकसभा के भूतपूर्व सदस्य के नाते 500 रुपये प्रतिमाह पेंशन मिल रही है।

सरकार से संबद्ध रहने की पूरी अवधि के दौरान मैंने न तो प्रधानमंत्री और न ही किसी मंत्री या अधिकारी से कोई काम कराया न ही कोई सिफारिश करायी। मुझे याचक बनने से हमेशा नफरत रही। दूर या पास का मेरा कोई भी रिश्तेदार नहीं था जिसे मैंने नौकरी पर लगाया हो या उसका कोई सरकारी काम कराया हो। लेकिन मैं कभी-कभी सीधे और ज्यादातर प्रधानमंत्री के द्वारा हस्तक्षेप करने में नहीं हिचका खासतौर पर ऐसे मामलों में जहाँ मुझे लगा कि संबंधित व्यक्ति के प्रति अन्याय हुआ है। यह सच है कि अनगिनत मंत्रियों, गवर्नरों और गैर

सरकारी राजदूतों की नियुक्ति में मेरा हाथ रहा लेकिन इनमें से कोई भी मुझसे किसी भी तरह संबंधित नहीं था। नेहरूजी और मैं एक-दूसरे को पूरी तरह समझते थे। वैसे ऐसे अवसर गिने चुने ही आये जब उन्हें मेरी राय गलत लगी लेकिन उन्हें मेरी नीयत पर कभी शक नहीं हुआ। उन्होंने एक साथी की तरह मुझसे बर्ताव किया। यह अलग बात है कि उन्हें यह पता था कि इस बर्ताव के अलावा किसी और तरह के बर्ताव के लिए मैं वहाँ मौजूद न होता। मैंने कुछ नियुक्तियाँ भी रुकवायीं। इनमें से एक का मैं यहाँ जिक्र करता हूँ। विजयलक्ष्मी पंडित की राजदूत के पद पर नियुक्ति के बाद नेहरूजी ने अपने बहनोई जी पी हठीसिंग को मलाया में कमिश्नर के पद पर भेजने का प्रस्ताव रखा। वे नेहरूजी के साथ जनवरी 1946 में सचिव के रूप में मलाया गये थे और वहाँ भारतीयों की स्थिति का अध्ययन करने के लिए कुछ हफ्ता के लिए रुक गये थे। कामनवेल्थ संपर्क विभाग के दो वरिष्ठ अधिकारी मेरे पास निजी तौर पर आये और उन्होंने मुझसे किसी तरह से यह नियुक्ति रुकवाने का आग्रह किया। मैंने परोक्ष तरीका अपनाया। मैंने हठीसिंगजी से बात की जो संयोग से उस समय दिल्ली में ही थे। मैंने उनसे कहा कि उनकी शिक्षा और कुल को देखते हुए प्रथम श्रेणी के राजदूत से नीचे के राजनयिक का पद स्वीकार करना उनके लिए शोभनीय नहीं होगा। मैंने उनसे पूछा आपके जैसा समृद्ध व्यक्ति अपने को क्यों नीचे गिराना चाहता है? उन्होंने कहा मैं आज शाम ही भाई से कह दूंगा कि मुझे यह पद नहीं चाहिए। इस तरह गुणोत्तम पुरुषोत्तम हठीसिंग को बाता-बातों में ऐसी स्थिति में फँसने से रोक लिया गया जिसमें नेहरूजी पर बाद में भाई भतीजावाद का आरोप लग सकता था। कुछ महीनों बाद पालम हवाई अड्डे जाते समय प्रधानमंत्री को मैंने यह बात बतायी। साथ ही यह भी बताया कि मेरी माँ जितनी बड़ी उम्र की मेरी विधवा बहन ने अपने इकलौते बेटे को मेरे पास दिल्ली नौकरी के लिए भेजा था। उस समय प्रधानमंत्री के सचिवालय में एक जगह खाली भी थी जिसके लिए उसके पास योग्यता थी। या फिर मैं उसे बड़ी आसानी से कहीं भी नौकरी पर लगवा सकता था। लेकिन मैंने उसे रेल का भाड़ा और कुछ पैसे देकर घर वापस भेज दिया। मेरी बहन को इस पर बड़ा दुःख हुआ। यह सुनकर नेहरू-जी बोले कि ऐसा करके मैंने बड़ी बेवकूफी की। मैंने उत्तर दिया कि कुछ मामलों में मैं बेवकूफ ही भला। मैंने उनसे पूछा क्या आपने हाल ही में यह नहीं कहा था कि जन जीवन में व्यक्ति का केवल सही होना ही काफी नहीं उसे सही दिखना भी चाहिए? उनका मौन ही सबसे उचित उत्तर था।

सन पचपन के आसपास एक राज्य मंत्री अपनी बेवकूफी से एक चक्कर में फँस गये। उन्हें राष्ट्र-संघ की महासभा में भारतीय प्रतिनिधि बनाकर भेजा गया था। वे पैसे वाले और बात बच्चेदार आदमी थे। वे जाते हुए अपने साथ एक जवान सी औरत को ले गये और न्यूयार्क लन्दन और पेरिस के होटलों में ठहरे। एक ही कमरे में रहने के लिए उन्होंने होटलों के रजिस्टरों अपने नामों के आगे श्री और श्रीमती लिखा। काफी अरसे बाद एक दिन वह औरत अपने सामान के साथ नयी दिल्ली में मंत्रीजी की कोठी पर आ धमकी और वहाँ रहने का हक जमाने लगी—चाहे वे उसे नौकरानी के रूप में ही रख लें। पति-पत्नी दोनों को बड़ी शर्मिंदगी उठाना पड़ी। उस औरत को कोठी से बाहर निकाल दिया गया लेकिन उसे किसी तरह से वेस्टर्न कोर्ट में रहने को एक कमरा मिल गया। वह बहुत से लोगों से मिली और उनसे शिकायत की। एक दिन जब मैं और प्रधानमंत्री दफ्तर से घर

वापस आ रहे थे तो उसने हमें बीच में ही आ घेरा। उसने प्रधानमंत्री से धीरे धीरे कुछ बातें कीं। गाड़ी में प्रधानमंत्री ने मुझसे उन मन्त्रीजी को बुलाने और उनसे बातचीत करने के लिए कहा। मैंने मन्त्रीजी को फोन किया और वे दोपहर बाद दफ्तर में मेरे पास आये। शनिवार का दिन था और उस दिन लोकसभा की छुट्टी थी। उन्होंने हर बात कबूल ली। मैंने उनके सामने एक खाली कागज रख दिया और प्रधानमन्त्री के नाम मन्त्रि परिषद से त्यागपत्र लिखने को कहा। मैं धीरे धीरे बोलता रहा और वे लिखते रहे— 'मैं एतद् द्वारा व्यक्तिगत कारणों से मन्त्री-परिषद से त्यागपत्र देता हूँ। यदि आप इसे स्वीकृति के लिए राष्ट्रपति को भेजने की कृपा करें तो मैं आपका अनुग्रहीत हूँगा।' मैंने मन्त्रीजी को शनिवार सुबह लोकसभा भवन में लोकसभा सदस्य यू एस मलैय्या के साथ मिलने को कहा जो इस घटना से परिचित थे और हम दोनों के दोस्त थे। वे अनुसार वे मुझसे मिले। मैंने मन्त्रीजी से कहा कि जहां तक किसी के निजी जीवन का संबंध है मुझे उस पर किसी तरह का फैसला देने का कोई हक नहीं। मैंने आगे कहा कि आपने होटल के रजिस्टरों में हर जगह अपने नाम 'श्री और श्रीमती' के रूप में दर्ज करके बड़ी जबरदस्त बेवकूफी की है। कुछ लोगों ने उस औरत को उकसाया है और आपको ब्लैकमेल करने के लिए दिल्ली भेजा है। मेरा सुझाव है कि आप उसे खामोश रहने की कीमत दे दें। आपके मित्र मलय्या उसे चुपचाप दिल्ली से बाहर चले जाने के लिए राजी कर लेंगे। मलय्या ही फैसला करें कि उसे कितनी रकम देनी चाहिए। मलैय्या ने फैसला सुनाया कि मन्त्री महोदय की आर्थिक स्थिति देखते हुए वे उसे पचास हजार रुपये दे दें। यह काम दो दिन के भीतर कर दिया गया और वह औरत चुपचाप दिल्ली छोड़कर चली गयी। बाद में मैंने प्रधानमन्त्री को सभी तथ्यों से अवगत कराया और मन्त्रीजी का त्यागपत्र भी उनके सामने रख दिया। प्रधानमन्त्री कई दिनों तक इस मसले पर विचार करते रहे और फिर उन्होंने त्यागपत्र स्वीकार न करने का फैसला किया। इस तरह मन्त्रीजी की गद्दी बरकरार रही और बाद में उन्होंने और भी तरक्की की। इन्दिरा सरकार में उन्होंने एक मन्त्रालय सम्हाला और इस दौरान वे सबसे बड़े चाटुकार साबित हुए। वही सबसे पहले संजय को अपने राज्य के दौरे पर ले गये और उन्होंने राजनीति में उसका प्रवेश कराया। सरकारी खर्चे पर आयोजित की गयी एक जनसभा में मन्त्री महोदय घुटनों के बल खड़े हुए और उन्होंने एक बड़ी गहरी सचाई का उद्घाटन किया 'मैंने आपके नानाजी की गुलामी की और फिर आपकी माताजी की सेवा की और अब मैं आपकी गुलामी करूँगा।' पता नहीं कि वे आजकल किस की गुलामी कर रहे हैं।

चापलूसी और खुशामद करना कभी भी मेरे स्वभाव में नहीं रहे। एच वी कामथ, राममनोहर लोहिया या राजनारायण ने सार्वजनिक रूप से नेहरूजी को जितना नाराज़ और परेशान किया उनसे कहीं अधिक मैंने उन्हें अकेले में नाराज़ और परेशान किया होगा। एक बार लदन में इंडिया हाउस में एक स्वागत-पार्टी थी, जिसमें ऐटली और दूसरे गण्यमान लोग आमन्त्रित थे। नेहरूजी पूरी पार्टी के दौरान एक कोने में खड़े होकर लेडी माउंटबेटन से बात करते रहे। कृष्ण मेनन मेरे पास आये और उन्होंने कहा कि सभी लोग उनकी इस हरकत पर नुक्ताचीनी कर रहे हैं। उन्होंने मुझसे उनके बीच जाने का आग्रह किया ताकि नेहरूजी वहां से हटकर इधर-उधर लोगों से मिल सकें। मैंने उनसे कहा कि यह मेरे अधिकार-क्षेत्र से बाहर है क्योंकि मेज़बान तो वे खुद हैं और यह उन्हीं का कर्तव्य है कि वे

प्रधानमंत्री को सभी लोगों में मिलायें लेकिन कृष्ण मेनन में सही काम करने का साहस ही नहीं था। अगले कुछ दिनों में इसी तरह की दो और पार्टियाँ दी जानी थी और मैं नहीं चाहता था कि प्रधानमंत्री पूरी पार्टी के दौरान एक ही व्यक्ति से चिपके खड़े रहें। पार्टी के बाद शाम को मैंने प्रधानमंत्री को इस घटना के बारे में अपने हाथ से लिखा एक नोट भेजा और उसमें मैंने लिखा कि इसकी प्रतिकूल आलोचना हुई है और बेकार की अफवाहों को बढ़ावा मिला है। मैं इस विषय पर आमने-सामने होकर बात करके उन्हें दिक्कत में नहीं डालना चाहता था। उनकी महानता थी कि उन्होंने मेरे नोट को खुशी-खुशी टाल दिया। नोट का वांछित प्रभाव हुआ और अगली दोनों पार्टियाँ बड़ी सफल रही। निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि जहां तक मैं अपने प्रति सच्चा रहा वहाँ तक मैंने इसकी परवाह नहीं की कि नेहरूजी या कोई और व्यक्ति मेरे बारे में क्या सोचता था।

1959 में सरकार से इस्तीफा देने के बाद भी मैं नेहरूजी के कुछ निजी काम करता रहा। मेरी उनसे अंतिम भेंट 27 अप्रैल 1964 को हुई। मैंने उन्हें पहले से तैयार किया एक नोट दिया। उन्होंने उसे दो बार पढ़ा। वे कुछ न समझ पाये। मैंने उनसे कहा कि परेशान होने की कोई जरूरत नहीं और मैं उनकी तरफ से उनके स्टाफ को लिखित निर्देश दे जाऊंगा। उस समय उनकी स्थिति किसी भी तरह के उपयोगी काम करने की नहीं रह गयी थी। मुझे बहुत दुख हुआ। मैं इस आशंका के साथ शिमला चला गया कि शायद अब मैं फिर कभी उन्हें नहीं देख पाऊँगा। 27 मई 1964 को दोपहर से पहले दिल्ली से मेरे एक मित्र ने मुझे फोन किया कि प्रधानमंत्री की हालत बिगड़ती जा रही है। हिमाचल प्रदेश के लेफ्टीनेंट गवर्नर ने मेहरबानी करके शिमला से दिल्ली आने के लिए मेरे लिए गाड़ी का बंदोबस्त कर दिया। देर रात गये मैं दिल्ली पहुंचा। दिन बहुत ही गर्म और धूलभरा था। उस दिन दिल्ली में भूकंप भी आया था।

यों इस पुस्तक के कुछ अध्याय लिखना मानसिक रूप से मेरे लिए कठिन रहा है लेकिन सबसे अधिक कठिनाई मुझे इस अध्याय को लिखने में हुई है।

2

कम्युनिस्टों का हमला

1958 की सर्दियों में कुछ कम्युनिस्टों ने मुझ पर जोरदार हमला करने की ठानी। यहाँ मैं इस विषय में विस्तार से कुछ नहीं कहूँगा। वे सभी बातें प्रधानमंत्री को 12 जनवरी 1959 को लिखे गये मेरे त्यागपत्र और राजकुमारी अमृतकौर द्वारा 12 जनवरी 1959 को प्रधानमंत्री को भेजे गये पत्र में दे दी गयी हैं। ये दोनों पत्र तीसरे परिशिष्ट में शामिल हैं।

प्रधानमंत्री मेरा त्यागपत्र स्वीकार नहीं करना चाहते थे और यह बात उन्होंने ही मुझसे कही थी। लेकिन मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया था कि जहाँ अपना बचाव न किया जा सके वहाँ किसी भी कीमत पर मैं नहीं रहूँगा। मैंने त्यागपत्र जल्दबाजी में नहीं लिखा था। एक बार त्यागपत्र दे देने के बाद उसे वापस नहीं लेना था। प्रधानमंत्री ने मेरा त्यागपत्र छह दिन तक अपने पास ही रखा। 18 जनवरी 1959 को मैंने प्रधानमंत्री को एक नोट भेजा जिसमें मैंने अपना यह फैसला लिखा था कि दो दिन बाद मैं काम बंद कर दूँगा और प्रधानमंत्री के निवास से चला जाऊँगा। उस रात उन्होंने अपने हाथ से एक पत्र भेजा जिसमें मेरे त्यागपत्र की बेमन से स्वीकृति की सूचना थी। दरअसल मैंने उनके सामने और कोई विकल्प छोड़ा ही नहीं था।

27 जनवरी को सुबह चार बजे मैं सोकर उठा और अपने प्रिय मित्र कृषि विज्ञानी बोशी सेन के साथ कार से अलमोड़ा जाने के लिए तैयार होने लगा। उसी दिन मेरा जन्म दिन भी था। 4 बजकर 45 मिनट पर नेहरूजी मेरे कमरे में आये और बोशी सेन के साथ बैठ गये। वे जानते थे कि आज मेरा जन्म दिन है लेकिन वे जन्म दिन मुबारक नहीं कहना चाहते थे, क्योंकि वह दिन न मेरे लिए न उनके लिए कोई मुबारक दिन था। चलते समय उन्होंने मुझे गले से लगाया और डॉ० सेन से कहा 'बोशी इसका ध्यान रखना।'

बाद म मुझे पता च ना कि मरे जान वान न्नि प्रधानमन्त्री निवास के नौकर और माली अचानक जुलूस बनाकर प्रधानमन्त्री क पास गये और उनस आश्वासन माँगा कि मुझ प्रधानमन्त्री निवास पर फिर बुला लिया जायगा।

7 फरवरी 1959 को अपनी प्रेस कार्फेस म प्रधानमन्त्री ने कहा मेरी दृष्टि म श्री मथाई एक कुशल ईमानदार और वफादार व्यक्ति थ और मरे प्रति ता उनकी वफादारी पर कोई शक नहीं था। लकिन व कभी कभी छोटे-छोट मामला म बवकूफी कर जाया करत थ और कभी-कभी अपनी भी चलात थे। लकिन उनकी ईमानदारी पर मुझे कभी शक नही रहा और क अलावा मुझे तब स अब तक ऐसा कोइ कारण नजर नहीं आया जिसम मैं उनकी ईमानदारी पर शक करू। व मेरे साथ सबद्ध थे और उनकी स्थिति बडी नाजुक थी जिसका व बडी आसानी स दुरुपयाग कर सकत थ। लकिन मेर साथ सबद्ध रहन की इस पूरी अवधि के दौरान मुझे कोई ऐसा कारण मामूली सा कारण भी नजर नहीं आया—खासतौर पर धन की नजर स—जिसका उन्होन जरा सा भी दुरुपयोग किया हो।

16 फरवरी को राजकुमारी अमतकौर क निवास पर लेडी माउटबेटन मुझस मिलने आयी। वे चिंतित थी कि प्रेस-कान्फस म मेरे विरुद्ध प्रधानमन्त्री द्वारा की गयी एक या दो टिप्पणिया से मैं शायद कटु हो उठा होऊगा। उन्होने मुझस पूछा कि प्रधानमन्त्री ने जिन मामला का जिक्र किया है क्या उन्होन इन पर मुझे कभी डाँटा भी था। मैंने न कह दी। उन्होंने कहा तब पत्रिकाओं म इस तरह की टिप्पणी करने का उन्हे कोई हक नहीं था। मैंन उनस कहा कि व भी मेर छोड आन स परेशान होग और इस तरह क शब्द उनके मुह स बिना किसी इरादे क निकल गये होंग। मैंने उन्हें आश्वासन दिया कि मुझ इन टिप्पणियो स कोई खास चोट नहीं पहुँची। फिर मैंने उन्हे मन्त्रिमडल क एक मन्त्री का एक लबा पत्र दिखाया जिसम उन्होन प्रधानमन्त्री द्वारा प्रेस कान्फ्रेंस म मेरे विरुद्ध की गयी टिप्पणिया पर विरोध प्रकट किया था। व पढने के लिए उस पत्र को ल गयी। उन्होने कहा कि प्रधानमन्त्री ने मुझे बताया कि प्रेस-कान्फ्रेस के तुरत बाद विदेश मत्रालय के महासचिव एन आर पिल्ल और मत्रालय के अन्य तीन सचिवो की ओर से उन्हे एक निजी नोट मिला जिसम लिखा था कि जहाँ तक उनका सबध है मैंने कभी भी अपनी नही चलायी और मैं हमेशा उनसे सहयोग करता रहा। उन्होने मुझे बताया कि इन टिप्पणियो के बाद से प्रधानमन्त्री भी परेशान है। मैंने उनसे कहा कि वे उनसे इस मामला को भूल जाने को कह दें। अगले दिन व मुझ बताने आयी कि मन्त्रिमडल के मत्री का पत्र पढकर उन्हें बहुत दुख हुआ था और प्रधानमन्त्री वह पत्र पढकर उनके सामने ही रोने लग थे।

अलमोडा म मुझे प्रधानमन्त्री का पत्र मिला कि लोकसभा म विरोधी दल के कुछ सदस्यो की लगातार माग पर अपने साथियो की सलाह स उन्होने मन्त्रिमडल के सचिव को लिखने का फैसला किया है कि वह मुझसे तथ्य प्राप्त करें और रिपोर्ट तयार करके उनके सामन पेश करें। प्रधानमन्त्री ने मुझे दिल्ली आने के लिए कहा। मैं दिल्ली आया और राजकुमारी अमतकौर के निवास स्थान पर ठहरा।

दिल्ली आकर मैंने प्रधानमन्त्री के पास सूचना भेजी कि अगर मेरी तीन शर्तें पूरी की जायें तो मैं मन्त्रिमडल-सचिव के साथ खुशी स सहयोग करूगा। मैंने कहा कि जहा तक मन्त्रिमडल सचिव और स्वय उनका सबध है मे इस तरह क

मामने की छानबीन म केवल एक व्यक्ति का हाथ पसद नही करूँगा। मेरी शर्तें थी

(1) तथ्यो की छानबीन के काम म मत्रिमडल सचिव के साथ केंद्रीय राजस्व बोड के अध्यक्ष को भी नियुक्त किया जाये।

(2) मत्रिमडल सचिव की रिपाट की पडताल वित्तमत्री करें और उस पर वित्तमत्री की टिप्पणी होनी चाहिए।

(3) मत्रिमडल सचिव के निष्कर्षों पर सरकार स स्वतत्र काई प्राधिकारी अपना मत दे। मैंने इस काय के लिए भारत के महालेखा नियता और परीक्षक की नियुक्ति का प्रस्ताव रखा।

प्रधानमत्री न अपने मुख्य साथियो की सलाह ली और मुझे सूचना दी कि सवसम्मति स मेरी शर्तें मान ली गयी ह। इसकी सूचना लोकसभा को भी दे दी गयी।

तरह वप की लबी अवधि म फैले आय व्यय के निजी ब्योरो के बारे म तथ्य और उन सभी का स्पष्टीकरण जुटाना आसान काम नही था। लेकिन सारी सामग्री जुटायी गयी और अप्रैल 1959 के अत तक मैंन यह सामग्री मत्रिमडल सचिव और उनके सहयोगी के सामने रख दी।

6 मई 1959 को लोकसभा और राज्यसभा के समक्ष निम्नलिखित दस्तावेज रखे गये जो चौथे परिशिष्ट म पूरे-के-पूरे उद्धत किये गये है

(1) 6 मई 1959 को प्रधानमत्री द्वारा अध्यक्ष/स्पीकर को लिखा गया पत्र।

(2) 6 मई 1959 का प्रधानमत्री का नोट।

(3) 6 मई 1959 की वित्तमत्री की टिप्पणिया।

(4) 6 मई 1959 की महालखा नियता और परीक्षक की टिप्पणियाँ।

8 मई 1959 के हिंदुस्तान टाइम्स मे प्रसिद्ध सपादक एस मुलगावकर ने इस विषय म एक सक्षिप्त-सा सपादकीय लिखा, जो नीचे उद्धत कर रहा हूँ

> प्रधानमत्री के विशेष सहायक श्री एम ओ मथाई द्वारा अपने पद के दुरुपयोग के बारे म लगाये गये आरोपो की छानबीन के निष्कर्षों पर श्री नेहरू और श्री मोरारजी देसाई द्वारा लोकसभा म दिये गये वक्तव्य अपने आप म इतने पर्याप्त है कि इस विषय म और कुछ नहीं कहा जा सकता। लेकिन जनता के लिए अचम्भे की बात यह है कि श्री मथाई के खून म प्यासे जो कम्युनिस्ट जोर-जोर म शोर मचा रहे थे और कह रहे थे कि उनके पास श्री मथाई के विरुद्ध अकाट्य सबूत मौजूद ह जब उन्ह जाँच ट्रिब्यूनल के सामने आरोपो की पुष्टि के सबूत देने का बुलाया गया तो वे पीठ दिखा गये। श्री नेहरू ने स्पष्ट शब्दो मे कहा कि श्री विष्णुसहाय को एकमात्र सूचना एक पत्र के रूप म मिली, जो एक व्यक्ति ने बिना कोई सबूत दिये जेल से लिखा था। इस विषय म बिना नाम का एक और पत्र भी प्राप्त हुआ। श्री देसाई ने कहा— एक भी विश्वसनीय सूचना या प्रमाण के साथ किसी का आगे न आना ध्यान देने की बात है। ऐसे लोगो के व्यवहार को परिभाषित करने के लिए हमारे पास एक ही शब्द है जो सुविधा की स्थिति म होते हुए दूसरो पर एकदम झूठे आरोप लगाते है और अपने आरोपो को सिद्ध करने के सहज कर्तव्य को नही निभाते। वह शब्द है **अशोभनीय**।
>
> (8 मई 1959 के हिंदुस्तान टाइम्स के सपादकीय का मूल पाठ।)

प्रधानमत्री के वरिष्ठतम सहयागी श्री गोविन्दवल्लभ पत न जब मुझस पूछा कि क्या मैं प्रधानमत्री क निवास और कार्यालय म लौटना चाहूँगा तो मैंन एक वाक्य म उत्तर दिया 'केवल कुत्ता ही अपनी विष्ठा खाता है।' उन्होंन तुरत यह जुमला प्रधानमत्री तक पहुँचा दिया। एक अरसे बाद प्रधानमत्री ने मुझस पूछा कि क्या मैं भारत या विदेश म किसी सरकारी नियुक्ति पर जाना चाहूगा। मैंन कहा 'अथनाभ वान किसी सरकारी पद पर नही।'

इस काड क कुछ समय बाद मरे एक मित्र न मुझस पूछा 'क्या उस टटपूजिये राजनीतिज्ञ न एकात तक म आपसे मुआफी मांगन की शराफत नही दिखायी जो अपन भाषण गन्द स दिन रात झूठ आरोप आप पर लगाता रहता था?' उत्तर म उन्ह मैंन एक पुराना श्लोक सुनाया जिसका भाव यह था 'कौवे म स्वच्छता जुआरी म ईमानदारी सांप म सौम्यता स्त्री म कामतृप्ति हिजडे म पौरुष शराबी म सचाई राजा म मित्रता टटपूजिये राजनीतिज्ञ म सभ्यता क्या किसी न सुनी है?'

3

क्रातिदूत धर्म-सकट मे

2 सितबर 1946 के दिन 11 बजे सुबह वायसराय हाउस म अतरिम सरकार की स्थापना के अवसर पर नेहरूजी को व्यक्तिगत रूप से एक बडे धम-सकट का सामना करना पडा। उ हें भारत के सम्राट किंग जाज पष्ठ के प्रति निष्ठा की अभिपुष्टि करनी पडी और साथ ही यह भी निश्चयपूर्वक कहना पडा कि वह अपने शासक की सच्चे मन से कुशलतापूर्वक सवा करेंगे। इस तरह के शपथ पत्र का सामना नेहरूजी को अचानक करना पडा। उनके सामने कोई और विकल्प नहीं था। उन्होंने अपने गुस्से और शम के भावो पर काबू किया और स्वामिभक्ति तथा पदभार ग्रहण करने के अभिपत्रा पर उन्होंने हस्ताक्षर कर दिय। यह दोनो अभिपत्र इस प्रकार थे

स्वामिभक्ति का अभिपुष्टि पत्र

मैं जवाहरलाल नेहरू सच्चे मन से निश्चयपूर्वक अभिपुष्टि करता हू कि मैं महाराजाधिराज भारत-सम्राट जाज पष्ठ उनके वारिसो तथा उत्तराधिकारियो के प्रति कानन के अनुसार वफादार और निष्ठावान रहूँगा।

पदभार ग्रहण का अभिपुष्टि पत्र

मैं जवाहरलाल नेहरू, निश्चयपूर्वक अभिपुष्टि करता हूँ कि मैं गवनर जनरल की कायकारी कौंसिल के सदस्य पद पर अपने शासक, भारत सम्राट किंग जाज पष्ठ की सेवा कुशलतापूर्वक सच्चे मन से करूँगा और मैं बिना किसी भय पक्षपात या दुर्भावना के भारत के नियमो विनियमो के अनुसार सभी

प्रकार के व्यक्तियों के प्रति न्याय का व्यवहार करूँगा।

कई दिनों तक नेहरूजी बच्चों की तरह बुड़बुड़ाते रहे मैं इसके लिए कतई तैयार नहीं था। मैं यह तो नहीं चाहता था। लेकिन सरदार पटेल राजेन्द्रप्रसाद, राजाजी और दूसरे नेताओं की आत्माओं ने इस पर उन्हें नहीं कचोटा।

जब 15 अगस्त 1947 को अधिराज्य (डोमीनियन) सरकार बनी तो भारत के सम्राट घटकर अपने-आप भारत के नरेश बन गये और प्रधानमंत्री नेहरू महाराज से सीधे पत्र व्यवहार करने लगे। ब्रिटिश सरकार बीच में नहीं रही। नेहरूजी को जल्दी ही पता चल गया कि नरेश को पत्र लिखते समय अन्य पुरुष का प्रयोग करना पड़ता है और वह भी सविनय निवेदन के रूप में। जब इस प्रकार का पहला सविनय निवेदन हस्ताक्षर के लिए उनके सामने रखा गया तो नेहरूजी गुस्से में आ गये और कहने लगे हे ईश्वर!' और उन्होंने हस्ताक्षर-पैड को परे सरका दिया। कुछ समय बाद उन्होंने उस बकवास पर हस्ताक्षर कर दिये।

4

पुरातनपंथी आगे आये

संविधान-सभा की बैठकें नयी दिल्ली में 9 दिसंबर 1946 को शुरू हुईं और 26 नवंबर 1949 तक चलीं। इनमें राजेंद्रप्रसाद और दूसरे पुरातनपंथियों ने एक मांग यह रखी कि देश का नाम संविधान में 'इंडिया' के बजाय 'भारत' रखा जाय। नेहरूजी ने तर्क पेश किया कि उस स्थिति में राष्ट्रसंघ और अनेक अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं की मूल सदस्यता तथा विदेशों में दूतावास की सभी इमारतों वगैरह के स्वामित्व जैसे उत्तराधिकारी राज्य के लाभों से भारत वंचित हो जायगा। पाकिस्तान भारत से पृथक होने वाला राज्य था और उसे अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं की सदस्यता के लिए लड़ना पड़ा। नेहरूजी ने राजेंद्रप्रसाद और दूसरे लोगों से कहा, "मैं भारत को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर गलत स्थिति में नहीं डालना चाहता।" उन्होंने यह भी कहा कि उनके सुझावों पर अमल करने से सबसे ज्यादा पाकिस्तान ही खुश होगा। राजेंद्रप्रसाद और दूसरे नेताओं ने प्रतिवाद किया, लेकिन नेहरूजी अपनी बात पर डटे रहे। अंत में उन्होंने कहा कि संविधान में किसी स्थान पर 'इंडिया अर्थात भारत' का उल्लेख करने में उन्हें कोई आपत्ति नहीं। जब राजेंद्र प्रसाद गणतंत्र के राष्ट्रपति बने तो उन्होंने अपने परिसहायकों के बाजुओं की पेटियों पर इंडिया के बजाय भारत शब्द लिखे जाने का आदेश दिया। यह चलन अभी तक जारी है।

नेहरूजी को संविधान में गो रक्षा तथा नशाबंदी को भी शामिल करने के लिए सहमत होना पड़ा और उसी किस्म के लोगों के सामने उन्हें हथियार डालने पड़े। अगर नेहरूजी के हाथ न बांधे जाते तो वे संविधान में इस तरह के विषयों को आने ही न देते। उन्होंने सबसे अधिक 'काम के अधिकार' पर जोर दिया लेकिन पुरातनपंथी लोग आगे के बजाय पीछे की तरफ जाना चाहते थे।

किसी कोने से हनुमानजी के वंशज बंदरों की रक्षा की हलकी-सी मांग भी

उठी थी।

26 जनवरी 1950 को गणतंत्र का राष्ट्रपति बनते ही राजेंद्रप्रसाद ने राष्ट्रपति भवन के क्षेत्र में बहुत सारे तगड़े-तगड़े बंदर छुड़वाये। एक दिन उनमें से कुछ बालकनी के खुले दरवाजे से प्रधानमंत्री के सचिवालय में घुस आये। मैं उस समय नेहरूजी के साथ उसी कमरे में था। मैंने उन्हें वहां से भगाया। एक बन्दर पेपरवेट ही ले भागा। मैंने नेहरूजी से कहा—यह करतूत राजेंद्रबाबू की है। वे हँसने लगे। बंदरों की इस फौज में बिड़ला मंदिर में छोड़े गये बंदरों की टुकड़ियाँ आ मिलीं। वे अब भी राष्ट्रपति भवन-क्षेत्र में आते हैं जहां सही अर्थों में बंदरों ने संकट पैदा कर रखा है। वे सब्जियां और फल छीन ले जाते हैं और वे आज भी निहत्थी औरतों और बच्चों पर हमला कर देते हैं।

रूढ़िवाद और अशोभनीय असहिष्णुता का शिकार बी आर अंबेडकर

संस्कृत के विद्वान और धार्मिक प्रवृत्ति के अपने मित्र पी के पणिक्कर के कारण बी आर अंबेडकर की मुझमें दिलचस्पी हुई। मैंने पणिक्कर से कहा था कि मैं अंबेडकरजी का बड़ा प्रशंसक हूं लेकिन उनके महान आत्मा बनने में ज़रा सी चूक रह गयी है—क्योंकि वे अपनी कड़वाहट से पूरी तरह नहीं उबर सके हैं। मैंने यह भी कहा था कि उन्होंने जीवन में जितना अपमान और अनादर सहा है उसे देखते हुए किसी को उन्हें दोष देने का कोई अधिकार नहीं है। पणिक्कर अक्सर अंबेडकरजी के यहां जाते थे और उन्होंने निश्चय ही यह बात उन्हें बतायी होगी। रविवार की एक सुबह अंबेडकरजी का फोन आया और उन्होंने शाम को चाय पर मुझे बुलाया। उन्होंने कहा कि चाय पर पणिक्कर भी आ रहे हैं। मैं निश्चित समय पर उनके यहां पहुंचा।

इनकी फुनकी बातों के बाद अंबेडकर ने मजाकिया लहजे में मुझसे कहा तो आपने मुझमें खामी ढूंढ ही ली लेकिन मैं आपकी आलोचना अंगीकार करता हूँ। फिर वे छूआछूत के बारे में बातें करने लगे। उन्होंने कहा कि छूआछूत मिटाने में गांधीजी के व्यक्तिगत आंदोलनों से कहीं अधिक रेलों और कारखानों ने योग दिया है। उन्होंने ज़ोर देते हुए बताया कि हरिजनों की मुख्य समस्या आर्थिक है न कि गांधीजी द्वारा प्रतिपादित मंदिर प्रवेश।

अंबेडकरजी कहने लगे—हमारा संविधान निश्चय ही कागजों पर छूआछूत का उन्मूलन करेगा लेकिन यह रोगाणु भारत में अभी भी सौ बरसों तक बना रहेगा। यह लोगों के दिमागों के भीतर तक पैठ गया है। उन्होंने अमरीका में दास प्रथा के उन्मूलन का उल्लेख करते हुए कहा—नीग्रो जनता की हालत में सुधार की गति 150 वर्षों बाद भी धीमी है।' मैंने उनसे कहा कि यह अवधि भी थोड़ी है। फिर मैंने अपनी माँ के बारे में उन्हें बताया। वह अपने पीछे ईसाई मत के दो हज़ार वर्षों के इतिहास का ठप्पा लगने पर भी पण्डित मदनमोहन मालवीय जैसी कट्टरता से छूआछूत पर अमल करती थीं। वह गर्मियों तक में भी घर के कुएं से अछूतों को पानी नहीं भरने देती थीं जबकि पानी की बड़ी भारी किल्लत होती थी। अगर उनसे बीस फुट की दूरी पर कोई भी अछूत आ खड़ा होता था तो वे तुरंत स्नान के लिए दौड़ पड़ती थीं।

तब अंबेडकरजी ने गर्व के साथ कहा—जब हिंदुओं ने वेद लिखवाने चाहे तो

तो उन्होंने व्यास को बुला भेजा, जो सवर्ण हिंदू नहीं थे। जब उन्होंने महाकाव्य की रचना करानी चाही तो वाल्मिकी को बुलाया जो अछूत थे। जब उन्हें संविधान तैयार कराने की जरूरत हुई तो उन्होंने मुझे बुला भेजा।' उन्होंने आगे घोषणा की कि हिंदी प्रदेश की सबसे बड़ी ट्रेजेडी यही रही कि इस प्रदेश के लोगों ने वाल्मिकी का त्याग कर तुलसीदास को सिंहासन पर आसीन कर दिया।" उनका विचार था कि इस विशाल प्रदेश के लोग तब तक पिछड़े और पुरातनपंथी रहेंगे, जब तक वे तुलसीदास के स्थान पर वाल्मिकी को नहीं ले आते। उन्होंने मुझे स्मरण कराया कि वाल्मिकी रामायण में लिखा है 'जब राम और लक्ष्मण भारद्वाज ऋषि के आश्रम में पहुँचे तो ऋषि ने राम के सामने कुछ मोटे-ताजे बछड़े खड़े कर दिये और भोज के लिए उनमें से कुछ का चुनने के लिए कहा। इस प्रकार राम और उनके साथियों को बछड़े का मांस परोसा गया। तुलसीदास ने इस तथ्य को अपनी रचना में से गोल कर दिया।" मैंने भी उन्हें बताया कि वात्सायन ने अपने कामसूत्र में लिखा है कि युवा जोड़ों को विवाह से छः महीने पहले से बछड़े का मांस खिलाना शुरू कर देना चाहिए।

मेरी तरफ उँगली उठाते हुए अंबेडकरजी ने कहा, 'तुम मलयालियों ने देश को सबसे अधिक नुकसान पहुँचाया है।' मैं चौंक उठा और मैंने पूछा कि वह कैसे? उन्होंने कहा, 'आपने बौद्ध धर्म को देश से निकालने के लिए शंकराचार्य को उत्तर की तरफ धर्मयात्रा पर भेजा था जो तर्कशास्त्र का बड़ा रूखा पंडित था।' साथ ही अंबेडकरजी ने यह भी कहा कि भारत ने बुद्ध जैसी महान आत्मा और नहीं पैदा की। हाल की सदियों में भारत ने जो महानतम व्यक्ति पैदा किया, वह महात्मा गांधी नहीं स्वामी विवेकानंद थे।

मैंने उन्हें याद दिलाया कि गांधीजी ने ही नेहरूजी को सुझाव दिया था कि वे आपको सरकार में शामिल होने को बुलायें। उन्हें इस बात का कतई पता न था। मैंने अपने कथन को सुधारते हुए कहा कि यह विचार नेहरू और गांधी दोनों को एक साथ सूझा था। इन्हीं अंबेडकरजी ने संविधान सभा में संविधान का बिल पेश किया था।

अंबेडकरजी ने मुझे बताया कि उन्होंने बौद्ध धर्म अपनाने और अपने अनुयायियों को भी यही सलाह देने का फैसला कर लिया है।

जब तक वे दिल्ली में रहे हमेशा मुझसे संपर्क बनाये रहे। वे महान व्यक्ति थे और सही अर्थों में भारतीय जनता द्वारा नमन के अधिकारी हैं।

5

महात्मा गाधी

हालाँकि गाधीजी स सपक बढाने के मौके मुझे बहत मिले लेकिन स्वभाववश मैं उनसे दूर ही रहा। निस्सदेह मैं उनकी महानता का कायल था। लेकिन मुझे वे अपनी समझ से परे जान पडते थ। मेरा उनसे सपक इसी सीमा तक था कि नेहरूजी के लिखे महत्वपूण पत्रो को मैं उन तक पहुँचाता था।

1947 के शुरू म मेरे एक विदेशी मित्र ने मुझे एक बहुत ही सुदर, छोटा-सा हाथी दाँत के रग का ट्राजिस्टर रडियो भट किया जो उस समय अपनी किस्म का अकेला था। बटन खोलते ही वह बजना शुरू कर देता था। ढक्कन बद करत ही बजना बद हो जाता था। नेहरूजी की नजर पडी तो वे उस पर लटटू हो गये। इसलिए मैंने वह उन्ह दे दिया। उसे उन्होने अपने प्रसाधन कक्ष म रख लिया और शेव करत समय वे अक्सर उस पर समाचार सुना करते थे। भोजन की मज पर भी व उसे साथ ले आते थे। उन्होने उसका जिक्र गाधीजी से किया और मेरे बारे म भी उन्ह बताया। गाधीजी मेरे बारे म पहले ही राजकुमारी अमतकौर से सुन चुके थे। नेहरूजी ने मुझ से कहा कि गाधीजी ने कभी भी रडियो नही सुना और मुझे बिरला हाउस (जहा गाधीजी ठहरे हुए थे) रेडियो ले जाने क लिए कहा ताकि व छ बजे शाम को समाचार-बुलटिन उस पर सुनें। मैं छ बजे से कुछ मिनट पहले बिरला हाउस पहुच गया और गाधीजी के सामने पेश हो गया। उ होने मुझे सामने फश पर ही बैठ जाने को कहा। छ बजे मैंने रेडियो खोल दिया। गाधीजी ने एक मिनट तक रेडियो सुना और फिर कहा 'बद कर दो क्या आजकल कोई समझदारी की बात करता है ?' भारत म उन दिनो गभीर साम्प्रदायिक दगे हो रहे थ।

गाधीजी की बहुत-सी बातें मुझे अपनी समझ स परे की जान पडती थीं

(1) हिंदु पुराणो क रामराज्य का प्रचार। मुस्लिम और दूसरी अल्प

सम्यक जातियों के लिए रामराज्य का कोई अर्थ नहीं था। रामराज्य के लगातार प्रचार ने उन्हें गांधीजी से विमुख कर दिया।

(2) गौ-पूजा का प्रचार और 'हरिजन' में इस विषय पर लगातार लेख। इससे न केवल मुस्लिम और दूसरी अल्पसंख्यक जातियाँ तथा हरिजनों के कुछ सम्प्रदाय और आदिवासी तथा आदिम जातियाँ ही विमुख हुईं बल्कि पढ़े लिखे ज्यादों हिंदू भी उनसे परे चले गये जो या तो किसी की भी पूजा नहीं करना चाहते थे या चाहते थे तो गौ से बेहतर किसी चीज की।

(3) विवाहित दंपतियों के लिए ब्रह्मचर्य का उपदेश। मोरारजी देसाई और कुछ दूसरे गिने चुने सज्जनों ने ही इस उपदेश को अपनाया। जो कुछ लोग ब्रह्मचर्य का पालन करते थे अंत में उन्होंने भी उसे छोड़ दिया। कुछ में मानसिक विकार पैदा हो गये।

(4) भारत में खिलाफत आंदोलन का समर्थन। यह गांधीजी का सबसे अधिक अवसरवादी जोखिम था। कमाल अतातुर्क आये और उन्होंने खिलाफत-परंपरा का उन्मूलन कर दिया। इन घटनाओं की रोशनी में गांधीजी की बुद्धि मानो मंद नजर आने लगी। गांधीजी बालू पर हिंदू मुस्लिम एकता की दीवार खड़ी करना चाहते थे।

(5) 1934 के शुरू में गांधीजी का अवैज्ञानिक और चौंका देने वाला यह कथन कि बिहार का भूकंप छूआछूत के पाप का दंड था।

(6) भारत में विलायती कपड़े के बहिष्कार के कारण लंकाशायर के कपड़ा कारखानों के बेरोजगार हो गये मजदूरों की धूम्रपान की आदत की कठोर निंदा।

(7) कांग्रेस के एक कार्यकर्ता से कठोर बरताव, जो सौंपी गयी छोटी सी रकम का पूरा हिसाब नहीं दे सका था। गांधीजी ने कड़ी गर्मी में उसे अपने गाँव पैदल चल कर जाने का आदेश दिया था हालाँकि वे व्यक्तिगत रूप से मानते थे कि वह व्यक्ति ईमानदार और निरपराध है। सी एफ एंड्रयूज ने इस कठोर बरताव को देखा तो वे उस व्यक्ति को एक तरफ ले गये और उन्होंने बिना गांधीजी को बताये उस व्यक्ति को रेलगाड़ी के किराये और जेब खर्च के लिए कुछ रुपये दे दिये।

(8) हिंदी की कट्टर हिमायत जो भारत की सबसे कम विकसित भाषाओं में से है। इस मामले में तो वे हिन्दी क्षेत्र के उग्रवादियों से भी आगे निकल गये थे।

(9) किसी निर्भीक ईमानदार और स्फटिक की तरह स्वच्छ चरित्रवान अछूत कन्या का भारत के राज्याध्यक्ष पद के लिए नामांकन का अव्यावहारिक प्रस्ताव रखकर दुनिया के सामने आदर्श रखने का प्रयास। लेकिन उचित समय पर उन्होंने लार्ड माउंटबेटन को सलाह दी कि वे स्वतंत्र भारत के प्रथम गवर्नर जनरल बनने के कांग्रेस के प्रस्ताव को स्वीकार कर लें। लेकिन साथ ही माउंटबेटन को उन्होंने यह भी सलाह दी कि वे वायसराय-हाउस छोड़कर बिना नौकरों के एक सादा घर में रहें। वे वायसराय हाउस में अस्पताल बनाना चाहते थे। वे माउंटबेटन को यह परामर्श देने से भी न चूके कि वे अपने लिए सब्जियाँ अपने-आप उगायें और अपना शौचालय भी अपने हाथों से साफ करें।

(10) गांधीजी द्वारा जून 1940 में वायसराय लार्ड लिनलिथगो को उस समय लिखा पत्र जब हिटलर ने हालैंड को रौंद डाला था और बेल्जियम का पतन भी होने वाला था। पत्र में लिखा था, 'यह नरसंहार तुरंत बन्द होना

चाहिए। आप हार रहे है। अगर आप लडाई म जुटे रहे तो और अधिक रक्तपात होगा। हिटलर कोई बुरा आदमी नही है। अगर आप लडाई बद कर देंगे तो वह भी रुक जायगा। अगर आप मुझे जमनी या वही और भेजना चाहता मैं तयार हूँ। आप (इग्लड के) मत्रिमडल को भी इसकी सूचना दे सकत हैं।"

इसका कोई रिकाड मौजूद नही कि वायसराय न गाधीजी का यह महत्व पूण पत्र ब्रिटिश मत्रिमडल को भेजा या नही और कि इस पत्र ने 10 डाउनिंग स्ट्रीट मे क्या खलबली मचायी थी।

(11) गाधीवादी अथनीति जो भारत म शाश्वत पिछडेपन और ग़रीबी को बनाये रखने का अचूक तरीका है। गाधीजी न खाद्यान्नो और दैनिक उपयोग की ज़रूरी चीज़ो पर स नियत्रण हटाने की हिमायत की थी और भारतीय हाथो म सरकार की बागडोर आत ही तुरत राशनिंग खत्म करने की माँग की था हालाकि उस समय खाद्य स्थिति बहुत ही नाजुक थी। नेहरूजी के कहने पर जान मथाई गाधीजी से मिले और उन्होने एक घटे तक इस विषय पर उनस बात की। मथाई न सूचना दी कि पूरे एक घटे की बातचीत के दौरान उन्ह लगा कि व किसी दीवार स बातें कर रहे हैं। मामला मन्त्रिमडल के सामने आया जिसम पक्ष विपक्ष मे समान मत थे। प्रधानमत्री ने अपना मत देकर गाधीजी की माँग के पक्ष म फसला कर दिया। इसके खतरनाक परिणाम निकले और गाधीजी की अथ नीति अपनाने की जनता को बहुत भारी कीमत चुकानी पडी। सरोजिनी नायडू ने एक बार कहा था बहुत स लोग कभी भी नही जान पायेंगे कि इस बूढे व्यक्ति को गरीबी मे रखने के लिए कितना धन खच करना पडता है।

(12) अपन एक अनशन के दौरान गाधीजी न कहा था मेरे पेशाब म ऐसीटोन आने का कारण यही है कि राम म मेरी आस्था अधूरी है।'

(13) विभाजन के दौरान पजाब म बलात्कार का शिकार औरतो को गाधीजी की यह सलाह कि वे अपन दातो से अपनी जीभ काट डालें और मरने तक अपनी साँस रोके रखें। इस विषय म कन्फ्यूशियस ने एक युवा लडकी को इसस एकदम विपरीत परामश दिया था। उन्होने उस लडकी स कहा था अगर तुम अपने को बलात्कार से न बचाये जाने की स्थिति म पाओ और बचकर भागने का भी अवसर न मिल तो मेरी सलाह यही है कि चुपचाप पीठ के बल लेट जाओ और उसका मजा लो।"

(14) जनसख्या का नियमित करने के लिए गाधीजी द्वारा सतति निग्रह क आधुनिक साधनो का बहिष्कार। उन्ह वही साधन स्वीकाय था, जिस पर वे स्वय अमल करते थ—आत्मनिग्रह। उन्होने इसानी कमज़ोरी के लिए छूट दने से इकार कर दिया था।

अहिंसा साधन और साध्य निष्काम कम करुणा और अपन शत्रुओ से भी प्रेम जसे विषयों पर गाधीजी मुझे कुछ सिखा सकते हैं यह कभी भी मेरे दिमाग मे नही आया क्योकि दो हजार वष पहले ईसामसीह इन आदर्शों का ज्यादा सुदर और मुखर प्रचार कर चुके थे और इन्हें अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट रूप स व्यवहार म ला चुके थ। जी के चेस्टरटन ने एक बार कहा था ईसाई मत को आजमाया नही गया और इस कारण उस अधूरा पाया गया। इसे कठिन मानकर कभी आजमाया नही गया। गाधीजी के आदर्शों के बार म कमोबेश मेरा यही खयाल था। मैं कोशिश करने क बावजूद भी गाधीजी का अनुयायी कभी न बन सका। असलियत यह थी कि मैंने कोशिश ही नही करनी चाही।

गाधीजी द्वारा भारत विभाजन का विरोध साहसिक था, लेकिन उनके अतीत को देखते हुए उनका यह विरोध अयथार्थवादी था। उनके कुछ पिछले कार्यों ने देश के विभाजन म योग दिया था। आश्चय नही कि काग्रेस कायकारिणी समिति ने एक प्रस्ताव पारित करके उन्हे विभाजन का निणय लेने के दायित्व से मुक्त कर दिया।

गाधीजी के जीवन का अतिम दौर उनका सबसे उत्कृष्ट दौर था, विशेषकर उनके भौतिक अस्तित्व का अतिम महीना (जनवरी 1948)। वे दो मामलो के बारे म बहुत उद्वेलित थे

(1) हफ्तो से मुसलमानो के प्रतिनिधि उनस सलाह माग रहे थे कि क्या वे मौत का खतरा उठायें या सघष करना छोड द और पाकिस्तान चले जायें? गाधीजी ने सलाह दी "यही रुके रहो और भागने से अच्छा है कि मौत का खतरा उठाओ।' दिल्ली और उसके आसपास के इलाको म हिंदू सिख शरणार्थी भारी सख्या म आ गये थ और वे भारत म रह गये सभी मुसलमानो से बदला लेन पर तुले हुए थे। उन्होंने दिल्ली शहर और आसपास के सभी इलाका मे मस्जिदो और मुसलमानो के घरा पर कब्जा कर लिया था। गाधीजी चाहते थे कि वे इन सभी स्थानो को उनके मुसलमान मालिको को लौटा दें और वापस अपने कैंपो म चले जायें।

(2) भारतीय मत्रिमडल ने पाकिस्तान को 55 करोड रुपये के विभाजन-ऋण का भुगतान रोकने का फसला किया। मत्रिमडल वह पैसा दकर पहले से विक्षुब्ध जनमत को और विक्षुब्ध नही करना चाहता था क्योकि सभावना यही थी कि उस समय मौजूदा स्थितियो म उस पसे का इस्तेमाल पाकिस्तान हथियार खरीदकर भारत के खिलाफ करता। लाड माउटबेटन को डर था कि भुगतान रोकने के इस फसले से हर बात पर उतारू दिवालिया जिन्ना कही युद्ध पर न उतर आयें। मत्रिमडल ने माउटबेटन की सलाह सुनने से इकार कर दिया। गाधीजी ने मत्रिमडल का निणय अनतिक माना।

इन दो मामलो को लेकर गाधीजी का अतिम अनशन (13 से 18 जनवरी, 1948 तक) शुरू हुआ। सरदार पटेल ने 55 करोड रुपये के भुगतान पर गाधीजी से बातचीत की। लेकिन गाधीजी का एक ही उत्तर था, 'तुम वह व्यक्ति नही, जिसे मैंने कभी जाना समझा था।" (गाधीजी पटेल के उन दो भाषणो पर बहुत विक्षुब्ध थे जो पटेल ने लखनऊ और जयपुर की जन-सभाओ म दिये थ और जिनमे उन्होने गाधीजी की कडी आलोचना की थी)। गाधीजी के अनशन के तीसरे दिन ही भारत सरकार ने पाकिस्तान को इस रकम के तुरत भुगतान की घोषणा कर दी।

18 जनवरी को जुझारू सिखो मुसलमानो, ईसाईयो, पारसियो, हरिजनो, साधुओ, हिंदू महासभाईयो और राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ वालो ने गाधीजी का समथन किया और यह वचन दिया कि व न केवल दिल्ली म बल्कि पूरे भारत म साम्प्रदायिक शाति बनाये रखेगे। पाकिस्तान के हाई कमिश्नर भी वहा मौजूद थे।

गाधीजी व्यक्तियो की आलोचना करत समय बेहद कटु भी हो सकते थ। मेरे पास राजकुमारी अमतकौर को लिखा गया बिना तारीख वाला उनका एक पत्र इस प्रकार है

"शरारत कर चुकने के बाद तुमने मुझसे गोविन्ददास के बारे म मेरी राय पूछी है। उनके बारे म मेरे अनुभव बडे कटु है। वे महत्वाकाक्षी, दभी,

अभद्र कुटिल और अविश्वसनीय व्यक्ति है। उनके हर काम से हानि ही होती है। यह उन लोगों की राय है जिनका उनसे साबका पड़ता है। मैं उन्हें अच्छी तरह जानता हूं। मैंने उन्हें बंट की तरह माना है। पहले मेरी राय उनके बारे में अच्छी थी। लेकिन मुझे तुरंत ही पता चल गया कि वे मसूबेबाज आदमी हैं। अब वे कभी कभार ही मेरे पास आते हैं। यह सब कुछ कहते हुए मुझे अफसोस हो रहा है लेकिन मेरा अनुभव इसी तरह का है। आशा है तुम्हारी सेहत बरकरार होगी।

नेहरूजी ने एक बार मत व्यक्त किया था कि घटनाओं के प्रति गांधीजी का रवैया स्त्रियोचित होता है यानी सहजबुद्धि से उत्पन्न रवैया जो सगत कारण खोजकर परिणामों तक पहुंचाने के बजाय एक प्रतिक्रिया होता है। राजकुमारी अमृतकौर को 3 जून 1949 के एक पत्र में नेहरूजी ने लिखा था

> बापू से मिलकर मुझे खुशी हुई और मेरी उनसे बातचीत हुई। कुछ मामले साफ हो गये लेकिन मैं उनसे फिर भी मिलना चाहूंगा और जानना चाहूंगा कि वे क्या चाहते हैं। कहने की धृष्टता करूं तो कहा जा सकता है कि घटनाओं के प्रति उनका रवैया कुछ स्त्रियोचित है। मतलब सहजबुद्धि से प्रेरित रवैया जो सगत कारण खोजकर परिणामों तक पहुंचने के बजाय एक प्रतिक्रिया के रूप में होता है। इस बारे में और भी बहुत कुछ कहा जा सकता है लेकिन कभी-कभी ऐसा करना खतरे से खाली नहीं।

सभी जानते हैं कि नेहरूजी कांग्रेस के सभी प्रकार के मसौदे तैयार करते थे, चाहे अध्यक्ष कोई भी हो। अंग्रेज अधिकारियों को लिखे जाने वाले लगभग सभी पत्रों और कांग्रेस के प्रस्तावों का मसौदा वही तैयार करते थे। आगे एक पत्र दिया गया है जो 6 मई 1946 को लार्ड पैथिक लारेंस को लिखा गया था और जिसका मसौदा नेहरूजी ने तैयार किया था। गांधीजी ने इसे सशोधित किया था और कांग्रेस-अध्यक्ष मौलाना आजाद ने इस पर हस्ताक्षर किये थे

> मेरे साथियों और मैंने कल की कान्फ्रेंस की कारवाई को बड़े ध्यान से सुना और समझने की कोशिश की कि हमारी बातचीत का रुख किस तरफ जा रहा है। हमारी बातचीत और उससे जुड़े कुछ मुद्दे इतने अस्पष्ट हो गये थे कि मैंने अपने को कुछ परेशानी और उलझन में पाया। हालांकि समझौते का आधार खोजने के तरीके और साधन पता लगाने के हर प्रयत्न के साथ हम अपने को संयुक्त करना चाहेंगे लेकिन हम कैबिनेट मिशन या मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों को यह भ्रम नहीं पालना चाहिए कि कान्फ्रेंस की कारवाई उस हद तक सफल हो गयी है जहां पर वह अब तक पहुंची है। हमारे सामने जो समस्याएं हैं उनके प्रति अपना सामान्य रुख मैंने अपने 28 अप्रैल को लिखे पत्र में स्पष्ट में लिख दिया था। हमने देखा कि हमारे उस रुख को कतई नजरअंदाज कर दिया गया है और उससे एकदम उलटा रुख अपनाया गया है। हम महसूस करते हैं कि कान्फ्रेंस के शुरू के तौर से ही कुछ बातें मानकर चलना होगा वरना कोई प्रगति नहीं हो सकती। लेकिन जो पूर्व धारणाएं बुनियादी मुद्दों पर ध्यान न देकर या उनके विपरीत चलती हैं वे बाद के दौर में गलतफहमी पैदा करेंगी।
>
> 28 अप्रैल के अपने पत्र में मैंने लिखा था कि हमारे सामने बुनियादी

समस्या भारत की आजादी और बाद में भारत से ब्रिटिश सेनाएँ हटाने की है क्योंकि हिंदुस्तान की जमीन पर जब तक विदेशी फौजें रहती हैं तब तक आजादी नहीं हो सकती। हम अभी दूर या निकट भविष्य में नहीं पूरे भारत की आजादी मांगते हैं। बाकी मुद्दे इसके बाद आते हैं और उन पर बाद में संविधान-सभा में पूरी तरह विचार किया और निर्णय लिया जा सकता है।

कल कांफ्रेंस में मैंने फिर से इस मुद्दे को उठाया था और हम यह जान कर बड़ी खुशी हुई थी कि आप और आपके साथियों तथा कांफ्रेंस के दूसरे सदस्यों ने आजादी को हमारी बातचीत का आधार स्वीकार किया था। आपने कहा था कि संविधान-सभा इस बारे में अंत में निर्णय लेगी कि आजाद हिंदुस्तान और इंग्लैंड के बीच किस तरह के संबंध कायम हो सकते हैं। सभी बात पूरी तरह सही होते हुए भी इससे अब की स्थिति पर कोई असर नहीं पड़ता और वह स्थिति है इसी समय हिंदुस्तान की आजादी की स्वीकृति।

अगर वस्तुस्थिति वही है तो इसके निश्चय ही कुछ परिणाम सामने आयेंगे। हमने कल महसूस किया था कि इन परिणामों पर गौर नहीं किया गया। कोई संविधान-सभा आजादी के सवाल का फैसला नहीं करने जा रही है। इस सवाल का फैसला अभी और यहीं हो जाना चाहिए और हम समझते हैं कि यह फैसला हो भी चुका है। संविधान-सभा आजाद देश की जनता के संकल्प का प्रतिनिधित्व करेगी और उसी के अनुरूप कार्य करेगी। वह पहले से किये गये किसी भी फैसले से नहीं बँधेगी। इससे पहले अंतरिम सरकार बनानी पड़ेगी जो जहाँ तक संभव होगा, आजाद हिंदुस्तान की सरकार की हैसियत से काम करेगी और वही बदलाव के दौर में सारी व्यवस्था अपने आप सम्हालेगी।

हमारी कल की बातचीत में साथ-साथ काम करने वाले प्रांतों के समूहों का जिक्र बार-बार आया था और यहाँ तक सुझाव दिया गया था कि इस तरह के समूह को कार्यपालिका और विधायी तंत्र दे दिया जायेगा। समूहन के इस तरीके पर हमने अभी तक कोई विचार नहीं किया है लेकिन इसके बावजूद हम बातचीत में उसे मानकर चल रहे लगते हैं। मैं एकदम स्पष्ट करना चाहूँगा कि हम प्रांतों के एक समूह या संघ की यूनिटों को कार्यपालिका और विधायी तंत्र देने के बिलकुल विरुद्ध हैं। इसका मतलब तो ज्यादा से-ज्यादा उपसंघ होगा और हम आपको पहले ही बता चुके हैं कि हम यह स्वीकार नहीं। इससे तो कार्यपालिकाओं और विधायिकाओं के तीन स्तर पैदा हो जायेंगे। इस तरह का तंत्र बोझिल, गतिहीन और अव्यवस्थित होगा और इसमें झगड़े की गुंजाइश बराबर बनी रहेगी। जहाँ तक हम जानकारी है, इस तरह का तंत्र किसी और देश में नहीं है।

हमारा यह दृढ़ मत है कि भारत के विभाजन के बारे में किसी तरह के प्रस्ताव पर विचार करने का अधिकार इस कांफ्रेंस को नहीं है। अगर इस विषय पर विचार होना ही है तो मौजूदा सर्वोच्च सत्ता के प्रभाव से मुक्त संविधान-सभा ही इस पर विचार करेगी।

एक और बात हम स्पष्ट करना चाहते हैं कि हम कार्यपालिका या विधायिका के संदर्भ में विभिन्न दलों के बीच समानता के सुझाव को स्वीकार नहीं करते हैं। हम मानते हैं कि हर दल और हर संप्रदाय के दिमाग में से डर

और संदेह दूर करने का हर संभव प्रयास किया जाना चाहिए। लेकिन इसके लिए अव्यावहारिक तरीके अपनाना प्रजातंत्र के उन बुनियादी सिद्धांतों के विरुद्ध जाता है जिनके आधार हम अपना संविधान तैयार करेंगे।

नीचे 12 जून 1946 को वायसराय लार्ड वेवल को गांधीजी की तरफ से लिखा गया पत्र उद्धृत है जिसका मसौदा नेहरूजी ने तैयार किया था और जिसे संशोधित गांधीजी ने किया था

खेद है कि आपके आज की तारीख के पत्र का उत्तर देने में मुझे जरा देर हो गयी। अंतरिम सरकार के बारे में आप और श्री जिन्ना से विचार विमर्श करने के लिए आपके आज 5 बजे के आमन्त्रण ने मुझे कुछ परेशानी में डाल दिया है। मुझे किसी भी समय आपसे भेंट करने में खुशी होगी लेकिन इस तरह के मामलों में हमारे अध्यक्ष मौलाना आजाद ही हमारे औपचारिक प्रवक्ता होते हैं। वे अधिकार के साथ बोल और बातचीत कर सकते हैं जो मैं नहीं कर सकता। इसलिए उचित यही है कि वही हमारी ओर से ऐसे आधिकारिक विचार विमर्श में हिस्सा लें जो हमारे और आपके बीच हो। लेकिन चूंकि आपने मुझे आने के लिए कहा है मैं निश्चय ही आऊँगा। लेकिन मुझे आशा है कि आप मेरी स्थिति समझेंगे और मैं बिना किसी अधिकार के ही आपसे बातचीत कर सकता हूं क्योंकि बातचीत का अधिकार तो हमारे अध्यक्ष और कार्यकारिणी समिति को ही है।

बहुत-से लोगों का बयान है कि नेहरूजी ने ही सबसे पहले गांधीजी को राष्ट्रपिता कहकर पुकारा था। यह गलत है। यह नाम सरोजिनी नायडू ने दिया था। नई दिल्ली में हुई एशियन रिलेशंस कांफ्रेंस (28 मार्च से 2 अप्रैल 1947 तक) के मंच पर जब गांधीजी तेज-तेज कदमों से चलकर पहुंचे तो कांफ्रेंस के अध्यक्ष पद पर आसीन सरोजिनी नायडू ने अपनी जोरदार आवाज में उनके नाम की घोषणा राष्ट्रपिता कहकर की थी। लेकिन इसका दूसरा पहलू भी सामने आया—कुछ कुटिल लोग गांधीजी के पुत्र देवदास गांधी को राष्ट्र नाम से बुलाने लगे।

इन्हीं सरोजिनी नायडू ने किसी और संदर्भ में गांधीजी को मिकी चूहा कहा था।

गांधीजी जिन तीन बन्दरों की मूर्ति अपने सामने रखते थे उन पर मैंने बहुत गहराई से विचार किया है। बुरा मत बोलो बहुत अच्छी बात है लेकिन बुरा मत देखो और बुरा मत सुनो मुझे एकदम गलत और हानिकर विचार लगते हैं। राज्यसभा में एक ऐसी स्थिति की कल्पना कीजिए जब अध्यक्ष और राज्य सभा के सभी सदस्य तथा गैलरी में बैठे अखबार वाले ने अपने कान बंद कर रखे हों और सिर्फ भूपेश गुप्ता ही वक्ता हों। इससे ज्यादा दुखद स्थिति कौन-सी हो सकती है? न केवल श्रोता सबसे अधिक सुंदर भाषण से वंचित होंगे बल्कि जनता भी अगली सुबह समाचारपत्रों में बुद्धिमानी के अनूठे मोतियों की दैनिक खुराक से वंचित रह जायेगी।

पूरी जिंदगी नेहरूजी में पिता ग्रंथि बनी रही। इसका उजागर रूप गांधीजी के प्रति उनके रुख और रवैये में झलकता था। नेहरूजी गांधीजी के सामने अपने को पूरी तरह खोलकर रख देते थे और उनसे लगभग हर विषय पर बातें करते

थे। गाधीजी की मत्यु के बाद ऐसा कोई और व्यक्ति नही रहा, जिसस नेहरूजी खुलकर बातें कर सकते। फलस्वरूप उन्होने अपने को कई हिस्सो म बाँट लिया। बहुत से विषयो पर व सरदार पटेल और राजाजी से विचार विमश करते थे और कुछ पर मौलाना आजाद गोवि दवल्लभ पत, राधाकृष्णन और गोपालस्वामी आयगर से। यह सभी व्यक्ति उनस उम्र म बड थे। नेहरूजी प्रधानमत्री के रूप म उन्ह कभी अपने पास नही बुलवाया करत थे। जब कभी उन्ह किसी समस्या पर उनसे विचार विमश करना होता था तो वे स्वय उनके निवास पर जात थे।

30 जनवरी 1948 को शुक्रवार के दिन शाम 5 बजकर 17 मिनट पर गाधीजी की हत्या कर दी गयी। कुछ ने इसे ईसामसीह का सलीब पर चढाये जाना माना और इसे दूसरे क्रूसारोपण की सज्ञा दी। हत्या के तुरत बाद 17 याक रोड का टेलीफोन बज उठा। मैंने चोगा उठाया। बिरला हाउस से किसी ने गाधीजी की हत्या की सूचना देने के लिए फोन किया था। फोन करने वाले का खयाल था कि उस समय नेहरूजी घर पर होंगे। लेकिन व उस समय अपने सचिवालय के कामन वैल्थ मामलो के विभाग म थे। मैंने तुरत उन्ह फोन किया और वे तुरत बिरला हाउस चले गये।

भारतीय जनता को इस दुखद समाचार की सूचना देने और प्रसारण के लिए नेहरूजी बिरला हाउस से आकाशवाणी भवन की ओर जाने लगे तो एकत्र भीड म उनकी निगाह मुझ पर पडी और उन्होने मुझे अपने पास बुलाने का इशारा किया। मैं लोगो को धकेलते हुए किसी तरह उन तक पहुँचा। उन्होने मुझसे अपने साथ रहने को कहा। वे बुरी तरह टूटे हुए थे और उनका शरीर काँप रहा था। कार म नेहरूजी को लगा कि मैं उनसे कुछ कहना चाहता हूँ। उन्होने मुझे चुप करने के लिए मेरे हाथ पर अपना हाथ रख दिया। वे गहरी सोच म थे। मैं उनके साथ साथ स्टुडियो के भीतर तक चला गया जहा से उन्हे बोलना था। मैं वहा एकदम चुप बैठा रहा। नेहरूजी ने अपना हृदय द्रवित करने वाला, भावना भरा सक्षिप्त भाषण दिया जिसका पहला वाक्य था— हमारे जीवन का प्रकाश बुझ गया है।' न तो नेहरूजी न और न ही 17 याक रोड पर रहने वाले किसी और व्यक्ति न उस रात खाना खाया।

बहुत देर रात गये प्रसिद्ध अमरीकी लेखक और विशिष्ट पत्रकार विसेंट शीआन मुझसे मिलने आये। वे बच्चे की तरह रो रहे थे और बडे असहाय दीख रहे थे। मैं पास ही नरेंद्र प्लेस म उनके फ्लैट तक चलने का उनसे तैयार हो गया। फ्लैट म पहुँचते ही उन्होने तुरत स्काच की बोतल निकाल ली। यह गम गलत करने का उनका अपना तरीका था। व गाधीजी की 'लीड काइंडली लाइट' नामक जीवनी के लेखक हैं। मैंने क्षमा माँगी और विसेंट शीआन से विदा ली और सीधा घर की तरफ तेजी से चल पडा, क्योकि नेहरूजी को मेरी ज़रूरत पड सकती थी।

गाधीजी की हत्या के कुछ दिना बाद कुछ आँसू बहाते लोगो को डाँटते हुए सरोजिनी नायडू ने कहा 'यही मत्यु उनके लिए उपयुक्त थी। क्या आप उन्ह बदहज़मी से मरते देखना चाहते थ?'

राजकुमारी अमतकौर न मुझे बताया कि गाधीजी अपनी अतिम प्रार्थना सभा म उस दिन इसलिए देर स आये थ, क्योकि वे सरदार पटेल से गरमागरम बहस म उलझे हुए थे। व 6 जनवरी 1948 को लिखे गये नेहरूजी के नोट पर बहस कर रह थे, जिसकी प्रतियाँ केवल गाधीजी और पटेल को ही दी गयी थी।

कहा मैं दुनिया को यही बताने के लिए खासतौर पर यहां चला आया हूं कि वे ही लोग अपने देश का काम सम्हाल रहे हैं। मैं आकर उनके सिरों पर सवार नहीं होना चाहता। मैं बाद में लौटूंगा। उन्होंने कहा 'ठीक है फिर आप आने का कष्ट न करें। अगर आप 24 घंटे के भीतर ही यहां नहीं आ सकते तो फिर बाद में भी आने की तकलीफ न उठायें। सब कुछ खत्म हो चुका है हम भारत से हाथ धो बैठेंगे। मैंने अंत में कहा, वी पी, तुम पक्के बदमाश हो तुमने मुझे मजबूर कर दिया है।'

मैं तुरंत शिमला से दिल्ली लौट आया। आते ही मैं सीधा गवर्मेंट हाउस पहुंचा। वहां प्रधानमंत्री और उप प्रधानमंत्री मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने स्थिति की गंभीरता से मुझे अवगत कराया। वे कहने लगे, क्या आप देश की बागडोर अपने हाथ में नहीं लेंगे?' मैंने कहा कैसे ले सकता हूं? अभी तो आपने बागडोर सम्हाली है।' ठीक है लेकिन हम आंदोलन करना जानते हैं प्रशासन करना नहीं। हम अपने-आप अकेले यह काम नहीं कर सकते। आप फिर से सम्हालें। मैंने महसूस किया कि वे गंभीरता से यह बात कह रहे हैं। मैंने कहा अच्छा मैं एक शर्त पर आपकी सहायता करूंगा। वह शर्त यह है कि हम किसी तरह से इस तथ्य को छिपायें कि मैं हिंदुस्तान को चला रहा हूं। हम ऐसा प्रयत्न करें कि यही लगे कि हिंदुस्तान को आप लोग ही चला रहे हैं। और हम इस बात को गुप्त रखें कम से-कम अपने जीवन काल में तो अवश्य ही। यह आपकी भलाई और नाम दोनों के लिए उचित होगा।

मैंने कहा हम एक आपात-कमेटी बनायेंगे। उसमें शामिल किए जाने वाले लोग मैं चुनूंगा और इस कमेटी की पहली बैठक 5 बजे होगी। तत्काल बैठक बुलवाइए। ब्रिटिश रीति से मेरा एक कान्फ्रेंस सेक्रेटरी होगा जो बैठक का कार्यवृत्त लिखेगा। हमें बड़ी तेजी से काम करना होगा। मैं चाहता हूं कि प्रधानमंत्री मेरे दाएं और उप प्रधानमंत्री मेरे बाएं रहें। मैं आपसे परामर्श करूंगा और कहूंगा आपके ख्याल से क्या हम यह न करें? और आप कहेंगे जी हां। फिर मैं कहूंगा आपके ख्याल से क्या हम यह करना चाहिए? और आप कहेंगे जी हां।

इस विषय पर हाल ही में माउंटबेटन से मेरा पत्र व्यवहार हुआ है। फिलहाल इस सिलसिले को बीच में ही छोड़कर मैं माउंटबेटन के बारे में कुछ कहूंगा।

यह लिखते हुए मुझे खेद है कि तथ्य को ज्यों-का त्यों पेश करना कभी भी वी पी मेनन के गुणों में शामिल नहीं रहा। उन्होंने 4 सितंबर 1947 की रात को माउंटबेटन को अपनी तरफ से फोन किया था और उन्होंने न तो प्रधानमंत्री की सलाह ली थी और न ही सरदार पटेल की। अगले दिन सुबह ही वे मेरे पास दौड़े आये और बड़ी आजिजी से मुझसे कहा कि मैं किसी तरह से प्रधानमंत्री को सम्हाल लूं। मैंने पूछा कि क्या ओखला पर जमुना में जंगी बेड़े की लड़ाई होने जा रही है। मैंने उन्हें सलाह दी कि वे सारे मामले से तुरंत सरदार पटेल को अवगत करायें। बाद में मैंने प्रधानमंत्री को इस विषय में बताया तो मेरी आशा के अनुरूप वे गुस्से से उबल पड़े और कहने लगे कि वे इसी समय फोन पर मेनन से बात करेंगे। जैसा कि मैं जानता था कि नेहरूजी की सरकारी अमले में मेनन में काफी पहले से ही चिढ़ रही है इसलिए मैंने उनसे कहा कि इस विषय पर

सरदार उनसे बात करेंगे। नेहरूजी मे धीरज कहाँ ? वे तुरत सरदार पटेल के निवास पर जा पहुँचे। लेकिन सौभाग्य से मेनन उस समय वहा से जा चुके थ। सरदार पटेल के निवास से लौटने के बाद उन्होंने बताया कि सरदार पटेल भी मेनन से बहुत नाराज है और अब एक ही रास्ता रह गया है कि माउटबेटन को शर्मिंदगी से बचाया जाये और उन्हे दिल्ली की बिगडती स्थिति को सभालने की कारवाई मे सहयोगी बनाकर शोभनीय ढग से स्थिति से निकलने की सूरत निकाली जाये। उन्होने दिल्ली की बिगडती स्थिति बताने मे अतिशयोक्ति से काम लिया था।

14 सितबर 1976 को मुझे लिखे अपन पत्र म माउटबेटन न मेरे इस कथन का खडन किया है कि वी पी मेनन ने स्थिति को बताने म अतिशयोक्ति से काम लिया था। 'अगर आप 24 घटे के भीतर ही यहा नही आ सकत तो फिर बाद मे आने की तकलीफ न उठायें। सब कुछ खत्म हो चुका है हम भारत से हाथ धो बैठेंगे"—अगर मेनन के 4 सितबर 1947 को फोन पर कहे गय ये शब्द अति शयोक्ति नही हैं तो मैं अतिशयोक्ति का अथ ही नही जानता। मेर विचार से यह शब्द उन्मादग्रस्त औरत के मुह स निकले लगते है। मैंने माउटबेटन को अपने इसी तरह के विचार लिख भेजे।

14 सितबर 1976 को लिखे उसी पत्र म माउटबेटन न स्वीकार किया है कि 'इस तरह इसम जरा भी शक नही कि वी पी मेनन न मुझे गलत बताया कि प्रधानमत्री और उप प्रधानमत्री दोनो मुझे दिल्ली वापस बुलाना चाहत है। वास्तव म उन्होंने उन दोनो से इस विषय म बातचीत ही नही की। शिमला से दिल्ली लौट आने के लिए मेरे सहमत हो जाने के बाद उन्होने बस अपनी इस हरकत की जानकारी उन्ह दे दी। मेरे विचार स इस बात से यह तथ्य भी स्पष्ट हो जाता है कि मेरे लौटन के तुरत बाद जब नेहरूजी और सरदार पटेल मुझ से मिलने आय थे तो वे सहज स्थिति म नजर नही आ रहे थ।"

माउटबेटन ने यह भी स्वीकार किया है कि उन्ह 1969 म ही निश्चित रूप से पता लग गया था कि वी पी मेनन उन्हे गलत सूचनाएँ दिया करते थे। फिर भी अक्तूबर 1975 को बी बी सी पर दिये गय अपने इटरव्यू म उन्होने अपने श्रोताओ पर यह छाप बिठा दी कि वे नेहरू और पटेल की प्रार्थना पर ही शिमला से दिल्ली लौटे थे। अब इस स्पष्टवादिता की कमी न कहू तो और क्या कहू !

शिमला से लौटन के तुरत बाद नेहरूजी और पटेल के साथ माउटबेटन की जो बठक हुई थी मैं उसम मौजूद नही था। बैठक म जो कुछ हुआ, उसके बारे म माउटबेटन का विवरण पढने लायक है और माउटबेटन की नाटकीय अभिरुचि क अनुरूप है। कहा जाता है कि नेहरूजी ने माउटबेटन से कहा था, 'आपने लाखो जवानो की कमान सभाली है।" माउटबेटन की दक्षिण-पूर्वी एशियाई सर्वोच्च कमान द्वितीय विश्व-युद्ध म सबसे अधिक उपेक्षित कमान थी। मुझे नही पता कि उन्होने कब और कहाँ लाखो जवानो की कमान सभाली थी। भारत की सीमाओ के भीतर तैनात भारतीय थल-सेना तो उनकी कमान म नही थी। अमरीकी माउटबेटन के प्रति उदासीन थे। दरअसल वे उनकी कमान को गीदड-कमान कहा करते थे क्योकि जापान से घुटन टिकवान का काम तो जनरल डगलस मैकार्थर को सौंपा गया था। दक्षिण एशिया म अमरीकियो की दिलचस्पी तो मुख्य रूप म हवाई जहाजो मे पहाडों के पार आवश्यक युद्ध-सामग्री और उस

भारत-बर्मा चीन रोड से लारियों के जरिए चीन तक भारी माल-सामान की सप्लाई तक ही सीमित थी जिसे उन्होंने बेहद कठिन इलाके में से बनाया था और उसकी देख रेख तथा रक्षा की थी। अमरीकी तो ब्रिटेन, हालैंड और फ्रांस जैसे साम्राज्यवादी देशों द्वारा दक्षिण एशिया के विस्तृत प्रदेशों पर फिर से उपनिवेशी सत्ता कायम करने में मदद देने के लिए अनिच्छुक थे। यह भी कहा जाता है कि नेहरूजी ने माउंटबेटन से कहा था 'आप उच्चकोटि के प्रशासक हैं।' मैं हमेशा से महसूस करता रहा हूँ कि लेनिन के इस कथन में कुछ सच्चाई जरूर है 'एक बावर्ची तक भी राज्य का प्रशासन चला सकता है।

मैंने यह कभी नहीं सोचा कि दिल्ली और विभाजित पंजाब संपूर्ण भारत है जिसकी बागडोर माउंटबेटन ने संभाली थी। न ही मेरे विचार में गैर विवादास्पद मामलों पर विचार करने के लिए बनी बैठक की वैधानिक गवर्नर-जनरल द्वारा अध्यक्षता देश की बागडोर संभालने की कोशिश में आती है। गवर्नर जनरल सरकार का अंग होते हुए भी उससे परे होता है। इससे नेहरूजी और सरदार पटेल की प्रतिष्ठा पर कोई आंच नहीं आई।

अगर मुझसे पूछा जाये कि वी पी मेनन द्वारा पैदा की गयी स्थिति को छोड़ दें तो संकट में सहायता देने के लिए क्या माउंटबेटन को बुलाया जाता? मेरा उत्तर 'नहीं' में है। पाकिस्तान तक अपने को बचा गया जो हमारे से भी गयी-गुजरी हालत में था और जिसके पास अपनी राजधानी तक नहीं थी।

पंजाब और दिल्ली में जो कुछ हुआ अप्रत्याशित नहीं था। इसमें कोई शक नहीं कि विभाजन के बाद का दौर बहुत ही भयानक था और भारतीय जनता इस दौर में लार्ड और लेडी माउंटबेटन द्वारा की गयी सेवाओं के लिए उनके प्रति ऋणी है। इस देश से चले जाने के बाद भी वे भारत के पक्के मित्र बने रहे।

अब जरा फ्रीडम एट मिडनाइट को लें। माउंटबेटन ने शहीद सुहरावर्दी की बात मानकर और बाल्कन मन्त्रियों की योजना ब्रिटिश सरकार को भेजकर सबसे बड़ी गलती की थी। माउंटबेटन को यहां तक पता चल गया था कि जिन्ना इस प्रस्ताव का विरोध नहीं करेंगे। लेकिन यह माउंटबेटन के दिमाग में नहीं आया कि वे नेहरूजी से भी पूछ लें कि क्या वे इस प्रस्ताव का समर्थन करेंगे। अगर उनका यह खयाल था कि वे अपनी बात मनवा लेंगे तो वे भारी गलतफहमी में थे। मई 1947 के शुरू में मैं उस समय शिमला में वायसराय लाज में नेहरूजी के साथ था जब माउंटबेटन के दिमाग में अचानक बाल्कन मन्त्रियों के बारे में देर से अनौपचारिक रूप से नेहरूजी के विचार जानने की तरंग आई। उचित ही था कि नेहरूजी की प्रतिक्रिया बड़ी तीखी हुई। मैं उस समय उनके साथ ही था जब वे आधी रात गये झपटकर कृष्ण मेनन के कमरे में घुसे थे। माउंटबेटन को अपना प्रयास नये सिरे से शुरू करना पड़ा। नेहरूजी का तो माउंटबेटन पर से विश्वास ही उठ गया था लेकिन बाद में उन्हें यह विश्वास फिर से कायम करना पड़ा। मजे की बात यह है कि माउंटबेटन बड़ी आसानी से अपनी इस भयानक गलती को भूल गये और उन्होंने अपनी उस तरंग को रंग दे दिया है।

फ्रीडम एट मिडनाइट में नोआखाली में गांधीजी के मनु से संबंधों का उल्लेख किया गया है। लेकिन लेखकों को यह जानकारी नहीं थी कि उस महान व्यक्ति के सत्य के प्रयोग का यह क्रम बरसों पहले उस समय शुरू हो गया था, जब उनकी पत्नी कस्तूरबा जीवित थीं। कस्तूरबा ने उन्हें स्वयं इसकी अनुमति दी थी। गांधीजी की संगत में स्वर्गीय राजकुमारी अमृतकौर समेत शामिल सभी

स्त्रियाँ इस प्रयोग म भाग लती थी, जिन्होने मुझे इस विषय म वभिभक और खुले रूप म बताया। गाधीजी न राजकुमारी अमतकौर को बताया था कि इन प्रयोगो के दौरान एक से अधिक बार उनके दिमाग म कलुषित विचार आये थे। गाधीजी क अधिकाश मुख्य सहयोगिया न उनके इस काय के बारे म निजी रूप से विरोध प्रकट किया था लकिन उन्ह सफलता नही मिली। अत म सबने नेहरूजी से अपील की कि वे गाधीजी को इस छोडने के लिए राजी करें। नहरूजी ने इस तरह के नितात व्यक्तिगत मामल म हस्तक्षेप करने स सख्त शब्दो म इकार कर दिया। प्यारेलालजी न इस विषय म जो कुछ लिखा है हम भारतीयो को वह स्वीकार कर लना चाहिए—यह प्रयोग साधारण मनुष्यो क करन क लिए नही है।

7

एडमिरल ऑफ द फ्लीट, द राइट आनरेबुल, द अर्ल माउटबेटन ऑफ बर्मा, के जी, पी सी, जी सी बी, ओ एम, जी सी एस आई, जी सी आई ई, जी सी वी ओ, डी एस ओ, एफ आर एस

नव और सुदर तथा अपनी उच्चकुलीनता के प्रति जागरूक लाड माउटबेटन 22 माच 1947 को वायसराय, गवनर-जनरल और सम्राट क प्रतिनिधि के रूप म दिल्ली पधारे। उनका मिशन था अपनी पडदादी प्रथम साम्राज्ञी महारानी विक्टोरिया द्वारा स्थापित हिंदुस्तान क साम्राज्य को समाप्त करना। उच्चकुल म जन्म लेने स जो लाभ स्वत ही प्राप्त हो जाते हैं वे सभी उन्हे प्राप्त थे।

पीछे की ओर देखते हुए मैं अक्सर अचभे म पड जाता हूँ कि भारतीय उप महाद्वीप म अग्रेजो के हाथो से भारतीय हाथो म सत्ता के स्थानातरण का इतना विराट काय किस तरह पाँच महीने से कम अवधि म पूरा हो गया था।

जहा तक काम करने का सबध था माउटबेटन इसानी डायनमो थ। उनम नौ-सेना के अपने अनुभव से पुष्ट काय को पूरी तरह स करने का जमन जाति का गुण मौजूद था। हर नुक्त पर ध्यान रखने वाले माउटबेटन म अपने चुनिदा स्टाफ स अच्छे-से अच्छा काम लेने की कमाल की क्षमता थी। व अपने स्टाफ के हर सदस्य को महसूस करा दिया करते थ कि जसे व सब किसी साँझे प्रयास म हिस्सा ल रहे हो। माउटबेटन सुव्यवस्थित मस्तिष्क और उच्च स्तर की सगठन कुशलता के धनी थे।

माउटबेटन विंस्टन चर्चिल के चहेते थ जिन्होने अमरीकियो से दक्षिण-पूर्वी

एशिया के सर्वोच्च कमांडर का पद उन्हें दिलवाया था। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान भारत समेत दक्षिण-पूर्वी एशिया में उनके अनुभवों ने अभिजात्त-वर्गीय और विंस्टन चर्चिल के प्रति वफादार होने के बावजूद उदारवादी बना दिया था। लेडी माउंटबेटन तो उदारवादी थीं ही जिनमें सहृदयता और अगाध संवेदनशीलता थी। उन दोनों में आम जनता में विश्वास जगाने का अनूठा गुण था। लेकिन जिन्ना उनके प्रभाव से अछूते थे।

नूतन राष्ट्र ने अंतिम वायसराय को स्वतंत्र भारत का प्रथम गवर्नर-जनरल बनाया। वहाँ के नरेश समेत ब्रिटेन की सरकार और जनता इस पर बहुत प्रसन्न हुए। माउंटबेटन को सद्भावना का यह प्रदर्शन छू गया। 15 अगस्त 1947 के दिन माउंटबेटन को वैधानिक गवर्नर-जनरल के पद की शपथ दिलायी गयी।

भारत में वायसराय के रूप में आने से पहले माउंटबेटन को विस्काउंट का खिताब दिया गया था। भारत के स्वतंत्रता दिवस की संध्या पर उन्हें अर्ल बना दिया गया। माउंटबेटन खिताबों और अलंकरणों के कुछ ज्यादा ही शौकीन थे। स्वतंत्र भारत के गवर्नर-जनरल रहने के कुछ महीनों बाद माउंटबेटन ने नेहरूजी से ब्रिटेन-नरेश द्वारा मार्क्विस का खिताब दिलाने के लिए एक सविनय निवेदन भेजने को कहा। मैंने उनसे मना कराने की कोशिश की और प्रधानमंत्री से कहा कि माउंटबेटन इच्छा-जनित विश्वास में फँसे हुए हैं और नरेश इस सुझाव को अस्वीकार कर देंगे क्योंकि इतनी जल्दी-जल्दी खिताबों का दर्जा बढ़ाने की आमतौर पर अनुमति नहीं दी जाती। प्रधानमंत्री ने कहा "इससे क्या फर्क पड़ता है? हम कुछ गँवाने से तो रहे।" और निवेदन भेज दिया गया। प्रधानमंत्री को नरेश के निजी सचिव लार्ड लसेलीज से नकारात्मक उत्तर मिला।

माउंटबेटन के बारे में एक बात मुझे कभी समझ में नहीं आयी। वह थी अपने वंश-वृक्ष के विषय पर बहुत समय लगाना। वे इस काम में उन्नत हाबी की तरह दिलचस्पी लेते थे। उन्हें पूरे यूरोप और रूस में फैले अब के या पुराने जमाने के शाही परिवारों के उन सदस्यों का नाम गिनाने में बड़ा मजा आता था जिनमें उनकी चाचियाँ बहनें चचेरे-फुफेरे भाई-बहन भतीजे भतीजियाँ आदि थीं। फेहरिस्त काफी बड़ी थी। यह उनके जर्मन-वंश की देन थी। जिस तरह नेपाल सैनिकों का निर्यात करता है, उसी तरह जर्मनी से भी राजकुमार और राजकुमारियों का निर्यात होता था। प्रथम विश्वयुद्ध के प्रारम्भिक दौर में बर्नार्ड शा ने कहा था "यह लड़ाई जर्मनी के कैसर, रूस के जर्मन ज़ार, इंग्लैंड के जर्मन नरेश और माशियो पोइनकेयर के बीच है।" कुछ समय बाद ही माउंटबेटन के पिता प्रिंस बैटनबर्ग को मार्क्विस आफ मिल्फोर्ड हेवन का नाम दिया गया और नरेश जार्ज पंचम ने अपने हाउस का नाम विंडसर से बदल कर सक्स-कोबर्ग-गोथा रखा। इस पर कैसर ने मजाक में कहा कि शेक्सपियर की रचना 'मैरी वाइव्ज आफ विंडसर' का आगे से जर्मनी में 'मैरी वाइव्ज आफ सक्स कोबर्ग-गोथा' कहा जायगा। युवा लुईस बैटनबर्ग ने अपना अंग्रेजी नाम लुईस माउंटबेटन रख लिया। माउंटबेटन अभी तक लंदन की सोसायटी आफ जीनियालाजिस्टस के प्रमुख सदस्य हैं।

मई 1948 में माउंटबेटन ने नेहरूजी को शिमला में मशोबरा के स्थान पर वायसराय रिट्रीट में अपने और अपने परिवार के साथ कुछ दिन शांति से बिताने के लिए निमंत्रण दिया। इस यात्रा पर नेहरूजी के साथ केवल मैं ही था। हम जब वहाँ रहे कोई शाही औपचारिकता नहीं बरती गयी। माउंटबेटन स्वयं कार चलाते

श्रीमती अफवाह के स्केच
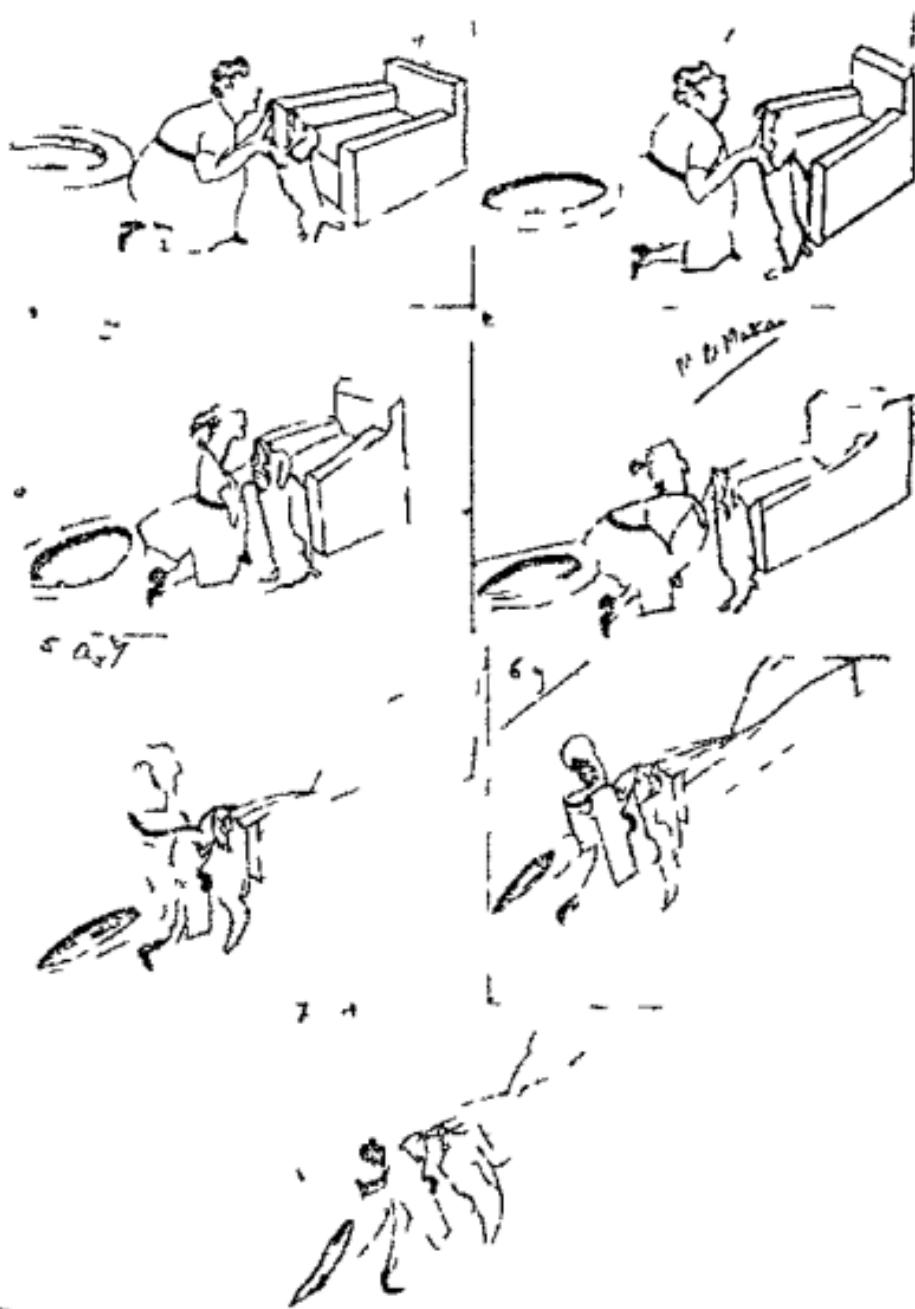
हुए हम नारकंडा नाम की जगह पिकनिक-लंच का मजा लेने के लिए छोड आते थे। यह जगह हिंदुस्तान तिब्बत रोड पर थी और ऊबड खाबड होते हुए भी ठीक थी। वह हम कुफरी तक भी अपनी कार में ले जाते थे।

एक रात मशोबरा में डिनर के बाद सात व्यक्ति एक गोल मेज के गिर्द बैठे काफी की चुस्कियाँ ले रहे थे। वे थे—लॉर्ड माउंटबेटन, कैप्टन नरेन्द्रसिंह लेडी पामेला एम ओ मथाई लेडी माउंटबेटन, जवाहरलाल नेहरू और कैप्टेन स्काट। माउंटबेटन अफवाहों पर विश्वास करने की मूर्खता के बारे में बोल रहे थे। उन्होंने कहा कि सच बहुत-से लोगों के मुंह में से होता हुआ आता है तो अपनी शक्ल इस बुरी तरह खो बैठता है कि पहचाना नहीं जाता। उन्होंने हम सबसे स्केच खींचने वाले एक खेल में शामिल होने को कहा, जिसे उन्होंने 'श्रीमती अफवाह' का नाम दिया। खेल में एक प्रेमी औरत का स्कैच खींचना था जो एक कुर्सी के सामने फर्श पर बैठी एक कुत्ते से खेल रही है। माउंटबेटन एक बार में स्केच को एक रखा खींचकर खेल शुरू करेंगे। अगला व्यक्ति इसकी नकल करेगा। तीसरा व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की नकल करेगा। और किसी दूसरे के स्केच पर निगाह नहीं मारेगा। यह सिलसिला तब तक चलेगा जब तक मेज के गिर्द बैठा अंतिम व्यक्ति अपना स्केच पूरा नहीं कर लेता। रेखा के बाद रेखा खींची गयी और हिदायतों के मुताबिक उनकी नकल की गयी। मैं चौथा व्यक्ति था और मेरा स्केच बहुत विकराल था। लेडी माउंटबेटन का स्केच धरती से परे की किसी वस्तु का दीख पड़ता था। अंतिम व्यक्ति स्काट का स्कैच तो सबसे ही भयंकर था।

सोने के लिए जाने से पहले माउंटबेटन ने सातों स्केच इकट्ठे किये और मेरी तरफ मुड़कर मुस्कराते हुए कहा, 'मैं जानता हूँ कि आप सभी तरह के महत्वपूर्ण दस्तावेजों और पांडुलिपियों को इकट्ठा करते रहते हैं। लीजिए, इस कबाड़ को भी रखिए।' यह स्कैच (पृष्ठ 50 पर) तभी से मेरे पास है।

भारत के वायसराय और गवर्नर-जनरल रहने के बाद माउंटबेटन वाशिंगटन में ब्रिटिश राजदूत होकर जा सकते थे लेकिन अक्तूबर 1948 में उन्होंने माल्टा में स्थित एक क्रूजर-स्क्वाडन की कमान सम्हालने के लिए नौसेना में लौट जाना ही चुना क्योंकि उनकी जीवन भर की साध नौसेना का फर्स्ट सी-लार्ड बनने की थी। इसी पद पर से उनके पिता को प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ने पर उन्मादी जनता और समाचारपत्रों के कड़े विरोध ने खदेड़ दिया था, क्योंकि वे जर्मन मूल के थे। जो माउंटबेटन वायसराय होने के नाते सम्राट्-नरेश से दूसरे स्थान पर आते थे, माल्टा में वहां के पूर्वता क्रम में तेरहवें स्थान पर थे।

माउंटबेटन ने अपनी महत्वाकांक्षा से कहीं अधिक प्राप्त किया। 18 अप्रैल 1955 को वे एडमिरल आफ द फ्लीट की रैंक के साथ फर्स्ट सी-लार्ड बने और 1958 में उन्हें चीफ आफ द डिफेंस स्टाफ बना दिया गया। उन्होंने 1965 में सक्रिय सेवा से अवकाश प्राप्त किया। माउंटबेटन को ब्रिटेन की लेबर पार्टी और अनुदार दलों की सरकारों ने मंत्री-पद पर बुलाया। उन्होंने मुझसे एक बार कहा कि वे गँदली राजनीति में नहीं आना चाहते, क्योंकि एक तो उन्हें वह नापसन्द है और दूसरे वे शाही परिवार के निकट हैं।

लेडी माउंटबेटन धनी उत्तराधिकारिणी थीं और उनकी मृत्यु 21 फरवरी 1960 को बोर्नियो में हुई। अपने पति के नौ-सैनिक जीवन के प्रति श्रद्धांजलि के रूप में उनकी इच्छा थी कि उन्हें समुद्र में दफनाया जाय और उनकी यह इच्छा पूरी की गयी। यह कितना सही हुआ कि भारतीय फ्रिगेट 'त्रिशूल' उस ब्रिटिश

फ्रिगेट वेकफुल' का अनुरक्षी बनकर गया जिसम उनका शव स्पिटहैड स परे समुद्र म ले जाया गया था।

21 जून 1948 को जब स वे देश छोड कर गये, माउटबेटन-दपति भारत के सच्चे मित्र बने रहे।

माउटबटन की अदम्य इच्छा थी कि व इतिहास म सामान्य से बढकर नजर आयें। वे अपने बार म कभी भी कुछ नही लिखते लकिन दूसरा स अपन बारे म लिखवान को हर किस्म का प्रोत्साहन और सहायता दन म भी नही चूकते। फिर यह बात भी है कि उनम इतिहास-लेखक जसी तटस्थता नही है।

वशावली विशेषज्ञ माउटबेटन क लिए वह दिन महान होगा, जिस दिन व अपनी आखो से अपने भतीज के पुत्र प्रिंस चाल्स को ब्रिटेन के राज्य सिंहासन पर बैठते देखेंगे और हाउस आफ विन्सर का नाम बदलकर हाउस आफ माउटबटस हो जाएगा।

8

चर्चिल, नेहरू और भारत

विंस्टन चर्चिल को दो विषयों के बारे में अधधारणा थी। वे विषय थे—भारत और नारी मताधिकार आंदोलन। प्रचंड वल्श-वक्ता एन्यूरिन बेवन के मन में उस चर्चिल की यही अधधारणाएं थीं, जब उन्होंने पार्लियामेंट में चर्चिल को लताड़ा था और उन्हें अविकसित किशोर कहा था।

जब हाउस ऑफ कामंज में चुनकर आने वाली पहली महिला लेडी एस्टर ने अपनी सीट सम्हाली तो चर्चिल को बड़ी बेचैनी और अजीब-सी सनसनी महसूस हुई थी। उन्होंने अपने कुछ मित्रों को बताया था ‘मुझे लगा कि जैसे कोई औरत मेरे बाथरूम में घुस आई है और मेरे पास अपने को छुपाने के लिए स्पंज के सिवा कुछ नहीं।”

चर्चिल के मन में भारत की वही तस्वीर थी जो उन्होंने हिंदुस्तानी फौज में सूबेदार रहकर अपने मन में बनायी थी। अंग्रेजों के बिना भी भारत हो सकता है इसकी कल्पना भी उनके दिमाग में नहीं थी। भारतीय हाथों में भारत की सत्ता के हस्तांतरण के प्रश्न पर बहस के दौरान, 6 मार्च 1947 को हाउस ऑफ कामंज में उद्वेलित और उत्तेजित चर्चिल ने, विरोधी-पक्ष के नेता की हैसियत से कहा था

> तीसरी गलती थी वायसराय-कौंसिल में नामित प्रमुख हिंदुस्तानियों का निष्कासन और हिंदुस्तान की सरकार की बागडोर नेहरू के हाथ में सौंपना। श्री नेहरू की सरकार बुरी तरह से असफल रही है और फलस्वरूप हिंदुस्तानी सरकार की पहल से ही कमजोर हो गयी सरकारी मशीनरी में भारी विकार और नैतिक पतन आया है। दो मुख्य धर्मों के बीच की लड़ाई में 30 000 से 40 000 तक लोग मारे गये हैं। भ्रष्टाचार का बोलबाला है। वे हिंदुस्तान को आजादी देने की बात करते हैं लेकिन जब से नेहरू-सरकार सत्ता में आई है आजादी पर नियंत्रण लगा दिया गया है। साम्यवादी इस

तेजी से पनप रहा है कि साम्यवादी केंद्रों पर छापे मारना और उन्हें दबाना जरूरी हो गया है। यह काम ब्रिटिश सज्जनशीलता के मारे हम लोगों ने न तो यहाँ किया और न कभी हिंदुस्तान में किया। जिस हद तक ब्रिटिश नियंत्रण में छूट दी जा रही है उसी हद तक साधारण व्यक्ति पर रोक लगाकर आजादी की तरफ बढ़ते कदमों को रोका जा रहा है—चाहे व्यक्ति का राजनीतिक दृष्टिकोण कुछ भी हो। श्री नेहरू को सरकार सौंपना सबसे बड़ी भूल थी। हिंदुस्तान और ब्रिटिश कामनवेल्थ के बीच के संबंधों का सबसे बड़ा दुश्मन होने का उनके पास अच्छा आधार है। सरकार ने जो अंतिम फैसला लिया है उससे पहले की स्थिति यही थी। इस फैसले और इससे पहले जो कुछ हुआ उन सबको देखते हुए हमारा कर्तव्य हो जाता है कि हम सरकार की हिंदुस्तान के प्रति नीति से अपने को अलग कर लें और उन नतीजों की जिम्मेदारी लेने से इनकार कर दें जो आगे आने वाले वर्षों को स्याह और सुख रहित बना देंगे।

हर कोई जानता है कि साधारण किस्म के सत्ता हस्तांतरण तक के लिए चौदह महीने की अवधि-सीमा कितना घातक है और मैं यह कहने के लिए मजबूर हूं कि सरकार शानदार युद्ध आंकड़ों की ओट में इस दुखद और अनर्थकारी सौदेबाजी को छुपाने की कोशिश में है।

हिंदुस्तान की सरकार तथाकथित राजनीतिक वर्गों को सौंपते हुए आप सत्ता ऐसे लोगों के हाथों में सौंप रहे हैं जो मिट्टी के सनम हैं और कुछ वर्षों में ही उनका नामोनिशान तक मिट जायेगा।

22 अक्तूबर से 27 अक्तूबर 1948 तक लंदन में अधिराज्यों के प्रधानमंत्रियों की कान्फ्रेंस हुई। ब्रिटिश प्रधानमंत्री क्लीमेंट एटली ने इसकी अध्यक्षता की। इससे पहले इसे ब्रिटिश कामनवल्थ के प्रधानमंत्रियों की कान्फ्रेंस कहा जाता था। अक्तूबर 1948 में हुई इस कान्फ्रेंस में भारत, पाकिस्तान और लंका के प्रधानमंत्रियों ने पहली बार भाग लिया और इसके नाम में से 'ब्रिटिश' शब्द बिना कोई कानूनी कदम उठाये अपने-आप हट गया था। उसके बाद से इसका नाम केवल 'कामनवल्थ के प्रधानमंत्रियों की कान्फ्रेंस' रह गया। इसके अलावा बहुत सी गैरसरकारी ब्रिटिश संस्थाओं ने अपने नाम के साथ जुड़ा 'एम्पायर' शब्द हटा दिया और उसके स्थान पर 'कामनवल्थ' शब्द रख लिया।

1948 में प्रधानमंत्रियों की इस कान्फ्रेंस में मैं लंदन में नेहरूजी के साथ था। हम क्लैरिजिज होटल में ठहरे थे। एक सुबह हमारे प्रतिनिधि कार्यालय से संबद्ध इंडिया हाउस का एक सचिव घबराया हुआ मेरे पास आया और कहने लगा कि विरोधी पक्ष के नेता विंस्टन चर्चिल का फोन है और वे प्रधानमंत्री नेहरू से बात करना चाहते हैं। प्रधानमंत्री की बैठक में रखा टेलीफोन मैंने उठाया। चर्चिल ने तुरंत बोलना शुरू कर दिया जैसे वे नेहरू से बातें कर रहे हों। मैंने कुछ मिनट उन्हें बोलने दिया। वे दीनता की हद तक नम्रता से बोल रहे थे। उनका निवेदन था कि नेहरूजी अगले दिन लंच उनके साथ लें। अंत में उन्होंने कहा, "मिस्टर नेहरू, क्या आप आयेंगे?" उसी क्षण नेहरूजी स्नान कक्ष से बाहर निकले। मैंने फोन उन्हें पकड़ा दिया और संक्षेप में उन्हें बता दिया कि क्या हुआ है। साथ ही यह भी कहा कि वे चर्चिल का निमंत्रण स्वीकार कर लें क्योंकि कल का पहले से तय लंच इतना जरूरी नहीं, उसे आसानी से टाला जा सकता है। नेहरूजी ने कुछ

देर तक टेलीफोन पर चर्चिल से बातें कीं और उनका निमंत्रण स्वीकार कर लिया। अगले दिन लंच से लौटने के बाद नेहरूजी ने मुझे बताया कि वहाँ कोई महत्वपूर्ण बात नहीं हुई। हुआ सिर्फ यही कि चर्चिल अपने तरीके से उनसे समझौता करने की कोशिश करते रहे थे।

महारानी एलिजाबेथ द्वितीय के राज्याभिषेक के थोड़े समय बाद लंदन में कामनवेल्थ के प्रधानमंत्रियों की कांफ्रेंस हुई जो 3 जून से 9 जून 1953 तक चली। ब्रिटेन के प्रधानमंत्री की हैसियत से विंस्टन चर्चिल ने इसकी अध्यक्षता की। पहले की तरह इस बार भी मैं इसमें शामिल हुआ। मेरे समय में यह कांफ्रेंस 10 डाउनिंग स्ट्रीट के मंत्रिमंडल-कक्ष में हुआ करती थी। अब वे किसी सरकारी भवन में जन सभाओं के रूप में होती हैं।

चर्चिल ज्यों ही कमरे में आये क्लीमेंट ऐटली की अपेक्षा उनकी उपस्थिति हरेक ने महसूस की। हरेक को लगा, 'सामने कोई महान व्यक्ति है।' वे हल्की सी तुतलाहट और तुनतुनाहट के साथ बोले। चर्चिल का महान वक्ता बनने का सपना पूरा नहीं हुआ लेकिन उन्होंने लेखन और उक्तियाँ गढ़ने में पटुता प्राप्त की। जब कभी उन्हें अपनी गढ़ी हुई कोई उक्ति पसंद आ जाती थी तो वे उसे बार-बार दोहराते रहते थे। चर्चिल लॉयड जार्ज और एन्यूरिन बेवन—दोनों को महान वक्ता मानते थे और वे दोनों वेल्श थे। यह कहते हुए कि वक्ता सहज-स्वाभाविक होना चाहिए एक बार उन्होंने कहा था, 'जब वह मेरा यार बेवन बोलने को खड़ा होता है तो उसे पता नहीं होता कि वह क्या कहने जा रहा है और बात कहाँ खत्म करनी है, लेकिन मैं—मेरे सामने हर शब्द लिखा होता है।' लेकिन चर्चिल साहित्यिक चोरी से एकदम मुक्त नहीं थे। इसके कुछ उदाहरण निम्न हैं

कनाडा की लोकसभा में दिये गये अपने प्रसिद्ध भाषण में चर्चिल ने हिटलर की उस धमकी का हवाला देते हुए 'ये चूज़े से गर्दन !" उक्ति का प्रयोग किया था, जिसमें हिटलर ने इंग्लैंड की गर्दन चूज़े की तरह मरोड़ने को कहा था। वे अरब के लारेंस' की परोडी कर रहे थे।

1940 में प्रधानमंत्री बनने के बाद हाउस ऑफ कॉमंज में चर्चिल के प्रथम भाषण में 'खून, मेहनत पसीना और आँसू" वाक्यांश का प्रयोग हुआ था। यह बायरन की कविता 'ऐज आफ ब्रोंज (कास्य-युग)' से सीधे उठा लिया गया है।

'तिरस्कृत स्त्री का प्रकोप नरक की प्रचंडता से आगे है।" यह वाक्य विलियम कांग्रीव की इन दो पंक्तियों से सीधे चुराया गया है 'नफरत में बदले गये प्यार की तीव्रता स्वर्ग में नहीं, न ही नरक की प्रचंडता तिरस्कृत स्त्री के प्रकोप से आगे।'

चर्चिल की उक्ति 'लोहे की दीवार (आयरन कर्टेन)' भी कोई मौलिक उक्ति नहीं थी। यह उक्ति सबसे पहले 1920 में इथिल स्नोडाउन की पुस्तक 'थ्रू बाल्शेविक रशिया' में प्रयुक्त हुई थी। सोवियत प्रभाव-क्षेत्र में आने वाले देशों के लिए इसका 'प्रथम प्रयोग 'दास रीश' साप्ताहिक के 25 फरवरी 1945 के अंक में गोयबल्स के संपादकीय लेख में हुआ था। उसमें उसने लिखा था

> अगर जर्मन राष्ट्र हथियार डाल देता है तो रूज़वेल्ट चर्चिल और स्टालिन के बीच हुए समझौते के कारण सोवियत रूस को सारे पूर्वी और दक्षिण-पूर्वी यूरोप तथा जर्मनी के एक बड़े हिस्से पर कब्जा करने का मौका मिल जायगा। सोवियत यूनियन समेत इस क्षेत्र पर तुरंत एक 'लोहे की दीवार'

खडी हो जायेगी जो बहुत ही ऊँची होगी।

नेहरू पर साहित्यिक चोरी का आरोप कभी नही लगा।

चर्चिल शब्दों के सही प्रयोग पर बहुत बल देते थे। एक बार खाने की मेज पर चर्चिल ने अपनी पत्नी से कहा तुम्हें 'लजीज' शब्द के साथ 'बहुत' शब्द नहीं जोडना चाहिए क्योकि 'लजीज' शब्द ही वह सब-कुछ कह देता है जो तुम कहना चाहती हो। तुम 'बहुत अनूठा' तो कभी नही कहोगी। इस सिलसिले में लार्ड मोरन कहते हैं कि चर्चिल ने एक बार एक विश्वविद्यालय में दिये जाने वाले भाषण मे निम्नलिखित उद्धरण शामिल करना चाहा था

एक बार थाम्पसन नाम का एक आदमी एक सर्जन के पास गया और उससे कहा कि मुझे बधिया कर दीजिए। सर्जन आनाकानी करने लगा लेकिन जब उस आदमी ने बहुत जिद की और तरह-तरह के तर्क दिये तो वह अंत में राजी हो गया और उसे अस्पताल ले गया। आपरेशन के बाद की सुबह थाम्पसन की आख खुली तो वह बहुत कष्ट में था। उसने देखा कि साथ के बिस्तर पर पड़ा व्यक्ति दर्द से कराह रहा है। वह उसके बिस्तर की तरफ झुका और उसने उससे पूछा "उन्होंने आपके साथ क्या किया है?" उस व्यक्ति ने उत्तर दिया मेरी सुन्नत कर दी गयी है। हे ईश्वर! थाम्पसन के मुह से निकला मैं यही तो कराना चाहता था लेकिन सर्जन के पूछने पर मेरे मुह से सही शब्द न निकला।

एक शाम चर्चिल अपने बिस्तर पर बैठे थे और गरम पानी की बोतल के लिए चिल्ला रहे थे। नौकर प्रकट हुआ। नौकर ने कहा सर आप उसी पर तो बैठे हैं यह भी कोई बात हुई। चर्चिल मुस्कराए और उन्होंने कहा बात नहीं सयोग कहो।

जून 1953 की कान्फ्रेंस की एक बैठक में चर्चिल भारतीय सेना के बारे में अचानक बहुत भावुक हो उठे और बात को बहुत बढ़ा चढ़ाकर कहने लगे मिस्टर नेहरू किसी दिन भी मेरे लिए भारतीय सेना के कुछ डिविजन काफी हैं।

कान्फ्रेंस की अंतिम बैठक में विज्ञप्ति का अंतिम रूप दिया जाना था। प्रधान मंत्रियो के सामने प्रतिनिधिमडलो के वरिष्ठ अधिकारियो द्वारा तैयार किया गया मसौदा था। शब्दों के सही प्रयोग के दो सिद्धहस्तो चर्चिल और नेहरूजी को अपना-अपना कौशल दिखाते हुए देखना सम्मोहित करने वाला अनुभव था। नेहरूजी जो भी सशोधन करने के लिए कहते थे चर्चिल एकदम सभी करते हुए स्वीकार कर लेते थे।

कान्फ्रेंस के बाहर चर्चिल ने नेहरूजी को खुश करने की हरचन्द कोशिश की। उन्होंने हैरोवियनो द्वारा नेहरूजी के सम्मान में डिनर का आयोजन कराया। चर्चिल और नेहरू—दोनो हैरो पब्लिक स्कूल में पढ़े थे।

एक सुबह 10 डाउनिंग स्ट्रीट में ब्रिटिश मंत्रिमंडल के सचिव लार्ड नार्मन ब्रुक मुझे एक तरफ ले गये और उन्होंने मुझे बताया कि पिछली रात एक गैर सरकारी समारोह में एक प्रमुख व्यक्ति ने नेहरूजी के बारे में बड़े अपमानजनक शब्द प्रयुक्त किये थे। चर्चिल ने तुरत उस व्यक्ति को सख्ती से डॉटते हुए कहा 'मत भूलो कि वह ऐसा व्यक्ति है जिसने भय और घृणा पर विजय पा ली है।'

कान्फ्रेंस की समाप्ति पर जिस दिन हम लदन छोड़ने वाले थे उससे एक दिन

पहले चर्चिल ने नेहरूजी को एक सक्षिप्त सा नोट भेजा। इसम लिखा था 'मेरे कथन को ध्यान म रखना—आप एशिया के दीपक हो।" कमा परिवतन आया था चर्चिल मे!

3 फरवरी 1955 को लाड मोरन ने चर्चिल से नेहरूजी के बारे म उनकी राय पूछी थी। चर्चिल ने कहा था, 'मेरी उनके साथ अच्छी पटरी बैठती है। मैंने उनसे कहा कि उन्हें साम्यवाद के विरुद्ध स्वतत्र एशिया के नेता की महान भूमिका निबाहनी है।" जब यह पूछा गया कि इन शब्दो की नेहरू पर क्या प्रतिक्रिया हुई तो चर्चिल न उत्तर दिया 'हा वे यह भूमिका अदा करना चाहत हैं और मैं चाहता हूँ कि वे यह भूमिका अदा करें। उनका खयाल है कि साम्यवादी उनके खिलाफ हैं और इससे जनता की राय निश्चय ही बदलगी।"

लोगो की यह धारणा कि चर्चिल और नेहरूजी का अध्ययन बहुत विस्तत था, तथ्यो के एकदम विपरीत है। इन दोनो ने अपने जीवन मे उतना अधिक पढा नही जितना अधिक लिखा और बोला।

चर्चिल और नेहरूजी—दोनो को ही अमरीकी विदेश-सचिव जोन फोस्टर डलेस स चिढ थी। अतरग बातचीत म चर्चिल डलेस को 'मदबुद्धि उजडड' कहा करते थे और चाहते थे कि वह मर-खप जाय। एक और जगह डलेस के बारे म उन्होने कहा था 'यह आदमी मथोडिस्ट पादरी की तरह प्रचार करता है और उसके प्रचार का एक ही मुद्दा होता है—माले कोव से भेंट का कोई नतीजा नही निकल सकता।" एक बार उन्होने कहा था, 'डलेस इतना चालाक है कि वह हद दरजे की बेवकूफी तक कर सकता है।' नेहरूजी बडे मजे से दोहराते थे 'डल डलर, डलेस (मन्दबुद्धि, अधिक मदबुद्धि डलस यानी अधिकतम मदबुद्धि)।' एक बार उन्होने कहा था मेरे पास डलस का जवाब कृष्ण मेनन है।' नेहरूजी के दभ स ही इस तरह की उक्ति निकली थी। नेहरूजी ने मुझे एक बार बताया था कि 'मैं जानता हूँ कि मुझम दभ बहुत है।" लेकिन उनम विनम्रता भी थी।

नेहरूजी को अपशब्द बोलने की आदत नही थी। मैंने केवल एक बार 'सूअर' (ब्लडी) शब्द उनके मुह से निकलत सुना और वह भी एक ऐसे व्यक्ति के लिए जिसका नाम मैं यहा नही खोलना चाहूँगा। लकिन चर्चिल के मुह स दस तरह के चुनिंदा विशेषण सहज रूप से खूब निकलते थे।

चर्चिल आत्म-आलोचना नही करत थ और न ही उनम दभ था। नहरूजी आत्म आलोचना करते थे और अपनी अहम्मन्यता को उन्होने स्वय स्वीकार किया था।

1940 म इग्लैंड के सबसे हताश दिनो म जब मे व प्रधानमत्री बने, चर्चिल नीद की गोलियाँ लिये बिना नही सोये। अपनी मृत्यु से दो वष पहले तक नेहरूजी का शरीर दवाईयो के जहर से एकदम मुक्त था।

चर्चिल नेपोलियन के महान भक्त थे। वे चाटवैल म अपने शयन-कक्ष मे दो आवक्ष मूर्तियाँ रखत थे एक नपोलियन की और दूसरी नेलसन की। एक दिन जब लाड मोरन नेपोलियन की मूर्ति की तरफ देख रहे थ तो चर्चिल न कहा 'ओह, कितनी सुन्दर मुखमुद्रा होगी जब इस महान विभूति ने इमानियत की तरफ देखा होगा! वह असाधारण व्यक्तित्व था। मेरी दष्टि म वह जूलियस सीजर के बाद आता है। नही वह तो सर्वोच्च है।' दूसरी तरफ नेहरूजी ने तो अपनी पुस्तक 'ग्लिम्पसिस आफ वल्ड हिस्ट्री' म नपोलियन की बडी सतही तस्वीर खींची है। लार्ड एक्टन ने आधुनिक इतिहास पर अपनी कब्रिज भाषण माला मे उसके बारे

म कहा था   नेपोलियन की बौद्धिक प्रक्रिया के अध्ययन का विषय ऐसा है जिसम बुद्धि सबसे अधिक अनुप्राणित होती है। इतिहास की इस प्रखरतम विभूति का अध्ययन पूर्ण सपूर्णता के साथ सबसे अधिक किया गया है।"

काउट एलबर्ट वेंडाल न अपनी दो महान रचनाओं (1890 म रचित) म स पहली रचना के प्राक्कथन म ही घोषित कर दिया था कि वे नपोलियन का अध्ययन किस दृष्टि से करना चाहते हैं। विषय था 1807 स 1812 तक नेपोलियन तथा रूस के एलग्जेंडर के बीच के सबध जिसके अतगत महानतम शक्ति के उत्कर्ष युग से पतन के प्रारम्भ तक की विदेश नीति का अध्ययन आ जाता है। वेंडाल की दृष्टि म इस महान ऐतिहासिक व्यक्तित्व म कुछ ऐसा था जो बरबस अपनी तरफ आकृष्ट करता था और उसके प्रभाव स कोई भी अछूता नहीं रह पाता था। कुछ ऐसा था जो सभी तरह की आलोचनाओं से परे था। पोज्जो डी बोरगो उन व्यक्तियों म स था जो बोनापाट म सबस अधिक नफरत करता था और साथ ही उसका सबस बडा प्रशसक था। उसके सुर म सुर मिलाकर वेंडाल लिखता है कि नेपोलियन के मूल्याकन का मतलब है पूरे विश्व का मूल्याकन।

वेंडाल उसकी प्रशसा म लिखता है कि वह एसी प्रतिभा थी जिसने आश्चय जनक काय स्वय किये या करने के लिए प्रेरित किया। उसकी जादुई शक्ति ने निष्ठा कर्तव्यपरायणता साहसिकता और आत्म-सम्मान जैसे उन गुणों को उच्च तम शिखर तक पहुँचा दिया जो हमारे राष्ट्र के विशिष्ट गुण हैं। इन गुणों को राष्ट्रीय गुण बनाकर और उनका उपयोग करके उसने अपने लिए वीर नायकों की सेना खडी की और कुछ समय के लिए फ्रांसीसियों को मानव जाति से ऊपर ला खडा किया।'

अगस्त 1942 म काहिरा म फील्ड मार्शल स्मटस न चर्चिल से बातें करते हुए महात्मा गाधी के बारे म कहा था वे ईश्वरीयता से युक्त व्यक्ति हैं। मैं और आप सासारिकता म सने प्राणी। गाधीजी न धार्मिक लक्ष्यों के लिए प्रेरित किया, जो काम आपने नही किया। और यही आप असफल रहे हैं।" चर्चिल ने चमकती आखों से मुस्कराते हुए उत्तर दिया सेंट आगस्टाइन के बाद से मेरे अलावा किसी और ने इतने ज्यादा पादरी पैदा नहीं किये।

नेहरूजी म चर्चिल जैसी दृढ़ता और सकट की स्थिति म चर्चिल जैसे साहस का अभाव था। भारत पर चीनी आक्रमण होने पर वे टूट गये। उनका स्वास्थ्य इस मानसिक दबाव को सहन न कर पाया। उनकी मान्यताए उनके चारों तरफ टूटकर बिखर गयी। अन्त म उनका स्वास्थ्य ढह गया। अच्छाई के बदले म बुराई पर चलने वाले चीनियों के विश्वासघात ने इस शाति प्रेमी व्यक्ति की मृत्यु को और निकट ला दिया।

चर्चिल के हाउस आफ कामस म दिये गये भाषणों म स अतिम महान भाषण फरवरी 1955 को उद्जन बम के विषय पर था। इसके दो महीने बाद उन्होंने अवकाश ग्रहण कर लिया। भाषण के अत म उन्होंने कहा था हो सकता है कि दुनिया के सभी देश अपने को इतना असुरक्षित महसूस करें कि आतकग्रस्त होकर अत म वे शाति स जीना ही सब कुछ मान लें। तब स्थिति यह हो सकती है कि इस चरम विडबना स निकलकर व इतिहास के ऐसे दौर म पहुच जहा सुरक्षा आतक का पुष्ट शिशु हो और जीवन विनाश का जुडवा भाई। इस भाषण को तैयार करने म चर्चिल न बीस घटे और इसम शामिल तथ्यों की जाँच म आठ घटे लगाये थे।

चर्चिल और नेहरूजी अपने भाषण छन्म लेखकों से नहीं लिखवाते थे, जो आजकल भारत में खूब हो रहा है। वैसे नेहरूजी भी वक्ताओं की श्रेणी में नहीं थे। लेकिन जब भी उनकी भावनाएँ उद्वेलित हुई, उन्होंने लिखकर या बिना लिखे अनायास ही अनेक सुंदर और दिल हिला देने वाले भाषण दिये।

1953 में दौरा पड़ने के बाद, जब उनका अवसान निकट जान पड़ रहा था तो चर्चिल ने अपने प्रसिद्ध चिकित्सक लार्ड मोरन से कुछ हेरफेर के साथ कहा था कि उनका रवैया भारत के बारे में गलत रहा है। लार्ड मोरन ने बाद में टिप्पणी करते हुए लिखा 'लेकिन यह स्थिति आम स्थिति नहीं थी क्योंकि आत्मस्वीकारोक्ति बीमार ने अपने बिस्तर पर की थी। लेकिन फिर भी कहा जा सकता है कि अंतिम महान साम्राज्यवादी में काफी बड़ा परिवर्तन घटित हुआ था।

इस अध्याय को लिखने में मैंने चर्चिल पर लिखी लार्ड मोरन की पुस्तक में निहित सामग्री का उपयोग किया है।

9

वर्नार्ड शॉ से नेहरूजी की भेंट

यह भेंट 29 अप्रैल 1949 को अयोत सेंट लारेंस के स्थान पर हुई। उस समय शा तिरानवें साल के थे। अगले वर्ष ही उनकी मृत्यु हो गयी।

शुरू में शा ने अपनी कार भेजने पर ज़ोर दिया था। उन्होंने लंदन में भारतीय उच्चायुक्त को एक मुद्रित पन्ने के नीचे विस्तार से यह निर्देश लिखकर भेजे थे कि अयोत सेंट लारेंस में उनके घर तक कैसे पहुँचा जा सकता है

> मेरी कार शुक्रवार साढ़े नौ बजे क्नरिजिज पहुचेगी। यह रोल्स रायस लिमाजिन है और इसमें तीन मोटे या चार पतले यात्री बैठ सकेंगे। यह पूरे दिन आपके पास रहेगी और यह आपको वापस लन्दन या रोमजे जहा भी आप जाना चाहें ले जायेगी।
>
> पूरे लंदन में एक ही टैक्सीवाला ऐसा है जो मेरे घर का रास्ता जानता है। उसका टेलीफोन नंबर है 5257। लेकिन यह आपके काम दुर्घटना की स्थिति में ही आयेगा।

मैं इस अवसर पर नेहरूजी के साथ था। कोई और व्यक्ति साथ नहीं था। हम शा की कार से ही गये। कृष्ण मेनन की रोल्स रायस लिमाजिन खाली हमारे पीछे चलती रही ताकि वापसी में हम उससे आ सकें।

शा का आवास साधारण था लेकिन काफी बड़ा और खुला हुआ। बातचीत उनके अध्ययन-कक्ष में हुई। उम्र के लिहाज से शा काफी स्वस्थ दीख रहे थे और बाद में बातचीत के दौरान हमें पता चल गया कि उनका दिमाग भी सतर्क और सजग था।

भेंट के दौरान नेहरूजी अस्वाभाविक रूप से खामोश रहे और उन्होंने अपना मुंह एक बार ही खोला। बातचीत की शुरुआत शा ने तीसरे दशक के शुरू में

लदन म गाधीजी से हुई मुलाकात से की। उन्होंने कहा कि गाधीजी फर्श पर बैठे थे, लेकिन उन्होंने उन्हें बैठने को कुर्सी दी। शा ने विस्तार स यह नही बताया कि गाधीजी की उनसे क्या-क्या बातें हुईं। शॉ ने बताया कि गाधीजी से भेंट खत्म होने पर उन्हें एक कार म वापस भेजा गया, जिसे शानदार पगडी पहने रोबीला भारतीय शोफर चला रहा था। कार से उतरने पर शा ने शोफर को आधा क्राउन टिप म दिया, जो उसने आमतौर पर शोफरो म न पाये जाने वाली मुस्कराहट और सौम्यता के साथ स्वीकार किया। यह सुनाते हुए शा हँसने लगे और उन्होंने कहा कि उन्हें बाद म पता चला कि वह शोफर वास्तव म कोई हिंदुस्तानी महाराजा ही था। यह कहकर शॉ कुछ देर तक हँसते रहे।

लेबर पार्टी की सरकार के बारे म शा का खयाल था कि उसने काफी हद तक ठीक काम किया है। उन्होंने ऐटली को नीरस व्यक्ति कहा, लेकिन साथ ही उन्हें किसी भी समिति का अच्छा अध्यक्ष बताया। शॉ ने स्टैफोर्ड क्रिप्स की खासतौर पर प्रशसा की और क्रिप्स के शाकाहारवादी होने तथा सिडनी और बीट्रिस वेब से उनके घनिष्ठ सपर्क का उल्लेख किया। शॉ ने कहा कि अर्नेस्ट बेविन का विदेश-सचिव होना अनिष्टकारी रहा। शा के विचार म बेविन म एतिहासिक दृष्टि का नितात अभाव था। उन्हें पक्का विश्वास था कि कोई भी ट्रेड-यूनियन नेता विदेश-सचिव बनने के काबिल नही। उन्होंने बताया कि बेविन तानाशाह है और वह अक्सर चिल्लाकर बोलते हुए ऐटली को बिठा देता है। शा ने राय जाहिर की कि ब्रिटिश विदेश-सचिव बनने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त और योग्य व्यक्ति कोनी ज़िलियाक्स है। वह लेबर पार्टी का लोकसभा-सदस्य और अतिवामपथी था। जब उसने चेकोस्लोवाकिया म कम्युनिस्टो द्वारा सत्ता हथियाए जाने का स्वागत किया, तो उसे लेबर पार्टी से निकाल दिया गया था।

शॉ ने अमरीका को बेहद अपरिपक्व और इस कारण खतरनाक राष्ट्र बताया। उनका पक्का खयाल था कि एटम बम का इस्तमाल कभी नही किया जायगा।

आय-कर के विषय पर शॉ ने सरकार की जो छीछालेदर की, वह बहुत दिलचस्प थी। यह कोई नयी बात नही थी। विंस्टन चर्चिल ने उनके बारे म कहा था, "राज्य द्वारा सभी प्रकार की सपत्ति को अपने स्वामित्व म लेने का शॉ ने हमेशा प्रचार किया है, लेकिन जब लॉयड जार्ज के बजट ने पहली बार मामूली-सा सुपर टैक्स लगाने की शुरुआत की तो इस पहले से धनी फेबियन ने सबसे ज्यादा शोर किया। वह लालची पूजीवादी होने के साथ-साथ ईमानदार साम्यवादी भी है।' शॉ अपने अतिम दिनो तक आय-कर के खिलाफ शोर मचाते रहे। उनम ऊँचे दर्जे की व्यापारिक सूझबूझ भी थी।

शॉ ने कहा कि वे ईमानदारी से यह महसूस करते हैं कि दुनिया को दो ही व्यक्तियो से उम्मीद है—नेहरू से और स्टालिन से। उन्होंने ब्रिटेन की स्थानीय कौंसिलो का मजाक उड़ाते हुए कहा कि उनमे ज्यादातर निकम्मे लोग भरे हुए है। शॉ ने बड़े विश्वास के साथ घोषित किया कि ससदीय प्रणाली अनुपयुक्त है—और नेहरूजी को सलाह दी कि व सोवियत प्रणाली को आजमायें जो जरा तेजी स काम करती है।' उन्होंने दृढ स्वर म बताया कि दुनिया के केवल दस प्रतिशत लोग ही शासन कर सकते हैं। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि शासन करना जरूरी है। तभी नेहरूजी ने हस्तक्षेप किया और व बोले "लेकिन मिस्टर शॉ शासन करना कौन चाहता है?" शॉ का उत्तर था आपको पसद हो या नापसन्द,

शासन आपको करना होगा।''

शा ने शिकायत की लोग मुझे पागल कहते हैं लेकिन परेशानी यह है कि वे मेरी बात सुनते नहीं।'

फिर शा ने एक भारतीय के बारे में एक कहानी सुनायी जिसका नाम पूरे मुँह में भर जाता था (प्रोफेसर दौरायस्वामी अय्यर)। उसने अपनी अंग्रेजी कविताओं के संग्रह की पाण्डुलिपि उनको भेजी और उस पर उनकी राय माँगी। शा ने पुस्तक का पहला पृष्ठ पढ़ा और तुरंत इस निष्कर्ष पर पहुँच गये कि इस व्यक्ति को न केवल कविता बल्कि सही अंग्रेजी भी नहीं लिखनी आती। फिर भी शा ने उसे एक पोस्टकार्ड यह लिखकर भेज दिया कि इससे पहले ऐसी चीज़ कभी नहीं देखी। खिलखिलाते हुए शॉ ने कहा उस बेवकूफ ने अपनी कविताएँ मेरी राय के साथ छाप डालीं।' यह कहकर शा की हँसी देर तक नहीं रुकी।

अंत में शा ने बम्बई में अपने एक सप्ताह ठहरने का ज़िक्र किया लेकिन उन्हें तारीखें याद नहीं आयीं। उन्होंने बताया कि वे जैन धर्म से प्रभावित थे जो उनकी राय में ईसाइयों के क्वेकर मत से काफी मिलता-जुलता था।

यहाँ यह उल्लेख किया जा सकता है कि दोनों विश्वयुद्धों की अवधि के दौरान शा संसदीय संस्थानों को समाप्त करने और तानाशाही को स्थापित करने की हिमायत करते रहे थे। इसी सन्दर्भ में विंस्टन चर्चिल ने उन्हें दुमुहा गिरगिट कहा था।

अंत में शा मेरी तरफ मुड़े और उन्होंने मुझसे पूछा कि मैं कौन सी पुस्तक भेंट-स्वरूप लेना चाहूँगा। मैंने कहा ड्रमेटिक ओपिनियंस एण्ड ऐसेज़। उन्होंने मेरी तरफ ध्यान से देखा और कहा कि पुस्तक पुरानी है और अब अप्राप्य है। साथ ही उन्होंने कहा अगर मेरे पास अपनी पुस्तकालय प्रति हुई तो मैं आपको दे दूँगा। उन्होंने सब जगह ढूँढ़ा लेकिन पुस्तक नहीं मिली। तब वे मुझसे पूछने लगे आप वही पुस्तक क्यों चाहते हैं? मैंने उन्हें बताया कि मैं जब कॉलेज में विद्यार्थी था तो कॉलेज की वाद विवाद सोसायटी के सामने मैंने वाद विवाद के लिए एक विषय का प्रस्ताव रखा था शेक्सपियर से हम आजिज आ चुके हैं' और मैंने अपनी बहस में जो जोरदार तर्क दिये थे वे सभी उस पुस्तक से लिये थे। शा बड़े ध्यान से मेरी बातें सुन रहे थे और उन्होंने बड़ी उत्सुकता से मुझसे पूछा परिणाम क्या रहा? मैंने उत्तर दिया प्रस्ताव बुरी तरह से पिट गया। यहाँ तक कि इस प्रस्ताव का अनुमोदनकर्त्ता भी मेरा साथ छोड़ गया और उसने विरोध में मत दिया। मैंने कहा कि प्रस्तावक के रूप में मुझ अकेले को ही इसका समर्थन करना पड़ा। शा हँसने लगे। फिर उन्होंने मेरे लिए मेजर क्रिटिकल एसेज़ पुस्तक निकाली उस पर अपने हस्ताक्षर किये और मुझे पकड़ा दी। नेहरूजी के लिए उन्होंने सिक्सटीन सेल्फ स्केचिज़' पुस्तक चुनी और उस पर अपने हस्ताक्षर किये। उन्होंने नेहरूजी के नाम का प्रथम अंश लिखा जवाहरियाल।' मैंने गलती की तरफ इशारा किया तो शा प्रतिवाद करने लगे। फिर उन्होंने अपनी घुमाऊ कुर्सी का मोड़ा और किताबों की घूमने वाली अलमारी से नेहरूजी की आत्मकथा निकाली। उन्हें तुरंत अपनी गलती का पता चल गया और उन्होंने शरारती मुस्कान के साथ मेरी ओर देखते हुए कहा इसी तरह रहने दें सुनने में अच्छा लगता है।

तब हमने उन्हें कुछ चौसा आम भेंट किये। शा का खयाल था कि इस फल की गुठली खायी जाती है। तभी शा का नौकर घंटी बजाने पर आ गया। नेहरूजी

न दोनो को समझाया कि इस फल का ,गुठली पर चला गूदा खाया जाता है। नेहरूजी न आम को काटने और खान का तरीका भी उन्ह बताया।

फिर हम उठ खडे हुए और अध्ययन-कक्ष से बाहर निकल आये। शॉ ने हमारे साथ खडे होकर फोटो खिचवाया।

इस तरह हमने उस व्यक्ति से विदा ली, जिसके बारे म विंस्टन चर्चिल ने यह शब्द कहे थे

> वह था सत, ऋषि और विदूषक—पूजनीय पारगत और अदम्य। बर्नार्ड शा को उस पीढी का नमन नहीं तो तालियाँ जरूर मिलती हैं, जो उसको विभिन्न राष्ट्रो की विभिन्न जातियो के बीच की एक और कडी तथा अंग्रेजी भाषी विश्व म महानतम जीवित साहित्यिक के रूप मे सम्मान देती है।

हम वहा स सीधे लार्ड माउटबटन के निवास पर पहुचे। वहा लेडी माउटबटन ने पूछा, 'आपम से किसी का बोलने का जरा-सा भी मौका मिला या नहीं ?"

बर्नार्ड शा की ख्याति शुरू से ही बातूनी व्यक्ति के रूप म रही है। एसा केवल एक ही अवसर इतिहास मे मिलता है जब शाकाहारी शा का मुह बद हुआ था—जब वे शताब्दी के शुरू म लदन म सर जगदीशचन्द्र बोस की प्रयोगशाला म गय थे। शा यह देखकर द्रवित हो उठे थे कि उबलते पानी म बदगोभी किस तरह तडप-तडपकर दम तोडती है। शा अपनी वाक्शक्ति खो बैठे थे और वहाँ से अपना सिर नीचा किय निकले थ।

क्लेरिजिज होटल म लौटन पर वहाँ मैंने एक प्रसिद्ध अमरीकी समाचार-पत्र के सवाददाता को प्रतीक्षा करते हुए पाया। उसने मुझसे बर्नार्ड शा से हमारी भेंट के बार म एक लेख लिखने को कहा। प्रलोभन काफी बडा था, लेकिन मैंने उससे क्षमा मांगी और बदले म केरल म प्रचलित मातृ-सत्तात्मक-व्यवस्था पर एक लख मुफ्त म देने को कहा। वह कुछ चक्कर म पड गया और मेरी तरफ घूरता हुआ बाहर निकल गया।

10

सी राजगोपालाचारी

राजेन्द्रप्रसाद और राधाकृष्णन अध्याय म भी मैंने राजाजी के बारे म लिखा है।

तीक्ष्ण मेधा और तार्किक बुद्धि क धनी राजाजी प्याज की परत-दर-परत यह जानन के लिए उधडत चल जात कि इसके भीतर क्या है। उनम लोगा को नाराज करने का विशिष्ट गुण था। स्याह शीशा की ऐनक चढाये यह व्यक्ति अपने अधिकाश मुलाकातियो को महसूस करा देता कि वे मूख हैं। इससे लोकप्रिय बनने और अपनी लोकप्रियता बनाये रखने म कोई मदद नही मिली। किंतु उन जसे नतिक साहस वाला यक्ति विरला ही था। गाधीजी के प्रति निष्ठावान और उनस अनेक सूत्रो से जुडे होने के बावजूद वे बिना हिचक के उनसे अलग हो गय। व एसे उद्देश्यो का समथन करने से भी नहीं डरे जो उन्ह जनता म लोकप्रिय बनने से रोकते थे।

व्यक्तिगत बातचीत के दौरान राजाजी और नहरूजी का तुलना करत हुए एक बार सरोजिनी नायडू ने मुझस कहा था वह मद्रासी लोमडी शुष्क तकवादी आदि शकराचाय है तो नेहरू उदात्त सवदनशील बुद्ध।

इन्दिरा ने एक बार मुझे बताया था कि उसक दादा मोतीलाल नहरू राजाजी के बारे म अतरग मे क्या कहा करते थे। वे कहत थ मै कभी जान नहीं पाता कि इन काले शीशो की ऐनक के पीछ क्या हो रहा है। एक बार मैंने इसके सिर मे सलाख घुसेडी तो देखा कि वह तो काक स्क्रू बनकर बाहर निकल आयी है। बीच म कह दू कि राजाजी ने इंदिरा की तरफ कभी ध्यान ही नही दिया। एक बार उ होंने मुझसे कहा मैं इस लडकी को तब से जानता हू जब वह अपनी माँ की गोद म दूध-पीती बच्ची थी। वह तब की दो वष की उम्र स अब तक बडी नही हुई है। उसम अपने पिता का एक भी गुण नही।

2 सितंबर 1946 को सत्ता संभालने वाली अंतरिम सरकार में राजाजी को नेहरूजी ने महात्मा गांधी के कहने पर लिया था, जबकि उस समय राजाजी कांग्रेसजनों को खासतौर पर अप्रिय थे। जब 15 अगस्त 1947 को अधिराज्य सरकार बनी तो नेहरूजी के कहने पर राजाजी ने पश्चिमी बंगाल के गवर्नर-पद पर जाना स्वीकार कर लिया क्योंकि वहाँ साम्प्रदायिक स्थिति बिगड रही थी।

राजाजी के गवर्नर-जनरल का पद छोड देने के बाद से नेहरूजी और वल्लभभाई पटेल के बीच तनाव बढ़ता गया। नेहरूजी संबंधों को और नहीं बिगडने देना चाहते थे। उन्हें गांधीजी के बिना खालीपन महसूस होता था। बहुत सोच विचार के बाद उन्होंने राजाजी के पास व्यक्तिगत अपील भेजी कि वे तुरंत दिल्ली चले आये। वे तुरंत दिल्ली आ गये और नेहरूजी के साथ उनकी खुले दिल से बातचीत हुई। वे बिना विभाग के मंत्री के रूप में उनके मंत्रिमंडल में शामिल होने को राजी हो गये। उनका मुख्य काम था नेहरूजी और सरदार पटेल के बीच शांति बनाये रखना। उन्होंने 5 मई 1950 को मंत्री-पद की शपथ ली थी। सरदार पटेल की मृत्यु के बाद गृह मंत्रालय राजाजी ने संभाला।

एक बार नेहरूजी के पास चीन में भारत के राजदूत के एम पणिक्कर का व्यक्तिगत संदेश आया कि प्रेस ट्रस्ट आफ इंडिया का एक वरिष्ठ संवाददाता हांगकांग में बैठा पीकिंग की तारीख डालकर भारत को चीन के समाचार भेज रहा है। यह समाचार चीन के विरुद्ध होते थे जो ज्यादातर अफवाहों और गप्पों के अलावा कुछ नहीं थे। नेहरूजी के आदेश पर मैंने नयी दिल्ली में प्रेस ट्रस्ट आफ इंडिया के अध्यक्ष के एस रामचंद्रन को बुलाया और उन्हें इस अनैतिक कार्य के विरुद्ध नेहरूजी की नाराजगी से अवगत करा दिया। उन्होंने वादा किया कि वे आगे से उस संवाददाता द्वारा भेजे गये समाचार समाचारपत्रों को नहीं जारी करेंगे। बाद में उस संवाददाता को हांगकांग से वापस बुला लिया गया। तब रामचंद्रन ने मुझे बताया कि इस सिलसिले में उसे राजाजी ने भी बुलाकर कहा था, 'देखो, हांगकांग में बैठकर पीकिंग की तारीख डालकर समाचार भेजना खतरनाक बात है क्योंकि चीनी किसी दिन किसी भी अंतर्राष्ट्रीय मंच पर इन समाचारों को पेश करके सिद्ध करेंगे कि चीन में समाचारपत्रों पर कोई प्रतिबंध नहीं है। उस संवाददाता से मिलने वाले सभी समाचारों को कूडे में डाल दो।' इस विषय में दो महान व्यक्तियों के अलग-अलग दृष्टिकोण उनके व्यक्तित्वों में भिन्नता का संकेत देते है। एक में शेर का-सा खुलापन था तो दूसरे में लोमडी की-सी कुटिलता।

पहले आम चुनावों के बाद 1952 के मध्य में नयी सरकार बनने तक राजाजी सरकार में रहे।

उनके दिल्ली से जाने से पहले मैं राजाजी से मिला और मेरी उनसे बातचीत हुई। उन्होंने बताया कि उनकी योजना छोटे-छोटे विषयों पर लिखने की है, जैसे साइकिल-सवारों और चालकों को सलाह सडक और सार्वजनिक स्थानों पर थूकने के बारे में हिदायतें आदि आदि। मैं यह सुनकर मुस्कराने लगा। राजाजी ने मुझसे पूछा 'क्या आपको विश्वास नहीं हो रहा है?' मैंने कहा, 'जी हाँ। मेरा खयाल है कि सभी राजनीतिज्ञ गिलहरियों की तरह होते हैं और आप भी इसका अपवाद नहीं।' फिर मैंने उन्हें एक मलयाली कहावत सुनायी 'चाहे गिलहरी कितनी ही बूढी क्यों न हो जाये पेड पर चढना नहीं छोडती।'

नेहरूजी से अलग होने के बाद राजाजी को नेहरूजी की नीतियों से बडी

चिढ हो गयी। अत म उन्होने स्वतन्त्र पार्टी बना डाली और नहरुजी की नीतियो की लगातार कटु आलोचना करने पर डट गये। वे असली गिलहरी निकले। जब भारत पर चीन का हमला हुआ तो नहरुजी के बारे म राजाजी की उक्ति थी 'उन्होने अपने-आप खिचडी पकायी है। अब अपने-आप ही उसे खायें।" इसके तुरत बाद राजाजी दिल्ली आये और उन्होंने नेहरूजी से एकात म बातें कीं। आश्चर्यजनक था कि बातचीत के दौरान उन्होने मन्त्रिमडल म शामिल होने और उनकी सहायता करने का सुझाव दिया। लेकिन नेहरुजी के यह कहकर टाल देने पर कोई आश्चर्य नही हुआ आप बाहर से ही मेरी पहले ही काफी सहायता कर रहे है। बूढी गिलहरी सकेत समझ गयी और उठकर चली गयी।

11

भारत के राष्ट्रपति की स्थिति

उत्तरी भारत के नौ राज्यो की विधान सभाएँ भग करने की उदघोषणा पर काय कारी राष्ट्रपति बी डी जत्ती द्वारा हस्ताक्षर करने म असमजस दिखाने पर 30 अप्रैल 1977 को जयप्रकाश नारायण ने एक वक्तव्य जारी किया। स्थिति यह थी कि उन नौ राज्यों म मार्च 1977 म हुए लोकसभा चुनावो म काग्रेस का लगभग सफाया हो गया था और चार राज्यो द्वारा सुप्रीमकोट म दायर की गयी रिट याचिका एकमत से खारिज कर दी गयी थी। इस वक्तव्य मे जयप्रकाश नारायण ने कहा था, 'जब राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद ने राष्ट्रपति के अधिकारो के बारे म नेहरूजी से कुछ प्रश्न किये थे तो उन्होने वे प्रश्न तत्कालीन महान्यायवादी श्री एम सी सीतलवाड और सर अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर जसे विधि शास्त्रियो के पास भेज दिये थे। उन दोनो का मत था कि राष्ट्रपति को मत्रिपरिषद के परामश पर चलना चाहिए।'

नेहरूजी ने इस तरह की कोई बात नही की थी। तथ्य इस प्रकार है। अजीब बात थी कि जिन राजेन्द्रप्रसाद ने सविधान-सभा की कारवाईयो की अध्यक्षता की थी और जिन्हें उस सम्मान्य सभा म हुई सभी बातो का पता था राष्ट्रपति भवन म बठने पर उन्ही के मन म राष्ट्रपति के कार्यों तथा अधिकारो क बारे म सशय जाग उठा बावजूद इसके कि सविधान-सभा मे नेहरूजी और अबेडकरजी ने कई बार स्पष्ट किया था कि सविधान के अतगत राष्ट्रपति विशुद्ध रूप से साविधानिक अध्यक्ष के रूप म मत्रिमडल की सलाह से काय करेगा।

राजेन्द्र बाबू ने सुप्रीम कोट के सभी जजो को अनौपचारिक रूप से बुलाया और उनकी राय माँगी। उन्होने अपनी सहज प्रतिक्रिया से उन्ह अवगत करा दिया लेकिन लिखित म कुछ भी देने से इकार कर दिया। उन्होने कहा कि वे अपनी सुविचारित राय लिखित म तभी देंगे जब राष्ट्रपति औपचारिक रूप से यह

मामला सलाह के लिए सुप्रीम कोर्ट के पास भेजें। लेकिन राजेन्द्रप्रसाद ऐसा नहीं करना चाहते थे क्योंकि इस तरह का मामला सुप्रीम कोर्ट में प्रधानमंत्री और उनके मंत्रिमंडल की सलाह से ही भेजा जा सकता था। राष्ट्रपति के सैनिक सचिव मेजर जनरल बी चटर्जी सैनिक कम राजनैतिक ज्यादा थे और वे गुप्त रूप से इस मामले की हर अगली बात की सूचना मुझे देते रहते थे।

फिर राजेन्द्र बाबू ने तत्कालीन महान्यायवादी एम सी सीतलवाड को बुला भेजा जिन्होंने बाद में उन्हें एक नोट दिया। इस नोट की एक प्रति जनरल चटर्जी ने चुपचाप मेरे पास भेज दी। सीतलवाड ने इस नोट में स्पष्ट शब्दों में लिखा था कि राष्ट्रपति की प्रधानमंत्री और उनके मंत्रिमंडल से पृथक सत्ता नहीं है। सीधे शब्दों में कहें तो राजेन्द्र बाबू को साफ बता दिया गया कि संविधान में जहाँ-जहाँ राष्ट्रपति शब्द आया है वे चाहें तो वहाँ-वहाँ प्रधानमंत्री शब्द रख सकते हैं। मैंने नेहरूजी के सामने सीतलवाड के परामर्श की प्रति रखी और यह भी संक्षेप में बताया कि राष्ट्रपति भवन में क्या कुछ होता रहा है। नेहरूजी ने सीतलवाड का परामर्श पढ़ा और मुस्कराते हुए मुझे वापस कर दिया। वे गुस्सा होने के बजाय खुश हुए थे। नेहरूजी सांविधानिक और अपनी व्यक्तिगत स्थिति तथा देश में प्रतिष्ठा के बारे में इतने आश्वस्त थे कि उन्होंने राजेन्द्र बाबू की गलतफहमियों पर ध्यान ही नहीं दिया।

समाचारपत्रों को श्री जत्ती की कटु आलोचना करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। निर्णय पर फिर से विचार के लिए मामले को मंत्रिमंडल के पास भेजना पूरी तरह से उनके अधिकारों में आता था।

संविधान निर्माताओं ने इस विषय में मात्र इतना लिखा था राष्ट्रपति को सहायता और परामर्श के लिए अध्यक्ष के रूप में प्रधानमंत्री सहित एक मंत्रिपरिषद होगी। नेहरूजी ने इन पंक्तियों में अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व और स्थिति के कारण सत्रह वर्ष की लंबी अवधि में प्रधानमंत्री रहकर जान फूंकी और इस प्रकार स्वस्थ प्रजातांत्रिक परंपराएं कायम कीं।

1955 के बाद से सुप्रीम कोर्ट ने अनेक निर्णयों में बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है कि प्रधानमंत्री और उनके मंत्रिपरिषद के संदर्भ में राष्ट्रपति के अधिकारों के विषय पर कानूनी स्थिति क्या है।

बयालीसवें सांविधानिक संशोधन के उस खंड की बड़ी आलोचना हुई है जिसके द्वारा इस संदर्भ में इतना जोड़ा गया है कि राष्ट्रपति अपने कार्यों के निष्पादन में इस प्रकार के परामर्श से कार्य करेंगे।' यह शब्द अहानिकर होते हुए भी अनावश्यक है। अगर किसी राष्ट्रपति की आत्मा कचोटने ही लगे तो उसके सामने त्यागपत्र का रास्ता तो हमेशा ही खुला रहता है।

डिगाल के सत्ता संभालने और पांचवें गणतंत्र की स्थापना से पहले जो स्थिति फ्रांस के चौथे गणतंत्र के राष्ट्रपति की थी वही स्थिति भारत के राष्ट्रपति की है।

विख्यात अंग्रेज इतिहासकार सर हेनरी मेन ने लिखा है, 'फ्रांस के प्राचीन नरेश राजगद्दी पर बैठते थे और शासन करते थे इंग्लैंड-नरेश राजगद्दी पर बैठते हैं लेकिन शासन नहीं करते संयुक्त राज्य अमरिका का राष्ट्रपति शासन करता है लेकिन राजगद्दी पर नहीं बैठता। यह राजगद्दी तो फ्रांस के राष्ट्रपति के लिए सुरक्षित रखी गयी है जिस पर न तो वह बैठता है और न ही शासन करता है।

प्रथम विश्वयुद्ध के अंतिम दौर में फ्रांसीसी प्रधानमंत्री क्लीमेंश्यो थे और

उन्होंने एक बार घोषणा की थी कि दो बातों के कारण उन्हें कभी समझ न आये। वे बातें थीं—प्रॉस्टेट ग्रंथि और फ्रांस के राष्ट्रपति का पद।

एबे लानें ने तो अपने लेखन में राष्ट्रपति-पद को बुरी तरह लतियाया है और इसे बड़े कटु शब्दों में परिभाषित किया है। उन्होंने इसे "एकमात्र पुंसत्वहीनता के गुण से युक्त पद" कहा है। उन्होंने कहा है कि "इसका पदधारी न तो काम करता है और न सोचता है और अगर वह सोचता है तो अपनी गद्दी से हाथ धो बैठता है।'

लेकिन इस सब के बावजूद तथ्य यह है कि गणतंत्र का राष्ट्रपति फ्रांस की कार्यकारी शक्ति का सर्वोच्च प्रतिनिधि होता है। वह राज्याध्यक्ष होता है और राष्ट्र द्वारा प्रदत्त उच्चतम राजनैतिक पद को संभालता है। वह बोरबो और बोनापार्ट वंशों के राजसिंहासन पर बैठता है। वह थलसेना, नौसेना और वायुसेना की सशस्त्र सेनाओं का उपाधिकारी कमांडर इन चीफ होता है। वह गणतंत्र का प्रथम नागरिक होता है। यह सच है कि इस पद को अपनी प्रतिष्ठा के अनुरूप अधिकार प्राप्त नहीं, लेकिन इसके बावजूद फ्रांस के सर्वाधिक प्रसिद्ध राजनेताओं ने इस पद को प्राप्त करने की कामना की है।

12

राजेन्द्रप्रसाद और राधाकृष्णन

2 सितंबर 1948 को अंतरिम सरकार बनने पर नेहरूजी ने राजेन्द्रप्रसाद को खाद्य और कृषि के प्रभारी सदस्य के रूप में कौंसिल में शामिल कर लिया। खाद्य उत्पादन बढ़ाने के बजाय पिंजरापोलों के विकास में उनकी अधिक दिलचस्पी निकली।

उसी वर्ष के अंत में गांधीजी और सरदार पटेल की सलाह से नेहरूजी ने कांग्रेस-अध्यक्ष की हैसियत से राजेन्द्रप्रसाद को संविधान सभा का अध्यक्ष बनाने का निर्णय लिया जिसकी बैठकें 9 दिसंबर 1947 से शुरू होने वाली थीं। नेहरूजी ने राजेन्द्रप्रसाद से जिन्हें वे राजेन्द्र बाबू कहा करते थे कहा कि वे संविधान सभा के अध्यक्ष पद पर अपने चुनाव से काफी पहले सरकार से इस्तीफा दे दें। नेहरूजी चाहते थे कि संविधान-सभा जैसे महत्वपूर्ण संगठन का अध्यक्ष ऐसा व्यक्ति नहीं होना चाहिए जो सरकार में अधीनस्थ पद संभाले हुए हो। लेकिन राजेन्द्र बाबू अड़ गये। अंत में गांधीजी को हस्तक्षेप करना पड़ा। गांधीजी ने उन्हें बुलवाया और अपने एक सचिव राजकुमारी अमृतकौर के सामने सख्त शब्दों में उन्हें डांटते हुए कहा "मैंने सोचा था कि आपने मुझसे कुछ सीखा होगा। लेकिन मैं गलती पर था। आपको दो पद संभालने का कोई हक नहीं। दरअसल आपको सब कुछ छोड़कर मेरे साथ आ जाना चाहिए।' इसके तुरंत बाद राजेन्द्र बाबू ने नेहरूजी को अपना त्यागपत्र भेज दिया। पत्र ऐसी भाषा में था कि जैसे उन्होंने यह काम स्वेच्छा से स्वतः ही किया हो।

गणतंत्र के अस्तित्व में आने से पहले राजाजी भारत के गवर्नर जनरल की गद्दी पर आसीन थे जिस पर कभी वारेन हेस्टिंग्स, रिपन, कर्जन और अन्य अंग्रेज बैठ चुके थे। उन्होंने अपने पद का संचालन बहुत ही गरिमा और सादगी के साथ किया और विदेशी विशेषकर राजनयिक उनसे बहुत प्रभावित थे। नेहरूजी

राजाजी को ही प्रथम राष्ट्रपति बनाना चाहते थे। वे एक ऐसी परपरा का शुभारभ करना चाहते थे, जिसके अतगत अगर प्रधानमत्री उत्तर भारत का हो तो राष्ट्रपति दक्षिण भारत का और अगर प्रधानमत्री दक्षिण से हो तो राष्ट्रपति उत्तर से। दरअसल नेहरूजी ने राष्ट्रपति-पद राजाजी को देने का प्रस्ताव अनायास ही पेश किया था। राजेन्द्रप्रसाद को राष्ट्रपति-पद पर आसीन करने का विचार ही नेहरूजी को पसद न था, क्योकि राजेन्द्र बाबू परपरावादी रूढिवादी और कुछ हद तक पुरातनपथी थे। उन्होने राजेन्द्र बाबू को मत्री-पद और योजना आयोग की अध्यक्षता देने की बात की ताकि वे राष्ट्रपति बनने से इकार कर दें। लेकिन राजेन्द्र बाबू की इनमे कोई दिलचस्पी नही थी। नेहरूजी को जल्दी ही पता चल गया कि काग्रेस के अधिकाश लोकसभा-सदस्य राजाजी के विरुद्ध है। सरदार पटेल तटस्थ लगते थे, लेकिन इतना पता था कि वे किस को तरजीह देते हैं। उनका मत राजाजी के पक्ष म नही था। अगर नेहरूजी दृढता से काम लेते तो राजाजी का चुनाव निश्चित था। लेकिन नेहरूजी को किसी भी महत्वपूर्ण समस्या को चरम बिंदु तक ले जाना पसद न था, जहाँ से लौटा ही न जा सके। इसलिए उन्होने अत म हथियार डाल दिये। इसमे राजाजी के मन म छले जाने से उत्पन्न खिन्नता का भाव रह गया।

अस्तु राजेन्द्रप्रसाद 26 जनवरी 1950 को गणतत्र के प्रथम राष्टपति बने। अफसोस कि गणतत्र का प्रथम राष्ट्रपति बनते ही सबसे पहला काम उन्होने यह किया कि अपने स्कध से सारे मुस्लिम नौकरो को चलता कर दिया। नेहरूजी को बडा गुस्सा आया। उन्होने मुझसे कहा कि सरकारी आतिथ्य सत्कार सगठन म से हिंदू नौकरो की बदली करके इन मुस्लिम नौकरो को वहाँ भेज दिया जाये। इन विस्थापित मुस्लिम नौकरो की ड्यूटी प्रधानमत्री के निवास पर लगा दी गयी, हालाँकि सुरक्षा-अधिकारी इस पर नाखुश थे।

एक और बात जिस पर नेहरू नाराज हुए थे यह थी कि राजेन्द्रप्रसाद साधुओ के चरण प्रक्षालन के लिए काशी गये थे। उसके बाद से पाव छूने को अच्छा माना जाने लगा। नेहरूजी को पाँव छूने की प्रथा से बहुत घृणा थी।

नेहरूजी राजेन्द्रप्रसाद की सोमनाथ की उस यात्रा से भी नाखुश हुए थे, जिस म उन्होंने मुस्लिम आक्रमणकारियो द्वारा ध्वस्त प्रसिद्ध मदिर के स्थल पर नव-निर्मित मदिर म शिवलिंग की स्थापना की थी। नेहरूजी के पास सूचना थी कि खाद्य और कृषि मत्री के एम मुशी ने सरदार पटेल की मौन सहमति से चीनी की कीमत ऊची की है और बढी कीमत का आधा मिल मालिको को अपने पास रख लेने दिया है और बाकी का आधा सोमनाथ मदिर के निर्माण के लिए दे दिया गया है। चीनी मिल मालिक-सगठन जनता के साथ इस तरह की धोखाधडी करके जरूरत से ज्यादा खुश था। यह सूचना नेहरूजी को जरा देर से मिली, जब कि स्थिति हाथ से बाहर निकल गयी थी।

सविधान के परिवर्ती उपबधो के अनुसार राष्ट्रपति को वे सभी वित्तीय लाभ प्राप्य म मिले जो वायसराय को प्राप्त थे। इनमे सत्कार भत्ते की बडी रकम भी शामिल थी। हर राष्ट्रपति ने अपने को मिलने वाली परिलब्धियो और अनुलाभो के बारे म लोकसभा द्वारा कानून बनाने के सभी प्रयत्नो का विरोध किया है। लगभग पाँच साल राष्ट्रपति-पद पर बने रहने के बाद भी राजेन्द्रप्रसाद ने सत्कार अनुदान म से 225 रुपय प्रतिमास से अधिक खर्च नही किया और बाकी की रकम अपने पोते-पोतियो के नाम छोटी छोटी बचतो के रूप म जमा करा दी। इस

आशय का एक नोट उनके सनिक सचिव ने मुझे भेजा जो मैंने प्रधानमन्त्री को दिखाया। इसकी चर्चा नेहरूजी ने बातों-बातों में कांग्रेस कार्यकारिणी की अनौपचारिक बैठक में कर दी। बाबू जगजीवनराम ने इसकी खबर राजेन्द्रप्रसाद तक पहुंचा दी जो मुझ पर बहुत नाराज हुए।

टी टी कृष्णमाचारी के बजट ने सम्पदा-कर व्यय-कर और उपहार-कर लगाया जिसके तुरंत बाद राजेन्द्रप्रसाद ने नेहरूजी से शिकायत की कि इन सब करों का व्यक्तिगत रूप से उन पर बुरा असर पड़ेगा। तब नेहरूजी ने उत्तर में उन्हें एक पत्र लिख कर पूछा कि उन्होंने सरकार भत्ते में से बची रकम सरकारी खजाने में जमा करा दी है या नहीं? इसने राजेन्द्र बाबू को खामोश कर दिया और वे आगे अपने पोत-मोतियों की तिजौरी को और ज्यादा न भर सके।

1957 में नेहरूजी ने उपराष्ट्रपति राधाकृष्णन को राष्ट्रपति का पद देने का प्रस्ताव रखा। नेहरूजी ने सोचा था कि सात वर्ष तक पद का उपयोग कर लेने और अधिक उम्र हो जाने के कारण राजेन्द्र बाबू राष्ट्रपति-पद छोड़ना चाहेंगे। लेकिन राजेन्द्रप्रसाद ने कुछ और ही सोच रखा था। वे पाँच वर्ष की एक और अवधि के लिए फिर से इस पद के उम्मीदवार थे। नेहरूजी को जल्दी ही पता चल गया कि पंडित गोविन्दवल्लभ पंत और कामराज नाडार समेत प्रांतीय कांग्रेस नेता राजेन्द्र बाबू के फिर से चुने जाने के पक्ष में हैं। सही अर्थों में लोकतंत्री होने के कारण एक बार फिर नेहरूजी पीछे हटे क्योंकि उन्हें बात को तूल देना नापसंद था। इससे राधाकृष्णन का जी खट्टा हो गया। वे उपराष्ट्रपति पद पर भी नहीं बना रहना चाहते थे। लेकिन अंत में मौलाना आजाद ने उन्हें राजी कर लिया। राधाकृष्णन को खुश करने के लिए नेहरूजी ने पूर्वता अधिपत्र में उनका क्रम बदल कर दूसरे स्थान पर कर दिया। इससे पहले उपराष्ट्रपति का स्थान प्रधानमन्त्री के बाद तीसरे स्थान पर होता था। नेहरूजी ने उपराष्ट्रपति को वायुसेना के अति विशिष्ट व्यक्तियों के लिए प्रयुक्त होने वाले वायुयानों द्वारा भारत में यात्रा करने का हक भी दिला दिया। इन बातों से राधाकृष्णन नरम पड़ गये। नेहरूजी ने राधाकृष्णन से कहा कि वे यूनेस्को के भारतीय प्रतिनिधि मंडल का नेतृत्व करें और उन्होंने इस संगठन की गतिविधियों में और रुचि लेने के लिए उन्हें *प्रोत्साहित किया। उन्होंने राधाकृष्णन के लिए विदेशों में सद्भावना-यात्राओं* पर जाने की व्यवस्था भी करायी।

एक मर्तबा नेहरूजी ने राजेन्द्र बाबू को सुझाया कि वे अपने कुछ औपचारिक काम राधाकृष्णन को सौंप सकते हैं। लेकिन राजेन्द्र बाबू ने कहा कि हालांकि वे स्वयं राधाकृष्णन का बहुत सम्मान करते हैं और खुशी से अपने कुछ काम उन्हें सौंपने को तैयार हैं लेकिन संविधान इसकी इजाजत नहीं देता। राजेन्द्र बाबू एकदम सही थे।

हिंदू कोड बिल पर लोकसभा में बहस के मौके पर राजेन्द्र बाबू ने लोकसभा के सदस्यों को जता दिया था कि वे व्यक्तिगत रूप से इस बिल के विरुद्ध हैं। तब राजेन्द्रप्रसाद ने नेहरूजी से बातें कीं और उनसे कहा कि संविधान के अनुसार राष्ट्रपति संसद का अंग है और वे जब भी चाहेंगे संसद में राष्ट्रपति-बाक्स में बैठा करेंगे। नेहरूजी ने कड़े शब्दों में इसका विरोध किया और *कहा कि राष्ट्रपति* के संसद का अंग होने का अर्थ केवल दोनों सदनों के संयुक्त सत्रों में वर्ष में एक बार अभिभाषण देने तक सीमित है। संसद में राष्ट्रपति बाक्स की व्यवस्था विशिष्ट विदेशी अधिकारियों और राष्ट्रपति के अन्य अतिथियों को बिठाने के

निए मात्र शिष्टाचार के रूप में की गयी है। फिर नेहरूजी ने कुछ हद तक समझौता किया और इस तरह के यंत्र लगवा दिये ताकि राष्ट्रपति भवन के अपने अध्ययन-कक्ष में ही राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों में चलने वाली कारवाई सुन सकें। इस तरह के यंत्र नेहरूजी और मेरे लिए भी संसद भवन में हमारे कार्यालयों में लगाये गये।

भारत के पहले राष्ट्रपति और पहले प्रधानमंत्री के बीच के संबंध औपचारिक थे। नेहरूजी सप्ताह में एक बार राष्ट्रपति से मिलने और उन्हें देश और सरकार में होने वाली बातों से अवगत कराने की सांविधानिक आवश्यकता को पूरा करते थे। उन दोनों के बीच कोई स्नेहिलता नहीं थी। उन दोनों के दृष्टिकोणों में भारी अंतर था। राजेंद्र बाबू नेहरूजी के व्यक्तित्व से कुछ सीमा तक अभिभूत थे। किंतु नेहरूजी राष्ट्रपति के प्रति हमेशा उपयुक्त शिष्टाचार दर्शाने में कभी चूक नहीं करते थे और जनता के सामने तो राष्ट्रपति के प्रति उनका व्यवहार बहुत ही श्रद्धापूर्ण होता था।

राधाकृष्णन के राष्ट्रपति बनने पर नेहरूजी से उनके संबंध बड़े स्नेहिल और सौजन्यपूर्ण थे। राधाकृष्णन ने अपने अनौपचारिक व्यवहार से नेहरूजी को काफी हद तक प्रभावित किया। लेकिन इतना जरूर कहना पड़ेगा कि इस 1962 64 की अवधि के दौरान नेहरू उतार पर थे और उनका स्वास्थ्य भी गिर गया था।

नेहरूजी ने मुझे एक बार बताया था कि जब राधाकृष्णन सोवियत यूनियन में भारत के राजदूत थे तो मार्शल जोसफ स्टालिन से प्रथम भेंट में उन्होंने बड़े ही अनौपचारिक ढंग से स्टालिन का अभिवादन किया 'हेलो कैसे हैं आप?' और यह कहकर उनकी पीठ थपथपाई। राधाकृष्णन ने यही हरकत महारानी एलिजाबेथ के साथ भी की।

राधाकृष्णन दार्शनिक वक्ता और उक्तिपटु थे और निस्संदेह भारत के सर्वोत्तम राष्ट्रपति रहे और उन्होंने इस प्राचीन भूमि की उत्कृष्टतम परंपराओं और संस्कृति का प्रतिनिधित्व किया।

नाम से भी गरीब फखरुद्दीन अली अहमद सबसे कमज़ोर राष्ट्रपति रहे। जून 1975 में बिना मंत्रिमंडल के अनुमोदन के आपातकाल की उद्घोषणा पर हस्ताक्षर करके उन्होंने दोषारोपण का अच्छा मौका दे दिया। लेकिन इतना उनके हक में जरूर कहा जा सकता है कि उन्हें पता था कि मरने का सबसे अच्छा मौका कौन-सा है।

13

प्रधानमंत्री और उनका सचिवालय

15 अगस्त 1947 को तदथ आधार पर भारत म प्रधानमंत्री के सचिवालय का गठन किया गया और एच वी आयगर प्रधानमंत्री के प्रमुख निजी सचिव बने जो वरिष्ठ आई सी एस अधिकारी थ। अपने सक्षिप्त कायकाल म आयंगर कुछ हद तक प्रभावकारी व्यक्तित्व रहे। उनकी काय कुशलता के बारे म शक की कोई गुजाइश नही थी। न जाने किस वजह से सरदार पटेल, षण्मुखम चेट्टी और जान मथाइ उनसे नाराज हो गये थे। उन्हे आयगर का मन्त्रिमडल की बठको म शामिल होना गलत लगता था। अत म सरदार पटेल ने लोगो को ऊपर चढाने के तरीके से काम लिया। उन्होने नेहरूजी स आयगर को गह-सचिव के पद पर भेजने को कहा। बात मान ली गयी। प्रधानमंत्री-सचिवालय म उनके स्थान पर ए वी पई आये जो वरिष्ठ आई सी एस अफसर थ। पई बहुत ही नरम स्वभाव के ईमानदार और भद्र व्यक्ति थ। वे नेहरूजी क सबसे अच्छे प्रमुख निजी सचिव सिद्ध हुए। आयगर के चल जान के बाद किसी और प्रमुख निजी सचिव ने मन्त्रिमडल की बठका म भाग नही लिया।

1948 म जब हम लदन म थे नेहरूजी ने ऐटली से मेरे लिए मन्त्रिमडल प्रणाली म प्रधानमंत्री की स्थिति और उसके सचिवालय के गठन और काय पद्धति का अध्ययन करने की सुविधाएँ देने को कहा। ऐटली ने अपन मन्त्रिमडल सचिव लाड नामन ब्रुक और युद्ध के दिनो म विस्टन चर्चिल क भूतपूव मन्त्रिमडल सचिव तथा तब के खजाना-सचिव लार्ड एडवड ब्रिजेज से मेरे मिलने और आवश्यक सुविधाए जुटाने का प्रबध कर दिया। मैं उन दोनो स मिला और मेरी उनसे काफी उपयोगी बातचीत हुई। लाड नामन ने मेरे लिए एक नोट भी तयार किया।

ब्रिटेन म प्रधानमंत्री को कोई वधानिक अधिकार प्राप्त नही होत। उसे बुनियादी रूप म अधिकार इस कारण मिल होते हैं कि वह हाउस आफ कामज

म बहुमत वाली राजनीतिक पार्टी का नेता होता है और फलस्वरूप शासक उसे सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित करता है। उनके पद से सबद्ध अधिकार किस हद तक वास्तविक बनते हैं यह दो बातों पर निर्भर करता है (क) सरकार म शामिल मन्त्रियो पर प्रधानमन्त्री का व्यक्तिगत प्रभाव। प्रधानमंत्री चाहे तो अपने मंत्री स्वय चुन सकता है। यह काम वह बिना सलाह के कर सकता है हालांकि वह इस मामले म आम तौर पर अपने वरिष्ठ साथियों से सलाह लेता है। इसी तरह उसे उनकी बर्खास्तगी करने या उन्हें हटाने का अधिकार है और वह स्वय त्यागपत्र देकर पूरी सरकार का त्यागपत्र दे सकता है। (ख) प्रधानमंत्री द्वारा मन्त्रिमडल और उसकी कुछ महत्वपूण कमेटियो, विशेषकर रक्षा-कमेटी की अध्यक्षता।

प्रधानमंत्री ट्रेजरी का फस्ट लाड भी होता है। इस विभाग के पास काफी वधानिक और दूसरे अधिकार होते हैं लेकिन इसके दनिक काय को चासलर आफ एक्सचकर चलाता है और प्रधानमंत्री का इससे कोई सीधा सबध नही होता। लेकिन फस्ट लाड की हैसियत से प्रधानमंत्री को एक महत्वपूर्ण अधिकार प्राप्त है। वह है, सिविल सेवा पर पूर्ण नियन्त्रण। सिविल सेवा म सभी प्रमुख नियुक्तियो के लिए प्रधानमंत्री के प्राधिकार की आवश्यकता होती है और इससे सेवा की एकता बनाये रखने म महत्वपूर्ण सहायता मिलती है।

चासलर आफ एक्सचकर का सपूर्ण बजट और खासतौर पर कर प्रस्तावो के लिए पहले से प्रधानमंत्री का अनुमोदन प्राप्त करना पडता है।

प्रधानमंत्री सामान्यतया किसी विभाग का प्रभार नहीं लेता। लेकिन विदेश और रक्षा मामलो के क्षेत्र मे प्रधानमन्त्री की विशेष स्थिति होती है। प्रधानमन्त्री और उसके विदेश मंत्री के बीच के सबध शायद प्रधानमंत्री और उनके किसी और मंत्री के बीच के सबध से अपेक्षाकृत अधिक निकटता के होते हैं। इस तरह के सभी मामले मन्त्रिमडल मे नही लाये जा सकते और इसी कारण प्रधानमंत्री को विदेशी मामलो को निकट से देखना पडता है। आमतौर पर जब विदेश मन्त्री छुट्टी पर होता है तो उसके कार्यों को प्रधानमन्त्री सम्हालता है। रक्षा के मामले मे प्रधानमंत्री का दायित्व उच्चतम होता है और वह रक्षा-कमेटी की अध्यक्षता करता है। रक्षा मंत्री की नियुक्ति मे भी इस उच्चतम दायित्व पर कोई प्रभाव नही पडता।

चूंकि प्रधानमन्त्री को न तो कोई वधानिक अधिकार प्राप्त होता है और न ही उसके पास कोई विभाग होता है इसलिए उसे बडे अमले की जरूरत नही होती। काफी हद तक वह सभी विभागो से सलाह और सहायता लेता है। एक तरफ वह अपना सरकारी कामकाज चलाने म खजाना सचिव की सलाह लेता है तो दूसरी तरफ मन्त्रिमडल के काय-सचालन म मन्त्रिमडल सचिव की।

मन्त्रिमडल के सम्मिलित दायित्व के अतगत प्रधानमंत्री का सचिवालय एक विभाग के रूप म निजी सचिवालय की कोटि म आता है। प्रधानमंत्री सचिवालय के अमले की यह जिम्मेदारी नही है कि वह नीतियो पर सलाह दे या नीतियों पर प्रधानमंत्री द्वारा लिये गये निणयो पर अमल करे। वे तो केवल सूचनाएँ इकट्ठी करने और उन्हे आगे पहुँचाने वाले होते हैं यानी एक तरह के मकेनिक।

प्रधानमंत्री के पास विभागो से जो सलाह आती है वह हमेशा सबधित विभाग के मंत्री के प्राधिकार से आती है।

10 डाउनिंग स्ट्रीट म प्रधानमंत्री का सचिवालय एक छोटा-सा, लेकिन

पूर्ण संगठन है और निचले दर्जे पर खासतौर पर कार्यकुशल है। चूंकि सिद्धांत रूप से सरकार का पूरा भार प्रधानमंत्री पर होता है इसलिए वह बंधे-बंधाये चलन के अनुसार अपने कामों में मदद के लिए कितनी ही संख्या में कितने ही किस्म के लोग रख सकता है। प्रधानमंत्री के अमले के लिए वित्तीय और प्रशासनिक मंजूरी अपने आप मिल जाती है बशर्ते अमले की मांग का अनुमोदन प्रधानमंत्री ने अपने आप किया हो।

ब्रिटेन के मंत्रिमंडल-सचिवालय तक के पास भी वैधानिक अधिकार या कार्यकारी दायित्व नहीं है।

ऐटली के सचिवालय में सहायक सचिव (दिल्ली में वरिष्ठ उप-सचिव के समान) के ग्रेड में एक प्रमुख निजी सचिव प्रमुख सचिव (दिल्ली में अवर-सचिव के समान) के ग्रेड में चार निजी सचिव एक संसदीय निजी सचिव, एक जनसंपर्क अधिकारी और विभिन्न ग्रेडों के पचास स्टेनोग्राफर और क्लर्क थे। प्रमुख निजी सचिव समेत सभी निजी सचिवों में काम अलग-अलग बंटा हुआ था। प्रमुख निजी सचिव के पद का कोई खास महत्व प्राप्त नहीं था क्योंकि हर निजी सचिव एक दूसरे से अलग स्वतंत्र रूप से कार्य करता था और प्रधानमंत्री के कामों में से किसी खास काम को निपटाता था तथा वह काम के मामले में सीधे प्रधानमंत्री से संपर्क करता था।

कुछ प्रधानमंत्रियों ने अपने व्यक्तिगत स्टाफ में निजी सचिवों के अलावा एक या दो ऐसे व्यक्तिगत सहायक भी शामिल किये हैं जो किसी विशेष क्षेत्र में अपने विशिष्ट ज्ञान के कारण चुने गये ताकि वे प्रधानमंत्री की विशेष सहायता कर सकें। युद्ध के दिनों में चर्चिल ने आक्सफोर्ड के भौतिकी के प्रोफेसर लिंडरमान को रखा था। बाद में वे लार्ड चेरवेल बने और मंत्रिमंडल में मंत्री नियुक्त हुए। ऐटली के व्यक्तिगत सहायक डगलस जे भी अंत में मंत्री बने। इसी तरह हैरोल्ड विल्सन के व्यक्तिगत सहायक लार्ड बलाग भी मंत्री हुए।

ऐटली के जनसंपर्क अधिकारी फिलिप जोडन से मेरी दो बार मुलाकात हुई। वे कई वर्षों तक लंदन के 'न्यूज क्रानिकल' के वरिष्ठ विदेशी संवाददाता रहे थे। ऐटली के अमले में आने से पहले वे वाशिंगटन में ब्रिटिश दूतावास में प्रथम सचिव थे। मुझे बताया गया था कि वे लंदन में पत्रकारों के बीच बहुत सम्मानित व्यक्ति हैं।

ब्रिटेन में कौंसिल के लार्ड प्रेजीडेंट के अधीन केंद्रीय सूचना कार्यालय है। यह विभाग सभी मंत्रालयों के लिए कार्य करता है किन्तु यह विभाग अपनी ओर से कोई काम शुरू नहीं करता।

ब्रिटेन में हर मंत्रालय के अपने जनसंपर्क-अधिकारी होते हैं। यह अधिकारी केंद्रीय सूचना कार्यालय से अलग स्वतंत्र रूप से कार्य करते हैं हालांकि वे भी इस कार्यालय का उपयोग करते हैं। प्रधानमंत्री का जनसंपर्क-अधिकारी पूरी सरकार में सबसे वरिष्ठ होता है। उसका संबंध केवल प्रधानमंत्री से रहता है। प्रधानमंत्री के सचिवालय में आने वाले सभी गुप्त कागजों तक उसकी पहुंच होती है। मंत्रिमंडल की कार्य-सूची और कार्यवृत्त स्वतः ही उसके पास जाते हैं। उस मंत्रिमंडल कमेटी के सभी कागज दिये जाते हैं। लेकिन एक अपवाद है। जनसंपर्क-अधिकारी को आमतौर से रक्षा संबंधी कागज देखने को नहीं दिये जाते।

ब्रिटेन का प्रधानमंत्री आमतौर से अखबारवालों से नहीं मिलता। जनसंपर्क अधिकारी ही देश और विदेश में प्रधानमंत्री और उनकी नीतियों के प्रचार के

लिए होता है। जब संसद चल रही होती है तो वह लॉबी के संवाददाताओं के साथ दिन में दो बार बैठक करता है, जिनकी संख्या पचास के लगभग होती है। ब्रिटेन में प्रधानमंत्री और विदेश मंत्री आमतौर पर लॉबी के संवाददाताओं से नहीं मिलते। अन्य सभी विभागों के मंत्री अनौपचारिक बैठकों में इनसे मिलते हैं और संसद में आने वाले नये बिलों के बारे में पूर्व-सूचना देते हैं।

जनसंपर्क अधिकारी हफ्ते में एक बार अमरीकी रेडियो के टिप्पणीकारों अमरीकी और बी बी सी के संवाददाताओं तथा महीने में एक बार कामनवेल्थ देशों के पत्रकारों और महीने में एक बार फॉरेन एसोसिएशन' से भेंट करता है।

वह गृह सूचना कमेटी मंत्रीय सूचना कमेटी और आर्थिक सूचना कमेटी जैसी अनेक सरकारी कमेटियों की अध्यक्षता करता है।

प्रधानमंत्री अपने जनसम्पर्क अधिकारी को अखबारवालों को समाचार देने के मामले में काफी छूट और स्वतन्त्रता देता है। दरअसल जनसम्पर्क अधिकारियों की समाचारपत्रों से होने वाली बातचीत रिकार्ड में नहीं रखी जाती और कहीं भी उनका हवाला नहीं दिया जाता।

जनसम्पर्क अधिकारी बहुत व्यस्त व्यक्ति होता है और यह तथ्य स्वीकार भी किया जाता है। लेकिन प्रधानमंत्री ने उसे एक सहायक देने से इंकार कर दिया है, क्योंकि एक और आदमी बढ़ जाने का मतलब है गुप्त कागजों का और अधिक सर्कुलेशन।

ब्रिटिश प्रधानमंत्री के जनसम्पर्क-अधिकारी को हाथ में कुंजी रखने वाला आदमी कहा जाता है क्योंकि वह अपने सामने ही खासतौर पर बने बक्से में सभी कागज रखता है और उसकी कुंजी उसके पास रहती है। मेरी उनसे दो मुलाकातें हुई और दोनों ही अवसरों पर उनके डैस्क पर एक भी कागज नहीं था और हां कुंजी उनकी उंगलियों में नाच रही थी।

प्रधानमंत्री नेहरू के सचिवालय का गठन भी धीरे धीरे ब्रिटिश पद्धति के अनुसार हुआ। अन्त में मुख्य निजी सचिव का पद घटाकर संयुक्त सचिव कर दिया गया जिससे कार्यकुशलता पर कोई असर नहीं पड़ा।

जब लालबहादुर प्रधानमंत्री बने तो उन्होंने एल के झा को अपना प्रमुख निजी सचिव बनाना चाहा। झा ने मांग की कि अन्य मंत्रालयों की तरह प्रधान मंत्री सचिवालय को भी पृथक विभाग का दर्जा दिया जाना चाहिए। वे प्रमुख निजी सहायक के बजाय प्रधानमंत्री के सचिव कहलायें और पूर्वता-अभिपत्र में उनकी स्थिति मन्त्रिमंडल-सचिव के समान हो। इन मांगों की सही जांच-पड़ताल किये बिना शास्त्रीजी ने इन्हें चुपचाप मान लिया। झा ने इस छूट का खूब लाभ उठाया। फिर उन्होंने विस्तार की योजना पर अमल शुरू किया। अगर सचिव के नीचे कुछ संयुक्त-सचिव न हों तो उसे असुविधा होती है और उधर संयुक्त सचिव के पास उप सचिव न हो तो वह शोर करने लगेगा। इस तरह नीचे तक यह सिलसिला चलेगा। फिर इन्दिरा आयी जिसने इस सिलसिले को सम्पूर्णता तक पहुंचा दिया। 1958 59 में प्रधानमंत्री के सचिवालय के अमले में चपरासियों समेत सभी श्रेणियों के 129 व्यक्ति थे और उसका बजट (वास्तविक) था 6 75 000 रुपये। 1976 77 में इस अमले में 242 व्यक्ति थे और बजट बढ़कर 30 7 लाख हो गया था।

1950 में प्रधानमंत्री के सचिवालय में मैं एक जनसम्पर्क-अधिकारी का पद बनवाना चाहता था और उसको वही स्थिति और सुविधाएं दिलवाने का इच्छुक

था जो ब्रिटिश प्रधानमंत्री के जनसम्पर्क-अधिकारी को मिलती हैं। मेरे इस प्रस्ताव की सूचना विदेश मामलों के मंत्रालय के महासचिव और मंत्रिमंडल-सचिव को लग गयी। उन्होंने मुझे समझाने की कोशिश की और कहा कि एक पत्रकार को गुप्त कागज देखने की छूट देना खतरनाक रहेगी। मैं उनसे सहमत न हुआ। लेकिन मैंने इस विचार को ही त्याग दिया क्योंकि मैं आश्वस्त नहीं था कि नेहरूजी जनसम्पर्क-अधिकारी का पूरा उपयोग कर भी पायेंगे या नहीं। असलियत यह थी कि नेहरूजी अपने जनसम्पर्क-अधिकारी स्वयं थे और उन्हें अपने प्रचार के लिए किसी और की आवश्यकता नहीं थी।

मैंने एक बार नेहरूजी से कहा था कि प्रेस-कान्फ्रेंस अपने राष्ट्रपति को मंच प्रदान करने के लिए अमरीकियों की देन है। संसदीय प्रणाली में प्रधानमंत्री का मंच संसद होती है जहाँ वह दुनिया भर की बातें कह सकता है। न तो चर्चिल और न ही एटली प्रेस-कान्फ्रेंस बुलाया करते थे। मैंने सुझाया कि वे भी यह चलन बंद कर दें। वे मुझसे सहमत तो थे लेकिन उनके अहं ने उन्हें यह प्रस्ताव स्वीकार न करने दिया। उनमें दिखावे की भावना थी। मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि प्रेस कान्फ्रेंसों में उनके कुछ वक्तव्यों और बातों-बातों में कही उक्तियों ने लाभ के बजाय हानि अधिक पहुँचायी है।

मौजूदा प्रधानमंत्री के लिए ठीक रहेगा कि वे सभी प्रकार का विभागीय काम छोड़ दें। वे विज्ञान और प्रौद्योगिकी का नया मंत्रालय बनायें और उसके अन्तर्गत परमाणु-ऊर्जा, इलेक्ट्रानिकी, अंतरिक्ष अनुसंधान के विभाग और वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद कर दें और यह मंत्रालय किसी आधुनिक सूझ-बूझ वाले मंत्री को सौंप दें।

व्यक्तिगत सचिवालय हमेशा छोटा होना चाहिए। बुद्धि से खाली या पद के प्रतीक चिह्नों से अभिभूत या अंग प्रयोग से लाचार कोई बूढ़ा व्यक्ति ही प्रधान मंत्री होने पर अपना सचिवालय किसी वरिष्ठ सरकारी नौकर के हाथों में सौंपेगा।

14

प्रधानमंत्री-निवास

जब जवाहरलाल नेहरू ने 2 सितंबर 1946 का कार्यभार सम्भाला तो उन्हें रहने के लिए याक रोड पर चार शयन-कक्षों वाला अपने मे परिपूर्ण आवास दिया गया। वे उस घर से खुश थे।

विभाजन से पहले और बाद के दौर मे स्थिति असामान्य थी। नेहरूजी का जीवन वास्तव मे खतरे म था। सरदार पटेल इस विषय म चिंतित थे। उन्होंने निहित खतरे के बारे म मुझसे बातें की। वे पुलिस-सुरक्षा का बंदोबस्त और मजबूत करना चाहते थे चाहे उससे कितनी ही परशानी और अडचन हो। उन्होंने मुझसे कहा कि मैं इस विषय म नेहरूजी को हर तरह से राजी करने की कोशिश करूँ। थोड अरसे बाद ही 17 याक रोड पर पुलिस वालो के खेमे-के-खेमे गड गय।

नेहरूजी के प्रधानमंत्री बनने पर सुरक्षा प्रबंध और भी कडे कर दिये गये। निवास के सामन सडक पर भी पुलिस के तबू लग गये। पूरा स्थल भद्दा पुलिस-कप बन गया। मैं जान गया कि अब नेहरूजी को 17 याक रोड से घर बदल लेना चाहिए। 1948 के वसत के दिनों मे सरदार पटेल की सहमति से मैंने लॉर्ड माउटबेटन स सपक किया और इस मामले पर उनसे सलाह ली। उन्होंने कहा कि इसका हल यही है कि नेहरूजी कमाडर इन चीफ के निवास म चले जायें, जहाँ सुरक्षा प्रबंध इतन बुरे नहीं दीखग। मैंने उनसे प्रार्थना की कि वे इस विषय पर नेहरूजी से कोई बात न करें मामला मुझ पर ही छोड दें। मैंने उन्हें बताया कि इस तरह के मामल म सबसे अच्छा तरीका यही है कि ऐसी स्थिति पैदा कर दी जाये जिसम नेहरूजी के पास और कोई विकल्प ही न बचे। वे सहमत हो गये।

मैंने यह सभी बातें सरदार पटेल को बता दी और उनसे नेहरूजी स बात करने को कहा। एक दिन सुबह-सुबह सरदार पटेल टहलते हुए नेहरूजी के निवास म चले आये (वह पास मे ही रहते थे) और उन्होंने उनस बात की। उन्होंने

प्रधानमंत्री से सी इन-सी के निवास में चले जाने को कहा। उन्होंने कहा कि वे पहले से ही गांधीजी को न बचा पाने के दुख तले दबे हुए हैं। उन्होंने नेहरूजी से स्पष्ट कह दिया कि वे उनकी सुरक्षा की जिम्मेदारी लेने को तैयार नहीं। साथ ही इस धमकी का संकेत भी दिया कि अगर नेहरूजी उनकी बात नहीं मानेंगे तो वे त्यागपत्र दे देंगे।

लौटते समय सरदार पटेल ने मुझे अपने पास इशारे से बुलाया। मैं उनके साथ साथ चलने लगा। उन्होंने मुझे बताया 'जवाहरलाल चुप रहे और उनके चेहरे के भाव बता रहे थे कि वे घर बदलना नहीं चाहते। लेकिन हम उनके मौन को स्वीकृति मानकर चलें। तुम तैयारी करो और माउंटबेटन से मिलकर योजना तैयार करो।'

मेरी सलाह से माउंटबेटन ने प्रधानमंत्री के निवास के रूप में सी इन-सी के निवास की नयी रूपरेखा तैयार की और गवर्नमेंट-हाउस के समांतर प्रधानमंत्री के निवास में सरकारी सत्कार संगठन की स्थापना का प्रस्ताव भी रखा। इस आशय का एक नोट उन्होंने मंत्रिमंडल के लिए तैयार किया। सत्कार-संगठन की आवश्यकता इसलिए थी, क्योंकि इन्दिरा गृहस्थी चलाने में लापरवाह थीं। वह अंडा तक उबालना नहीं जानती थीं। और तो और उसे इस काम में दिलचस्पी ही नहीं थी। तैयार योजना के अनुसार प्रधानमंत्री को अपने, अपने परिवार और व्यक्तिगत मेहमानों का वास्तविक व्यय अपने पास से देना था। मेरे परामर्श पर माउंटबेटन ने अस्वाभाविक कदम उठाया और उन्होंने वह नोट प्रधानमंत्री की पूर्व अनुमति के बिना सीधा मंत्रिमंडल-सचिव के पास भेज दिया। निर्देश था कि वे इस नोट को प्रधानमंत्री समेत सभी मंत्रियों में घुमा दें ताकि उस पर एक बैठक में विचार हो सके जिसकी तारीख बाद में बतायी जायगी। नेहरूजी के पास जब वे कागज़ पहुंचे तो उन्होंने पूछा 'क्या तुम भी बिना मुझे कुछ बताये इस चाल के पीछे थे?' मैंने कहा 'जी हां 95 फीसदी।' सुनकर नेहरूजी मुस्कराने लगे।

7 जून 1948 को सुबह दस बजे यह मामला मंत्रिमंडल के सामने आया। नेहरूजी चुप रहे। एक तरह से उस बैठक का संचालन सरदार पटेल ने किया। माउंटबेटन के नोट में दिये गये सुझावों को मंत्रिमंडल ने स्वीकार कर लिया।

नेहरूजी बड़े निवास में जाने के ख्याल से खुश नहीं थे। नये निवास में चले जाने के बाद भी उन्होंने 500 रुपये प्रति मास मिलने वाला कर मुक्त सत्कार भत्ता नहीं लिया जिसके वे और उनके मंत्रिमंडल के मंत्री हकदार थे।

मंत्रिमंडल स्तर के कुछ प्रमुख मंत्रियों खासतौर पर एन गोपालस्वामी आयंगर की तरफ से सुझाव आया कि ब्रिटेन की तरह प्रधानमंत्री का वेतन अन्य मंत्रियों से दुगना होना चाहिए। लेकिन नेहरूजी ने इस सुझाव पर विचार करने से इंकार कर दिया। उन्होंने यह सुझाव भी अस्वीकार कर दिया कि ब्रिटेन की तरह संसद में एक अधिनियम पारित होना चाहिए जिसमें प्रधानमंत्री को अवकाश ग्रहण करने पर अच्छी पेंशन और दूसरी सुविधाओं तथा अनुलाभों की व्यवस्था हो। खेद है कि नेहरू ऐसे विषयों के बारे में अपने दृष्टिकोण से ही सोचते थे। उनकी दृष्टि में प्रधानमंत्री के रूप में केवल वही उभरते थे। उनका अहं ऐसी बातों को मानने से इंकार करता था। उन्हें विश्वास था कि वे अपनी कुशल लेखनी के सहारे बाद में सुविधापूर्ण जीवन बिता सकेंगे। यह बात उन्होंने मुझसे स्वयं कही थी। मैंने नेहरूजी से कहा कि उनके बाद आनेवाला कोई प्रधानमंत्री निर्धन हो सकता है। इस दृष्टि से उन्हें संसद में इस तरह का अधिनियम पारित कराना

चाहिए। जरूरी नहीं कि वे इन सुविधाओं से स्वयं भी लाभ उठायें। लेकिन उन्होंने इस मामले में बड़ा आत्मपरक रवैया अपनाया। इस सिलसिले में मैं कहना चाहूंगा कि जहां तक नेहरूजी की व्यक्तिगत आवश्यकताओं का सवाल था, उन पर वे बहुत कम खर्च करने वाले व्यक्तियों में से थे। मौजूदा संसद चाहे तो अवकाश ग्रहण करने वाले प्रधानमंत्री के लिए इस तरह की उचित व्यवस्था कर सकती है।

मौजूदा अधिनियम के अनुसार मंत्रिमंडल स्तर के मंत्री को 3 000 रुपये प्रतिमास वेतन और 500 रुपये प्रतिमास सत्कार भत्ता मिलता है। नेहरूजी के समय में उन्होंने और उनके मंत्रियों ने स्वेच्छा से अपने वेतन में कटौती की। वेतन पहले 2,250 रुपये प्रतिमास और बाद में 2 000 रुपये प्रतिमास कर दिया गया। उस समय की तुलना में आज रुपये की कीमत चार आने रह गयी है। इसलिए उन कटौतियों को पूरा वापस लेने और मंत्रियों की परिलब्धियां बढ़ाने के मामले में अब काफी दम है। इस संदर्भ में गांधीजी की उक्तियां दोहराना दुमुंहापन है। मंत्रियों और सरकारी अधिकारियों को पर्याप्त वेतन दिया जाना चाहिए ताकि वे रिश्वत और प्रलोभनों से दूर रहें। भारत की जनता को इस बढ़ोतरी पर कंजूसी नहीं दिखानी चाहिए।

प्रधानमंत्री निवास (अब जिसे तीनमूर्ति हाउस कहा जाता है) को जवाहर लाल नेहरू म्यूजियम बना देना गलत था। इस परिवर्तन को तेरह वर्ष हो गये हैं और लोग इसे नेहरू-स्मारक के रूप में देखने के अभ्यस्त हो गये हैं। इसलिए इसे फिर प्रधानमंत्री निवास में बदलना दूसरी गलती होगी। प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने मुझे आश्वासन दिया है कि तीनमूर्ति हाउस में जाने की उनकी कोई इच्छा नहीं है क्योंकि इससे करोड़ों लोगों की भावनाओं को चोट पहुंचेगी। आज भी औसतन 1 000 व्यक्ति प्रतिदिन नेहरू म्यूजियम देखने जाते हैं।

आज के निर्माण और आवास मंत्री सिकन्दर बख्त प्रधानमंत्री के लिए एक भवन बनाने के बारे में बड़ी गहरी बातें कह रहे हैं। कहते हुए खेद होता है कि ये न जाने किस गुजरे जमाने में रह रहे हैं।

10 डाउनिंग स्ट्रीट में ब्रिटिश प्रधानमंत्री के निवास में उनके व्यक्तिगत उपयोग के लिए कुछेक कक्ष ही हैं। बाकी सभी कक्षों में दफ्तर है और कुछेक कक्षों का तो सभी उपयोग करते हैं।

समृद्ध स्वीडन के समाजवादी लोकतंत्री प्रधानमंत्री टेज इरलेंडर बीस बरस तक तीन कमरों के फ्लैट में रहे थे। उनकी पत्नी अध्यापिका थीं। संयोग से मैं उन दोनों से मिला था। स्वीडन की सरकार ने उन्हें कार तक नहीं दी थी। प्रधानमंत्री और उनकी पत्नी के पास छोटी-सी कार थी जिसे वे स्वयं चलाते थे। वे चालक रखने तक की हैसियत में न थे।

धनी आस्ट्रेलिया के लेबर पार्टी के प्रधानमंत्री जोसफ चीफ्ले अपने कार्यालय के पास दूसरे दर्जे के एक होटल में दो कमरे लेकर रहते थे। उनकी पत्नी को अपने फार्म पर ही रहना पसंद था क्योंकि वे कैनबरा के सामाजिक भंवर में नहीं फंसना चाहती थीं। प्रधानमंत्री को कार नहीं दी गयी थी। वे होटल से अपने कार्यालय तक पैदल आते थे। लंदन में मेरी उनसे कई बार मुलाकात हुई। वे बहुत ही सज्जन और सहृदय व्यक्ति थे।

सिकन्दर बख्त जैसे व्यक्ति उस शाही शान शौकत के तरफदार लगते हैं जो इस जमाने से कभी की उठ गयी है।

15

प्रधानमंत्री द्वारा वायुसेना के विमान का उपयोग

1951 के मध्य में इंटेलिजेंस ब्यूरो के निदेशक मुझसे मिलने आए और सबसे पहले चुनावों के लिए सर्दियों में शुरू होने वाले प्रचार-अभियान के दौरान नेहरूजी की सुरक्षा के बारे में उन्होंने चिंता व्यक्त की। उन्होंने कहा कि नेहरूजी का जीवन बराबर खतरे में है। अगर प्रधानमंत्री नियमित व्यापारिक उड़ानों में यात्रा करेंगे तो मुझे बड़ी परेशानी होगी। फिर व्यापारिक उड़ान सेवा उस समय शुरू के दौर में थी। इंटेलिजेंस ब्यूरो के अध्यक्ष ने मुझसे पूछा : क्या भुगतान पर भारतीय वायुसेना के हवाई जहाज़ों में प्रधानमंत्री द्वारा सफर करने के बारे में कुछ किया जा सकता है? मैंने उनसे कुछ लोगों का परामर्श लेने और मामले को आगे बढ़ाने का वादा किया।

बाद में मंत्रिमंडल-सचिव एन. आर. पिल्ले से मेरी बात हुई। उन्होंने तीन वरिष्ठ अधिकारियों की एक कमेटी बनाने का सुझाव दिया, जो प्रधानमंत्री द्वारा गैरसरकारी दौरों पर जाने के लिए भारतीय वायुसेना के विमानों के उपयोग के मामले पर विचार करे। मैंने प्रधानमंत्री से बातचीत की और उन्होंने एक कमेटी नियुक्त कर दी। इसमें मंत्रिमंडल-सचिव एन. आर. पिल्ले अध्यक्ष, रक्षा-सचिव सदस्य और आई. सी. एस. तरलोक सिंह सदस्य-सचिव थे। कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में प्रधानमंत्री की सुरक्षा पर विस्तार से विचार किया और यह तथ्य भी स्पष्ट किया कि प्रधानमंत्री गैरसरकारी दौरों पर जाने पर भी प्रधानमंत्री ही बना रहता है। वह विमान में बहुत सारा काम-काज निपटा सकता है और रात को भी जहाँ ठहरता है वहाँ अपना काम देख सकता है। कमेटी ने सुझाव दिया कि प्रधानमंत्री अपना और अपने साथ चलने वाले गैरसरकारी व्यक्तियों का वही हवाई किराया सरकार को देकर भारतीय वायुसेना के विमानों से यात्रा कर सकता है जो व्यापारिक उड़ान सेवा लेती है। इस हवाई किराये में ठहरने का खर्च भी

जोडा जायगा। प्रधानमत्री के साथ यात्रा करने वाले स्टाफ और व्यक्तिगत नौकरो को हवाई किराया नही देना होगा।

प्रधानमत्री ने मत्रिमडल-सचिव से कहा कि वे यह रिपोट मत्रिमडल मे विचार और अतिम निणय के लिए मत्रिमडल के सदस्यो क पास भेज दें। मैंने नेहरूजी से कहा कि उनके नीचे काम करने वाले अधिकारियो से बनी कमेटी का सुझाव और बाद म मत्रिमडल का इस पर निणय, इस तरह के मामले का औचित्य सिद्ध करने के लिए काफी नही। वे कुछ नाखुश हुए और मुझसे पूछने लग कि और क्या किया जाना चाहिए। मैंने कहा कि यह मामला सरकार के प्रभाव स स्वतत्र किसी अधिकारी जस महालेखानियत्ता तथा परीक्षक के पास भेजना चाहिए। मैंने यह भी कहा कि यह उन्ही के हित म रहगा। फिर उन्ह स्वय यह काम करने की जरूरत नही। मैं खुद ही नरहरि राव स बात कर लूगा। वे उस समय महालेखा परीक्षक थे। उन्होने भावहीन स्वर मे कहा 'जो मर्जी आये, करो।" इसके बाद मैंने मत्रिमडल सचिव से कहा कि उस रिपोट पर विचार करने की तारीख मुझसे बिना पूछे तय न करे।

इस बीच महालेखा-परीक्षक से मेरी बातचीत हुई और मैंने सारे कागज उन्ह दे दिये। उन्होने कहा कि वे फाइल का अध्ययन करेंगे और बाद म मुझसे दफ्तर म मिलेंगे। कुछ दिनो बाद वे आये और उन्होने बताया कि व मत्रिमडल सचिव की रिपोट के एक ही प्रश्न पर विचार करेंगे और नोट लिखेंगे। वह प्रश्न था अभी भी मौजूद कुछ हद तक असामान्य स्थितिया म प्रधानमत्री की व्यक्तिगत सुरक्षा। मैंने कहा "आपको जो उचित लगे, लिखें।" दो दिन बाद उन्होने नोट लिखकर फाइल मुझे वापस कर दी। उन्हाने मत्रिमडल सचिव की रिपोट म दिये गय सुझावो को स्वीकार किया लेकिन साथ ही एक बडा अहम नुक्ता चस्पा कर दिया। नुक्ता था, यह रियायत केवल श्री जवाहरलाल नहरू के लिए ही है और इसे पूव उदाहरण के रूप म उद्धत नही किया जाना चाहिए।" महालेखा परीक्षक का यह नोट मत्रिमडल के सभी सदस्यों म घुमाया गया। बाद मे मत्रिमडल ने इस पर निणय लिया। तब महालेखा-परीक्षक का नोट समाचारपत्रो को जारी किया गया।

1951 मे भारतीय वायुसेना की अति महत्वपूण व्यक्तियो की उडान के लिए केवल कुछ डकोटा विमान ही थे। बहुत समय बाद टरबो प्रॉप प्रणाली के चार इजिन वाले मझले आकार के ब्रिटिश विमान विस्काउट आये।

1951 52 म चुनाव-अभियानो मे नेहरूजी ने हवाई जहाज से 18 348 मील कार स 5 682 मील, रेलगाडी से 1 612 मील और नाव से 90 मील की यात्राएँ की। उन्होंने लगभग तीन करोड श्रोताओ के सामने 305 भाषण दिये। समाचार पत्रो और रेडियो के माध्यम से अपनी बात कितने लोगा तक पहुँचायी, इसका कोई हिसाब नहीं। इन दौरो म उन्होने 46 दिन लगाये।

भारतीय डाक और तार विभाग ने प्रधानमत्री तक रोजाना डाक थलो म सरकारी फाइलें और कागज पहुँचाने और उनके द्वारा निपटाये जाने के बाद अगले दिन वापस उन्ह दिल्ली लाने की विशेष व्यवस्था की। यह व्यवस्था बहुत सफल रही।

जहाँ तक मैं जानता हूँ नेहरूजी के बाद आने वाले प्रधानमत्रियो ने गर सरकारी दौरो के लिए वायुसेना के विमानो के उपयोग के बारे म महालेखा परीक्षक स फिर स सहमति लेने की कभी जरूरत नहीं समझी। शायद उन्हे पता
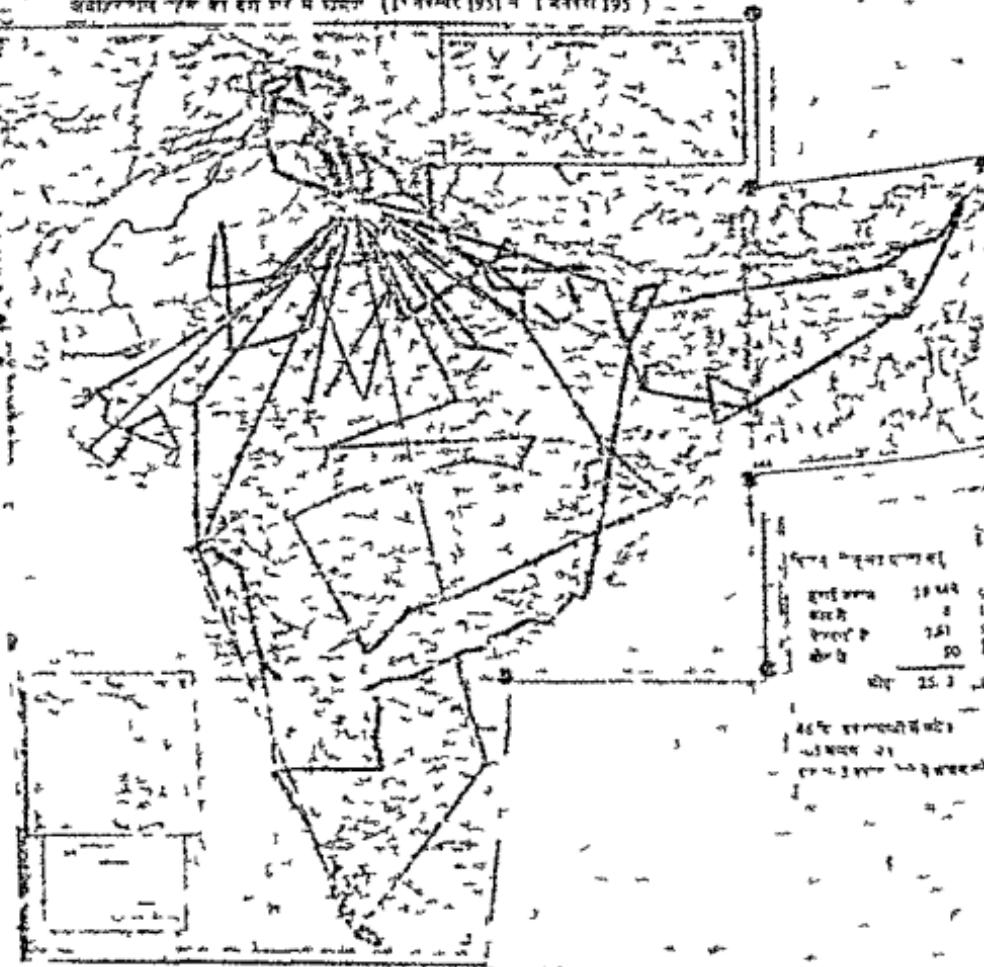
था कि महालेखा परीक्षक राजी नहीं होंगे। इस तरह उनके द्वारा गैरसरकारी दौरों के लिए वायुसेना के विमानों का उपयोग अनुचित था।

विदेश के अपने दौरों पर नेहरूजी आमतौर पर एयर इंडिया की व्यावसायिक उड़ानों से यात्रा करते थे। मुझे केवल ऐसे दो अवसरों का स्मरण है जब उन्होंने भारतीय वायुसेना के विस्काउंट विमानों से यात्रा की थी। एक बार तब जब वे सीरिया, पश्चिमी जर्मनी, डेनमार्क, स्वीडन, फिनलैंड, नार्वे, इंग्लैंड, मिस्र और सूडान की संयुक्त यात्रा पर गये थे। दूसरी बार तब, जब वे संसद-सदस्यों के प्रतिनिधिमंडल के साथ सऊदी अरब गये थे। दोनों ही अवसरों पर मेरे पास वायुसेनाध्यक्ष का अनुरोध आया था कि मैं प्रधानमंत्री से भारतीय वायुसेना के विमानों से यात्रा करने को कहूँ ताकि उनके चुनिंदा पायलटों को मूल्यवान अनुभव प्राप्त हो सके।

16

रफी अहमद किदवई

भारत में एक ही व्यक्ति ऐसा हुआ है जो पूरी तरह से सही अर्थों में धर्म निरपेक्ष था। उस व्यक्ति को लोग प्यार से रफी कहा करते थे। नेहरू और सप्रू परिवार वालों की तरह उनमें भी यह गुण मौजूद था। रफी कुछ वर्षों तक विख्यात मोतीलाल नेहरू के सचिव रहे थे। अपने पिता और गांधीजी के अलावा नेहरूजी केवल दो और व्यक्तियों से प्यार करते थे—एक रफी थे और दूसरे थे ए सी एन नम्बियार। वे क्रांतिकारी प्रसिद्ध चट्टो और सरोजिनी नायडू के बहनोई द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान कुछ अरसे के लिए यूरोप में सुभाषचन्द्र बोस के अनिच्छुक सहयोगी थे और स्वतन्त्रता के बाद अनेक यूरोपीय देशों में राजदूत रहे थे। नेहरूजी इन दोनों में अक्सर नाराज़ हो जाते थे और उनपर ज़ोर ज़ोर से चिल्लाने लगते थे। उनकी यह हरकत उन दोनों के प्रति स्नेह की द्योतक थी। 1964 के शुरू में ए सी एन नम्बियार (नेहरूजी उन्हें प्यार से ननु कहा करते थे) प्रधानमन्त्री निवास में आकर ठहरे थे। नेहरूजी जब तक जीवित रहे वे हमेशा ही भारत आने पर उनके यहां ठहरते थे। नाश्ते के समय उन्होंने नेहरूजी से कहा मुझे एक बात का बड़ा अफसोस है। इस बार आप मुझ पर नाराज़ नहीं हुए। सुनकर नेहरूजी हँसने लगे। वे उस समय बीमार थे। यूरोप जाने से पहले ननु ने मुझसे कहा 'पंडितजी शायद ज्यादा दिन नहीं जीयेंगे। मैं उनसे दुबारा नहीं मिल पाऊंगा।' उनकी आंखों में आंसू थे।

रफी अहमद बड़े सीधे सादे और बेतकल्लुफ थे। उनके पास ऐसे बंदे काफी तादाद में थे जो केवल उनके प्रति वफादार और निष्ठावान थे। उन लोगों को दिल्ली में दोहरे अर्थ वाले शब्द रफियन (अंग्रेजी में इसका अर्थ 'बदमाश' होता है) के नाम से पुकारा जाता था। रफी साहब के घर के दरवाज़े हमेशा खुले रहते जिसमें उनके बंदे और दूसरे कांग्रेसी कार्यकर्ता बरोक टोक आया-जाया करते

और उनकी भरपूर मेहमाननवाज़ी का लाभ उठाते थे। इस काम के लिए वे बीच के दर्जे के उद्योगपतियों और व्यापारियों से पैसा लेना बुरा नहीं समझते थे। पैसे के अलावा वे घड़ियां, फाउन्टेनपेन, ऊनी कपड़े और इसी तरह की दूसरी चीज़ें उपहार स्वरूप ले लिया करते थे और उन्हें अपने 'रफियनों' में बांट देते थे जिनमें फिरोज़ गांधी भी हुआ करते थे।

बड़ी कारें और उन्हें तेज़ रफ्तार से चलाना रफी साहब की कमज़ोरी थी। उन्होंने कई सड़क दुर्घटनाएँ कीं, लेकिन वे हमेशा भाग्य के इतने धनी रहे कि छोटी-मोटी चोटों के साथ बच निकले। एक बार नेहरूजी को दिल्ली के नज़दीक उत्तर प्रदेश के एक उद्योगपति ने शिकायत लिख भेजी थी कि रफी साहब ने उनसे एक बड़ी कार की मांग की और उन्हें देनी पड़ी। नेहरूजी ने रफी साहब को लताड़ का पत्र लिखा और कार तुरंत वापस करने को कहा। उन्होंने कार कभी वापस नहीं की।

उत्तरप्रदेश और केन्द्र, दोनों में रफी साहब सफल मंत्री रहे। केन्द्र में संचार मंत्री का काम उन्होंने बड़ी सूझ-बूझ से निभाया और नागरिक विमान सेवा का राष्ट्रीयकरण करते समय शक्तिशाली उद्योगपति टाटा तक की न सुनी। रात्रि-कालीन हवाई डाक सेवा भी उन्होंने ही शुरू करवाई। खाद्य और कृषि मंत्रालय में भी उन्होंने सूझबूझ से काम लिया, लेकिन वहां उनकी किस्मत ने दूसरों से ज्यादा उनका साथ दिया।

रफी साहब अक्सर शाम को बिना पूर्व-सूचना के प्रधानमंत्री के निवास पर आ जाया करते थे। अगर नेहरूजी मुलाकातियों से घिरे होते थे तो वे मेरे पास अध्ययन कक्ष में आ बैठते थे और घंटों बोलते रहते थे। एक बार मैंने उन्हें फिरोज़ गांधी की बतायी बात सुनायी। वे हँसने लगे और उन्होंने मुझसे पूछा "फिरोज़ जो कुछ कहता है, क्या आप उस पर यकीन करते हैं?"

जब गृह मंत्रालय बड़ौदा के महाराजा प्रतापसिंह के विरुद्ध कारवाई कर रहा था (अंत में उन्हें अपदस्थ कर दिया गया) तो इसी बीच रफी साहब उनसे मिले और नेशनल हैराल्ड के लिए 2,00,000 रुपये ऐंठ लिये। इसकी सूचना सरदार पटेल ने नेहरूजी को दी। नेहरूजी ने तुरंत रफी को पत्र लिखकर रकम लौटाने को कहा। रफी साहब ने उत्तर दिया कि उन्होंने ऐसोशिएटिड जर्नल्स लिमिटेड के मैनेजिंग डायरेक्टर फिरोज़ गांधी को रकम वापस कर देने के लिए लिख दिया है। वास्तविकता यह थी कि उन्होंने इस तरह का कोई काम नहीं किया था। मज़े की बात यह है कि एक तरफ रफी साहब महाराजा प्रतापसिंह से सौदेबाज़ी कर रहे थे तो दूसरी तरफ नेहरूजी को बता रहे थे कि वी पी मेनन ने महाराजा से हज़ारों रुपये की घूस ली है।

बहुत ही कम लोग जानते हैं कि एक बार रफी साहब सरदार पटेल के पास गए थे और नेहरूजी को सरकार से हटाने में सहयोग का प्रस्ताव रखा था। उनके साथ महावीर त्यागी उनके पास गये, जो 'रफियन' थे। पटेल को दोनों ही पसंद नहीं थे। वे उन्हें राजनीतिक रूप से बेईमान मानते थे। रफी को मालूम हो गया कि पटेल को उन्होंने जितना बुद्धिमान और दूरदर्शी समझा था, वे उससे कहीं अधिक बुद्धिमान और दूरदर्शी निकले।

रफी ने जब कांग्रेस छोड़ी और आचार्य कृपालानी तथा दूसरे नेताओं के साथ किसान मजदूर प्रजा पार्टी नाम की नयी संस्था बनायी तो नेहरूजी उनसे बहुत नाराज़ और नाखुश हुए। कुछ समय बाद नेहरूजी ने रफी साहब को बुलवाया।

उस समय किदवई प्रधानमंत्री निवास में मेरे अध्ययन-कक्ष में बैठे थे। नेहरूजी भीतर आये और उन्होंने रफी साहब से बातें शुरू की। धीरे धीरे नेहरूजी गर्म होते गये और उन्होंने डांटना शुरू कर दिया। नेहरूजी ने रफी साहब से कहा 'तुममें चूहे जितनी अक्ल भी नहीं है।' बस तभी मैं कमरे से निकल गया और मैंने दरवाजा बन्द कर दिया। नेहरूजी ने रफी साहब को कांग्रेस और सरकार में लाने के लिए कोई कसर बाकी न रखी।

एक दिन एक वरिष्ठ एयर कमोडोर ने मुझे फोन किया। वे भारतीय वायु सेना मुख्यालय में स्टाफ अफसर थे। बाद में वे मुझसे मिलने आये। उन्होंने मुझे बताया कि रफी साहब ने उनसे बी पी कोइराला के लिए गुप्त रूप से हथियार और गोलाबारूद हवाई जहाजों से नेपाल पहुंचाने के लिए कहा है। कोइराला उस समय नेपाली अधिकारियों के विरुद्ध लड़ रहे थे। रफी साहब ने उनसे कहा था कि इसका अनुमोदन प्रधानमंत्री से मिल चुका है। साथ ही उन्होंने बताया कि वायु सेना-अध्यक्ष जानते हैं कि कुछ स्थितियों में सरकार को अप्रचलित तरीकों से काम लेना पड़ता है। वे केवल इस बात की पुष्टि चाहते थे कि प्रधानमंत्री ने इस काम की अनुमति दे दी है या नहीं। मैं कहने ही वाला था कि वे इस सारे कांड को भूल जायें और अगर प्रधानमंत्री को इस तरह की कोई बात करानी ही होती तो वे रक्षा मंत्री से कहते। लेकिन मैंने एयर-कमोडोर से कहा कि मैं शाम को इसके बारे में प्रधानमंत्री से पूछूंगा और उन्हें अगले दिन मिलने का समय दे दिया। शाम को इस मामले के बारे में मैंने प्रधानमंत्री को बताया तो वे आगबबूला हो उठे। उन्होंने अपने किसी भी निजी सचिव को बुलाने को कहा ताकि उसी समय रफी साहब को पत्र लिखवा दें। मैंने उनसे इस तरह के नाजुक विषय पर उतावली में पत्र न भेजने की सलाह दी। मैंने उन्हें फोन पर बात करने को कहा। उन्होंने तुरंत फोन किया। अगले दिन सुबह एयर कमोडोर साहब आये। मैंने रफी साहब की बात रखते हुए उन्हें स्थिति समझाने की कोशिश की और उनसे यह कांड भूल जाने को कहा।

रफी साहब से मेरी दो भेंटें हुई। उस समय वे केन्द्रीय मंत्री थे। एक भेंट 1950 में पुरुषोत्तमदास टंडन के कांग्रेस अध्यक्ष के पद से हटने के बाद यू श्रीनिवास मलैया की कांग्रेस के महासचिव पद पर नियुक्ति के सिलसिले में हुई। मैंने इस पद के लिए मलैया और लालबहादुर के नाम सुझाये थे जो उस समय उत्तर प्रदेश में पुलिस मंत्री थे। रफी साहब मलैया को पसंद नहीं करते थे क्योंकि मलैया दूसरों के प्रभाव में जल्दी नहीं आते थे। इसलिए रफी साहब ने मलैया के विरुद्ध राजाजी से साठ गांठ की। राजाजी ने नेहरूजी से कहा कि मलैया दाव-पेंच वाला आदमी है। उन्होंने निजलिंगप्पा का नाम सुझाया जो नेहरूजी को कतई पसंद न आया। नेहरूजी ने मुझसे इस विषय में बातचीत की। मैंने उनसे कहा कि मलैया राजाजी से कम दावपेंच वाले आदमी हैं वे कोई पद नहीं चाहते और मैंने इस विषय में उनसे कोई बात नहीं की है। मैंने यह भी कहा कि मलैया को मनाने के लिए उन्हें स्वयं थोड़ी बहुत कोशिश करनी पड़ेगी। नेहरूजी ने मलैया को बुलाया उन्होंने आने से इंकार कर दिया। अगले दिन नेहरूजी ने उन्हें फिर बुलाया। उन्होंने नेहरूजी से कहा कि वे दिखावटी के काम के लिए उपयुक्त नहीं हैं। वे एक सहायक के तौर पर ही महा सचिव के पद पर आ सकते हैं। लालबहादुर चाहें तो ऐसे लोगों को उनके पास भेज सकते हैं जो दिक्कत पैदा कर रहे हों। मलैया जानते थे कि लालबहादुर दुतरफा आदमी हैं और गलत को

गटन नहीं कह सकते। मलया ने नेहरूजी से कहा कि वे इस तरह के अमुखद कामा स लालबहादुर को मुक्ति दे देंगे। नेहरूजी ने उनकी नियुक्ति कर दी। उन्होंने और लालबहादुर ने मिलकर खूब अच्छी तरह स काम किया। जब लालबहादुर प्रधानमन्त्री बन तो उन्होंने मन्त्रिमंडल म मलैया को शामिल करना चाहा लकिन मलया न उनका प्रस्ताव ठुकरा दिया।

दूसरी बार लोकसभा के एक झगडालू कम्युनिस्ट सदस्य को लकर हुई जिसन लोकसभा के आवास निकाय म से एक मकान पर जबरदस्ती कब्जा कर रखा था। रफी साहब ने उसका समथन किया और मलैया से इस विषय म बात की। मलैया ने उनसे कह दिया कि उन्होंने उस लोकसभा सदस्य को आगाह कर दिया है कि अगर उसने अपन आप दो हफ्ते म मकान खाली नही किया तो पुलिस निकाल बाहर करेगी। मलैया को लोकसभा अध्यक्ष ने आवास समिति का अध्यक्ष नियुक्त कर रखा था। मलया ने मुझे सभी तथ्य बताये और कहा कि लोकसभा अध्यक्ष दृढता स काम लेंगे। मैंने उनसे चिन्ता न करन को कहा और बताया कि अगर रफी साहब इस मामले म प्रधानमन्त्री से हस्तक्षेप करायगे तो मैं कोशिश करूगा कि प्रधानमन्त्री आपको बुला भेजें और तब आप अपनी बात पर डटे रहना। रफी साहब आये और उन्होंने मलैया के खिलाफ नेहरूजी से शिकायत की। नेहरूजी ने मलया को बडा कठोर पत्र लिखवाया। मैंने पत्र रोक लिया और नेहरूजी से मलया को बुलाकर बातें करने को कहा। मैंने उन्हें याद दिलाया कि यह मामला लोकसभा अध्यक्ष के अधिकार-क्षेत्र का है जिन्होंने पहले से ही लोकसभा के उस कम्युनिस्ट सदस्य की अपील ठुकरा दी है। इस बीच वह कम्युनिस्ट सदस्य ससद भवन म मेरे कार्यालय म आया। उसने प्रधानमन्त्री के निजी सहायक से तुरत प्रधानमन्त्री से साक्षात्कार की माग की। निजी सहायक ने बताया कि प्रधानमन्त्री इस समय व्यस्त है। वह जोर-जोर से चिल्लाने लगा। उसने निजी सहायक से कहा कि 'रफी साहब न मुझे यहा भेजा है।' मैं बीच म ही बोल उठा कि रफी साहब को उन्हें यहा नही भेजना चाहिए था। साथ ही यह भी कह डाला कि तुम्हारा व्यवहार एक लोकसभा सदस्य के अनुरूप नही है और अगर तुमने चिल्लाना बन्द नही किया तो तुम्हें कमरे से जबरदस्ती बाहर निकलवा दिया जायेगा। वह ठडा पड गया और मेरी तरफ गुस्से से देखता हुआ बाहर चला गया।

उसी दिन प्रधानमन्त्री ने मलया से भेंट की जिन्होंने उन्हें पूरी स्थिति के बारे म बता दिया। नेहरूजी का तर्क था, 'आपको पहले ही दृढ कदम उठाना चाहिए था।' मलया ने कहा "जब तक आप दृढ नही होंगे तो मैं कैसे दृढ हो सकता हू ?" नेहरूजी मुस्कराने लगे। बाद म नेहरूजी ने रफी साहब से कहा "तुमने मुझे गलत जानकारी क्यो दी ?" रफी साहब खामोश रहे। मैंने हमेशा यह महसूस किया है कि नेहरूजी के पास जब कभी भी तथ्य रहे है उन्होंने स्वत ही सही कदम उठाया है।

1953 म जम्मू-कश्मीर के मुख्यमन्त्री पद से शेख अब्दुल्ला को हटाने के लिए नेहरूजी को मजबूर करने म कुछ हद तक मौलाना आजाद और बडी हद तक रफी साहब का हाथ रहा।

उनम चाहे जितनी भी खामियाँ थी और उनका व्यवहार चाहे जितना ज्यादा ताक स परे रहा हो, भारत म रफी साहब जैसे ज्यादा-स-ज्यादा आत्मियो से मैं मिलना चाहूँगा। मृत्यु के समय उनके पास पैसा नही था। हर तरह स रफी साहब खुशमिजाज आदमी थे। आबू बन अधेम की तरह उन्होंने 'अपने लोगो म प्यार किया था।

17

फिरोज गाधी

फिरोज़ गाधी के पिता पारसी थ और इलाहाबाद म शराब और खाद्य पदार्थों के व्यापारी थ। फिरोज़ गाधी काग्रेस के स्वय-सेवक के रूप म शुरू स ही कमला नेहरू के साथ काम करने लग थ। व जब इलाहाबाद क्षत्र म काग्रेस के काम स जाती थी तो फिरोज़ सहायक के रूप म उनके साथ-साथ रहत थ। पढाई म दिलचस्पी का दोष उनके सिर नही मढा जा सकता। सारी ज़िंदगी उनकी लिखा वट बच्चा की सी ही रही।

दिसबर 1935 के अत म जमनी के बाडनवीलर नामक स्थान पर कमला ने अपन पति से बात की। उस समय उन दोनो के मित्र ननु (ए सी एन नम्बियार) भी मौजूद थ। दो महीने बाद ही कमला को परलोक सिधार जाना था। उ होने कहा कि वे इदिरा के भविष्य के बारे म चिंतित है। इदिरा स *फिरोज़ गाधी के विवाह की सभावना पर उ होने अपनी नाराज़गी कटु शब्दा* म जाहिर की। वे फिरोज गाधी को स्थिर चित्त नहा मानती थी और उनका खयाल था कि कोई अच्छा धधा करने और इदिरा के खच का भार वहन करने की योग्यता उनम कतई नही थी। कोशिश करके व इतना और कह सकी 'मैं नही चाहता कि मेरी बच्ची ज़िंदगी भर दुखी रहे। नेहरूजी ने उन्ह तसल्ली देत हुए कहा यह मामला तुम मुझ पर छोड दो।' कुछ मिनट बाद नेहरूजी कमरे स बाहर चल गये और कमला ने ननु की तरफ पलटते हुए कहा 'सुना उ होने क्या कहा। इदु मेरे अलावा किसी और की बात नही सुनेगी। मैं बड प्यार स इदु को समझाकर फिरोज से अलग कर सकती थी। लेकिन मेरा अत निकट है। जवाहर इदु को बिल्कुल नही समझायेंग। अत म वह यह गलती कर बठेगी और ज़िन्दगी भर पछताती रहेगी।

28 फरवरी 1936 को कमला नेहरू की मत्यु के कुछ समय बाद फिरोज़

गाधी न अपनी एक चाची से किसी तरह से कुछ पैसा लिया और लदन जा पहुँचे। उस समय इन्दिरा भी इग्लैंड म पढ रही थी। लदन म फिरोज की प्लाइ' वहाँ के भारतीयो म सदा-बहार लतीफा बनी हुई थी।

द्वितीय विश्वयुद्ध छिडने के बाद इग्लड मे पढने वाले दूसरे बहुत-से भारतीय विद्यार्थियो की तरह इन्दिरा भी भारत लौट आयी। फिरोज गाधी भी वापस आ गये। 1941 म इन्दिरा न अपने पिता स कहा कि मैं फिरोज गाधी स शादी करना चाहती हूँ। सुनत ही नेहरूजी को वाडेनवीलर म कह अपनी पत्नी के शब्द याद हो आये और उन्होन इन्दिरा को विवाह न करने के बारे म काफी समझाया। नेहरू-परिवार के सभी सदस्य इस विवाह के विरुद्ध थ। नेहरूजी और वे सभी सोच भी न सकत थ कि इन्दिरा का विवाह इलाहाबाद के ही एक शराब और खाद्य-पदार्थों के व्यापारी के बेटे स हो। फिर लडके म इतनी योग्यता भी न थी कि वह किसी अच्छे काम धधे म जा सके। विवाह का विरोध चलता रहा। इन्दिरा न भी जिद पकड ली। उसने अपने पिता से कहा कि इस देश म मेरी जडें नहा हैं और मैं देश छोडकर जा रही हूँ। यह सुनकर नेहरूजी को बडा दुख हुआ। उन्होने यह बात विजयलक्ष्मी पडित और पद्मजा नायडू को बतायी जो उस समय इलाहाबाद म ही थी। पद्मजा ने राय जाहिर की कि एक पिता को अपनी वयस्क बेटी के रास्ते म आने का कोई हक नहीं है। नेहरूजी ने आखिर बेमन स इजाजत दे दी।

नेहरूजी न 1942 म वैदिक रीति स विवाह की अनुमति क्या दी इसका कारण आज तक स्पष्ट नहीं है। उस समय वैदिक रीति से अतर्जातीय और विजातीय विवाह वैध नहीं थे। ऐसा विवाह तभी वैध हो सकता था जब वह सिविल कानून के तहत हुआ हो। इस तरह कानून की बारीकी से देखें तो इन्दिरा मात्र रखल थी और उसके बच्चे जारज सतान।

विवाह के तुरत बाद फिरोज गाधी को एसोशिएटिड जनल्स लिमिटेड का मनेजिंग डायरेक्टर बना दिया गया जिसके स्वामित्व म नेशनल हैराल्ड नव जीवन और कौमी आवाज' नाम के पत्र थे। इसके परिणाम बडे ही खतरनाक निकले जिनका उल्लेख मैंने नैशनल हैराल्ड और सहयोगी समाचारपत्र शीर्षक अध्याय म किया है। मैंने फिरोज गाधी के बारे म कुछ बातें रफी अहमद किदवई शीर्षक अध्याय म भी लिखी है।

इस बीच फिरोज गाधी बीमा एजेंट के रूप म कुछ काम करत रहे और उनका गुजारा चलता रहा।

नेहरूजी के इशारे पर उत्तर प्रदेश के मुख्यमत्री गोविन्दवल्लभ पत न फिरोज गाधी के सविधान सभा मे चुने जाने का प्रबध किया जो दिसबर 1946 म गठित की गयी थी। इसके बाद उनका समय दिल्ली और लखनऊ म बीतने लगा। 1951 52 के चुनावो म वे पहली लोकसभा के लिए चुन लिय गये और 1961 म परलोक सिधारने तक लोकसभा के सदस्य रहे।

1947 म फिरोज गाधी श्रीमती पडित की लडकियो म से एक से प्रेम करने लग जो लखनऊ म नेशनल हैराल्ड' मे नौसिखिया पत्रकार के रूप म प्रशिक्षण पा रही थी। खबर सुनत ही श्रीमती पडित अपने खर्चे से मास्को से हवाई जहाज द्वारा सीधे लखनऊ पहुची और अपनी बेटी को मास्को ले गयी।

खाने की मेज पर होने वाली बातचीत म नेहरूजी के मुह स निकली दो बातें जग जाहिर हो गयी जिनसे नेहरूजी को बडी परेशानी उठानी पडी। पता लगा

कि य बातें फिरोज गाधी के ज़रिए फैली थी। उसके बाद से खाने के समय फिरोज़ गाधी के मौजूद होने पर नेहरूजी ने अपना मुह कभी नही खाला। समय बीतने पर भी नेहरूजी पूरी तरह से यह नही भूल पाये कि उनकी इकलौती बेटी ने फिरोज गाधी से शादी की है। विवाह के बाद की बातें भी उन दोनो के बीच की दरार को नही भर पायी।

1948 के लगभग स्वास्थ्य मत्री राजकुमारी अमतकौर ने मुझे बताया था कि फिरोज गाधी ने ससद भवन के केंद्रीय हाल म लोकसभा के बहुत से सदस्या के सामने कहा है प्रधानमत्री का जवाई मैं नही एम ओ मथाई है।" लोक सभा के कुछ सदस्या ने बाद म सोचा कि फिरोज़ गाधी ने यह बात इसलिए कही है क्योकि मैं हमेशा नेहरूजी के साथ रहता हूँ घर से दफ्तर और दफ्तर से घर भी उनकी ही कार म आता जाता हू और मैं रहता भी प्रधानमत्री के निवास म हू।

फिरोज़ गाधी का एक इश्क और हुआ था। इस बार का इश्क उत्तरप्रदेश सरकार के एक मुस्लिम मत्री की बेटी से था। लडकी नयी दिल्ली म आकाशवाणी म काम कर रही थी। दोनो ने शादी का फैसला तक कर लिया। फिरोज़ गाधी ने अपना इरादा इदिरा को बताया। उसने कहा कि मुझे कोई आपत्ति नही है। फिरोज ने कहा कि वे अपने पहले बच्चे की अभिभावकता लेना चाहते हैं। इदिरा ने इकार कर दिया। उसी शाम को वे प्रधानमत्री निवास म नेहरूजी के अध्ययन कक्ष मे उनके डेस्क पर एक पुर्ज़ा रखकर चले गये। इस पुर्जे म उन्होने लिखा था इस बार सारी गलती मेरी है।' नेहरूजी ने रात के खाने के बाद फिरोज को बुलवाया और उन्हे अपनी बात खुल कर कहने को कहा। अगली सुबह नाश्ते के बाद नेहरूजी इदिरा को अपने अध्ययन-कक्ष म ले गये और उन्होने पिछली रात फिरोज़ गाधी से हुई बातचीत के बारे म उसे बताया लेकिन उन्होने उसे फिरोज़ से हुई सभी बात नहा बताया। लेकिन नेहरूजी ने इन्दिरा से एक प्रश्न पूछा 'क्या तुम्हारी निगाह म भी कोई है ?' उसने न कर दी। शाम को सभी बातें इदिरा ने मुझे बतायी और मुझसे शिकायत की कि उसके पिता ने उससे खुलकर बात नही की। बेटी के नाते उसे उम्मीद थी कि उसके पिता फिरोज़ गाधी की कही सब बाते बता देंगे। मैंने उससे कहा कि जाहिर है कि उसके पिता सभी बातें दोहराकर मामले को तूल देना और गलतफहमिया पैदा नही करना चाहते थे।

जब बेटी के इश्क की खबर लखनऊ तक पहुची तो मुस्लिम मत्री चौके। वे तुरत दिल्ली आये और अपनी बेटी को यहा से लिवा ले गये।

इस काड के तुरत बाद फिरोज गाधी अपने लोकसभा-सदस्य वाले क्वाटर म उठ आये।

नेशनल हैराल्ड से निकलने के बाद रफी अहमद किदवई ने इडियन एक्सप्रेस म फिरोज़ गाधी के लिए नौकरी ढूढ निकाली। रफी साहब की मत्यु के बाद नेहरूजी के पास खबर पहुची कि 'इडियन एक्सप्रेस' के मालिक रामनाथ गोयनका ने किसी से कहा कि यह नौकरी उन्होने फिरोज़ गाधी को रफी साहब के कहने पर दी है। रफी साहब ने उनसे कहा था कि इससे नेहरूजी का आर्थिक बोझ कुछ कम होगा। इसी वजह म उन्होने फिरोज़ गाधी को एक दूसरी आस्टिन गाडी दी है ताकि इन्दिराजी के काम आ सके। प्रधानमत्री ने मुझसे गोयनका से इस विषय में पूछने को कहा। मैंने पूछताछ की और गोयनका ने पुष्टि की कि प्रधानमत्री तक पहुचने वाली यह खबर एकदम सच है। मैंने उनसे कहा कि दूसरी आस्टिन गाडी

का स्तमाल इन्दिरा ने कभी नहीं किया। गायनका से हुई बातचीत का सार मैंने प्रधानमंत्री को कह सुनाया। व परशान नजर आ रहे थ। मैंने उनम कहा कि गायनका न वही आम्प्रिन गाडी वापस लन की हिदायतें जारी कर दी हैं। मैंन उन्हें इस मामले म उस समय कोई कदम न उठाने की सलाह दी।

मूधडा-काड पर लाकसभा म फिरोज गाधी ने टी टी कृष्णमाचारी पर जबरदस्त हमला किया और सरकार स उनके इस्तीफे की मांग की। रामनाथ गोयनका कृष्णमाचारी के मित्र थे। उन्हान इडियन एक्सप्रेस से फिरोज गाधी की सवाए समाप्त कर दी।

अपनी मत्यु शय्या पर दुख भरे स्वर म कमला नेहरू ने जो आशका व्यक्त की थी वह पूरी तरह से सच निकली।

18

'नेशनल हैराल्ड' और सहयोगी समाचारपत्र

1955 के अंत मे एक दिन इंदिरा प्रधानमंत्री निवास म मेरे अध्ययन-कक्ष म आयी। वह उत्तजित थी। उसने मुझसे कहा कि उसके पिता ने अभी-अभी बताया है कि फिरोज गाधी और अजीतप्रसाद जन से उनकी बात हुई हैं और व नाना उत्तर प्रदेश काग्रेस के वास सी बी गुप्ता को नेशनल हैराल्ड और अय सहयोगी समाचारपत्र बचन जा रह है क्योकि इस समाचारपत्र-सस्था की आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो गयी है। इंदिरा ने मुझसे पूछा कि क्या स्थिति सभालने का कोई रास्ता है। मैंने स्टाफ के एक आदमी स कहा कि वह दिल्ली के रेलवे स्टेशनमास्टर को टेलीफोन करे और कहे कि फिरोज गाधी और अजीतप्रसाद को ढूढ़कर फोन तक ले आओ। इंदिरा ने फिरोज़ गाधी से फोन पर बात की और कहा कि इस प्रस्ताव पर आग कोई बातचात न चलायी जाय। फिराज गाधी उस समय एसोशिएटिड जनल्स लिमिटेड के मनेजिंग डायरक्टर की हैसियत स नेशनल हैराल्ड के इचाज थे। उनम विशेष रचनात्मक गुण नही थे। लेकिन लोकसभा म लोगो की छीछालेदर करने म व सिद्धहस्त साबित हुए थ। इसकी दीक्षा उन्होन सी डी देशमुख से जीवन-बीमा कपनियो क राष्ट्रीयकरण के अवसर पर ली थी। देशमुख ने अपने वरिष्ठ अधिकारियो स फिरोज गाधी को विभाग की कुछ गुप्त सूचनाए दने के लिए कहा था। देशमुख लोकसभा म जीवन बीमा कपनियो के राष्ट्रीयकरण स पहले ही विरोध की पृष्ठभूमि तयार करना चाहत थ। इस प्रकार फिरोज़ गाधी का परिचय कुछ वरिष्ठ अधिकारियो से हुआ जा बाद म भी दूसरे मत्रियो की खबर लेने म सहायक सिद्ध हुआ।

मुझे यह भी याद आया कि स्वतत्रता सघष के दिनो म एक बार नेहरूजी ने मुझ म कहा था नेशनल हैराल्ड को बरकरार रखने के लिए मैं खुशी से आनद भवन भी बेच दूगा।' यह सोचकर मैंने एसोशिएटिड जनल्स लिमिटेड की स्थिति

को फिर से मजबूत बनाने के लिए कुछ करने का फैसला किया। मैं तत्कालीन महान्यायवादी एम सी सीतलवाड से मिला और मैंने इन समाचार-पत्रों की मदद के लिए एक ट्रस्ट बनाने का सुझाव उनके सामने रखा। उनकी सिफारिश पर लोकसभा-सदस्य सी सी शाह ने ट्रस्ट का दस्तावेज़ तैयार किया। शाह को महान्यायवादी एक योग्य सालिसिटर मानते थे।

मैंने इंदिरा से ट्रस्ट का नाम सुझाने को कहा। उसने जनहित ट्रस्ट' नाम सुझाया। मैंने इसे बदलकर 'जनहित निधि' कर दिया और उसे बताया कि हिंदी और अंग्रेज़ी की खिचड़ी बनाना ठीक नहीं। सी सी शाह द्वारा तैयार ट्रस्ट के दस्तावेज़ का महान्यायवादी ने अनुमोदन कर दिया। 1956 के शुरू में ट्रस्ट का रजिस्टर करा लिया गया और लोकसभा-सदस्य जस्टिस पी एन सप्रू, पद्मजा नायडू और इंदिरा को इसका ट्रस्टी बना दिया गया।

ट्रस्ट ने सबसे पहला काम यह किया कि एसोशिएटिड जर्नल्स लिमिटेड में जिन लोगों ने शेयर और ऋण-पत्र ले रखे थे और कंपनी को ऋण दे रखा था, उनसे अपने शेयरों, ऋणपत्रों और ऋणों का ट्रस्ट में हस्तांतरण करने को कहा। इनमें से प्रमुख थे—पंडित गोविंदवल्लभ पंत, के एन काटजू, श्रीप्रकाश, भोपाल के नवाब, राजा भदरी, गोंडल के महाराज, विजयनगरम के महाराजकुमार, कर्नल बी एच जैदी, रामरतन गुप्ता, मनुभाई शाह, भीमाणी और साराभाई दंपति।

एसोशिएटिड जर्नल्स लिमिटेड की लेखा-किताबों को देखते समय मेरी निगाह फिरोज गांधी द्वारा दो लाख रुपये के ऋण की एक मद पर पड़ी। पूछने पर पता चला कि यह वास्तव में बड़ौदा के महाराजा प्रतापसिंह से प्राप्त ब्याज मुक्त ऋण है। इसका उल्लेख मैंने 'रफी अहमद किदवई' शीर्षक अध्याय में किया है। रफी साहब ने नेहरूजी को सूचना दी थी कि उन्होंने फिरोज गांधी से वह रकम लौटाने के लिए कह दिया है और साथ ही फिरोज गांधी को भी लिख दिया है कि वे इन हिदायतों पर तुरंत अमल करें। फिरोज़ गांधी ने एक पखवाड़े के बाद उत्तर दिया कि उन्होंने पैसा लौटा दिया है। लेकिन उन्होंने पैसा कतई नहीं लौटाया था। उन्होंने किया यह था कि कंपनी की लेखा-किताबों में यह रकम अपने द्वारा ऋण के रूप में दिखा दी थी। बाद में महाराजा के गहरे दोस्त और संबंधी तथा इंडियन नेशनल आर्मी के मेजर-जनरल जे के भोंसले के ज़रिए मेरे नाम एक पत्र आया, जिसमें महाराजा ने दान के रूप में वह ऋण ट्रस्ट के नाम कर दिया था। फिरोज़ गांधी उस समय एसोशिएटिड जर्नल्स लिमिटेड में नहीं थे और वे इससे खुश नहीं हुए थे।

उस दिन मुझे ज़रा भी आश्चर्य नहीं हुआ, जिस दिन नेहरूजी ने फ़िरोज़ गांधी द्वारा लोकसभा में वित्तमंत्री टी टी कृष्णमाचारी की छीछालेदर से नाराज़ होकर लालबहादुर और मेरे सामने कड़े शब्दों में फिरोज़ की निंदा की थी और कहा था "यह फिरोज़ का बच्चा महाझूठा है।" और तब भी मुझे आश्चर्य नहीं हुआ जब एक दिन वी के कृष्णमेनन ने मुझे बताया "मैं फिरोज़ गांधी को तब से जानता हूँ जब वह लंदन में नाममात्र के लिए पढ़ता था। अपने अनुभव से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि उसे बचपन से ही झूठ बोलने की आदत है।

'इंडियन-एक्सप्रेस समाचारपत्र-समूह के रामनाथ गोयनका ने 1 75 000 रुपये की कीमत का प्रिंटिंग प्रेस एसोशिएटिड जर्नल्स लिमिटेड को भेंट किया।

'नेशनल हेराल्ड' नवजीवन (हिंदी) और कौमी आवाज़' (उर्दू) समाचारपत्रों में रियायती दर पर विज्ञापन छापकर काफी बड़ी रकम इकट्ठी

की गयी। 1955 से 1957 तक इस तरह के विशेष विज्ञापनों के माध्यम से कुल 8 47 000 रुपये जमा किये गये। एसोशिएटिड जनरल्स लिमिटेड शुरू में ही जिन भारी रकमों का देनदार हो गया था उन्हीं के भुगतान के लिए यह विशेष विज्ञापन छापे गये थे। यह विज्ञापन भिन्न भिन्न औद्योगिक और व्यापारिक कंपनियों से मिले थे जैसे—मफतलाल, कस्तूरभाई लालभाई, टाटा, बिड़ला, बी आई सी ग्रुप और अन्य से।

1956 में 'जनहित निधि' के गठन से लेकर 30 सितंबर 1963 तक इसकी प्राप्तियां निम्नलिखित थीं

नकद दान	रु 15,77,598 68
जिंस दान	
ऋण-अंतरण (जो बाद में साधारण शेयर में बदल दिये)	रु 3 27 000 00
ऋणपत्र (250)	रु 2,50 000 00
अधिमानी शेयर (136)	रु 13 600 00
साधारण शेयर (9 166)	रु 91 660 00
बैंक से ब्याज	रु 71 194 57
एसोशिएटिड जनरल्स लि से ऋणपत्रों पर ब्याज (वास्तव भुगतान)	रु 14 100 00
एसोशिएटिड जनरल्स लि से वसूली-योग्य ऋणपत्रों पर ब्याज	रु 1 12 780 00
योग	रु 24 57 933 25

30 सितंबर 1963 को 'जनहित निधि' की परिसंपत्तियों का विवरण इस प्रकार था

एसोशिएटिड जनरल्स लखनऊ में 10 रु प्रति शेयर की दर पर 87 781 साधारण शेयर (अंकित मूल्य)	रु 8 77 810 00
एसोशिएटिड जनरल्स लि में 100 रु० प्रति शेयर की दर से 6 152 अधिमानी शेयर (अंकित मूल्य)	रु 6 15 200 00
एसोशिएटिड जनरल्स लि में 1 000 रु० प्रति ऋण-पत्र की दर से 354 ऋण-पत्र (अंकित मूल्य)	रु 3 54 000 00
बैंक में शेष	रु 5 65 649 00
हाथ में रोकड आदि	रु 13 928 81
एसोशिएटिड जनरल्स लि से वसूली योग्य ऋण पत्रों पर ब्याज	रु 1 12 780 00
योग	रु 25 39 367 95

तब से लेकर अब तक कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ है। हां इस बीच

दिल्ली म नेशनन हैराल्ड' की इमारत पर नक्द रकम खर्च की गयी है।

30 सितबर 1963 को एसोशिएटिड जनल्स की पूजी स्थिति इस प्रकार थी कपनी म टस्ट के स्टाक और शेयर 18,47,010 रुपये के थे और जनता के स्टाक और शेयर थे, 4,87,450 रुपये के।

हालाकि मैंने नेहरूजी से 'नेशनल हैराल्ड' और सहयोगी पत्रो के मामला म सीधी दिलचस्पी लेने की अनुमति नही ली थी, नेकिन मैं उ ह इससे सबधित हर बात स अवगत कराता रहा। वैसे अनौपचारिक दिलचस्पी लने की अनुमति मुझे नेहरूजी से मिल गयी थी। 1957 के अत म मैंने इस विषय म उन्हे अतिम रिपोट दी थी और उसम उन्ह सूचित कर दिया था कि आग से मैं इस सस्थान के कामा म और रुचि नही ले सकूगा। उन्होने मुझे बुलाया और कहा 'तुमने इन पत्रा की आर्थिक स्थिति मजबूत करने के लिए बहुत कुछ किया है। लकिन यह स्थिति कितनी देर मजबूत रहेगी ? स्वतत्रता सघप के दौरान चलपति राव अच्छे पत्रकार रहे है, लेकिन न जाने क्या वे स्वतत्रता के बाद अपन को नयी स्थिति मे नही ढाल पाये हैं। उन्ह आर्थिक मामला की समझ कतई नही है। वे सवतामुखी सक्षम सपादक नही हैं। वे समझते हैं कि लबे-लबे और भारी भरकम सपादकीय लिखने स ही अच्छा समाचारपत्र तयार हो जाता है। फिर उनके सपादकीय पढत ही कितने लोग हैं! नेहरूजी ने आगे कहा था चलपति राव के सपादन म समाचारपत्र का सकुलेशन तो बढन से रहा। रोज दफ्तर मे मेरे सामने शाम को पूरा का-पूरा नेशनल हैराल्ड' और भारत मे छपने वाले दूसरे समाचारपत्रा की कतरन रखी जाती हैं। मैंने पिछले कई बरसो से नेशनल हैराल्ड' पढना ही बद कर दिया है। अगर नेशनल हैराल्ड और उसके सहयोगी पत्र बद भी हो जायें तो मेरी आख म आसू तक न टपकेगा। जिस तरह भारी सरकारी अनुदानो पर पलने वाले खादी और ग्रामोद्योग आयोग से मुझे चिढ है उसी तरह मैं अपन अस्तित्व के लिए निजी प्रयासो स अपने पावो पर न खड होन वाले समाचारपत्रो का भी विरोधी हूँ।'

मुझे न्यू स्टेटसमन के जाने माने सपादक किंग्सले मार्टिन से लदन और नयी दिल्ली म हुई अपनी मुलाकातें याद आती हैं। उनका दृढ विश्वास था कि कोई भी समाचारपत्र या पत्रिका चलाने मे 75 प्रतिशत व्यावसायिकता और 25 प्रतिशत पत्रकारिता की आवश्यकता होती है। बस यही गुर न सीखन म चलपति राव सफल रहे हैं!

19

नेहरूजी और समाचारपत्र

सरकार म आने से पहले नहरूजी ने नेशनल हैराल्ड' के लिए बहुत-से सम्पादकीय और दिगर लख लिख थे—अधिकाश अपने हाथ से। वे अब राष्ट्रीय अभिलेखागार म हैं। उनकी फोटो प्रतियाँ नेशनल हैराल्ड क पास है।

सरदार पटेल मौलाना आज़ाद राजाजी और पतजी के अपन-अपने प्रिय पत्रकार थे लेकिन नेहरूजी ने कभी भी किसा खास पत्रकार को पालना ठीक नही समझा।

नेहरूजी भारत म हिन्दु को सबसे अच्छा समाचारपत्र और उसके सवाददाताओ को सबसे अच्छे सवाददाता मानते थे लेकिन उनकी दृष्टि मे हिन्दु' आर्थिक नीतियो के मामले म कुछ अनुदारवादी था। इसके बावजूद वे हर शाम हिन्दु को ही माँगते थे।

नहरूजी की निगाह म पाँचवें दशक के मध्य से देश म सबस अधिक प्रभावशाली पत्रकार एस मुलगावकर थ। बहुत से मौको पर मुलगावकर ने नेहरूजी की नीतियो की आलोचना की थी। लेकिन चीनी आक्रमण के तुरत बाद जब उन्होंने देश और विदेश म प्रचार-कार्यों को नया रूप देना चाहा तो उन्ह सबस पहल मुलगावकर का ही खयाल आया। मुलगावकर ने इस काम को सभालने के लिए कुछ उचित शर्तें रखी ताकि सरकार म उनका काय उद्देश्यपूर्ण और प्रभावकारी हो सके। उस समय के सरकारी ढाँचे म प्रधानमत्री इन शर्तों को पूरा नही कर सकते थ। इसलिए यह प्रस्ताव रद्द हो गया।

1952 म नेहरूजी किसी ऐसे प्रमुख व्यक्ति को सूचना और प्रसारण मत्री बनाना चाहते थ जिस पत्रकारिता का अनुभव हो। उन्होने बी शिव राव को राज्य-मत्री के रूप म अपनी मत्रि-परिषद म शामिल होने का निमन्त्रण दिया जिन्ह सूचना और प्रसारण मत्रालय स्वतन्त्र रूप से चलाना था। शिव राव ने

एन गोपालस्वामी आयंगर के माध्यम से मन्त्रिमंडल-स्तर का पद मांगा। नेहरूजी नाराज हो गये और उन्होंने इस विचार को ही त्यागकर उनके स्थान पर बी वी केसकर को नियुक्त कर दिया।

नेहरूजी को सिर्फ एक पत्रकार से चिढ़ थी। वह पत्रकार थे, दुर्गादास। काफी लम्बे अरसे तक स्वतन्त्र पत्रकार रहने के बाद वे 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के विशेष संवाददाता बन गये और बाद में उसके संपादक। नेहरूजी ने सुन रखा था कि जब वे एसोशिएटिड प्रेस आफ इंडिया (रायटर से अनुबद्ध) में थे तो गृह विभाग के खुफिया महकमे से सम्बद्ध रहे थे। दुर्गादास सरदार पटेल, मौलाना आजाद और पंतजी के प्रिय पत्रकार थे। उन्होंने उत्तर प्रदेश से चुनकर संविधान-सभा में आने की कोशिश भी की थी। पंतजी ने उनका नाम प्रस्तावित किया था, लेकिन नेहरूजी ने उसे फेहरिस्त में से काट दिया। तभी से दुर्गादास का रवैया नेहरू के प्रति बड़ा तीखा हो गया। वे इंसाफ के छद्म नाम से नेहरूजी और उनकी बेटी के बारे में अनाप शनाप लिखने लगे। इस तरह के लेखन का उद्देश्य चाट पहुँचाने के अलावा और कुछ नहीं था। एक दिन नेहरूजी ने दुर्गादास को बुलाया और बड़ी खरी-खोटी सुनायी। बाद में नेहरूजी ने दुर्गादास से जो कुछ कहा था मुझे बताया। उन्होंने कहा था 'तुम्हारे जैसा कमीन और बदतर इंसान मैंने आज तक नहीं देखा।" आमतौर पर नेहरूजी इस तरह के कठोर शब्द नहीं बोलते थे। दुर्गादास कुछ अरसे के लिए शांत हो गये, जैसे किसी कुत्ते की पूछ बांस की नली में डाल दी गयी हो। लेकिन जब जरा खुमार उतरा तो दुर्गादास फिर अपने उसी पुराने ढर्रे पर आ गये। एक दिन नेहरूजी की निगाह एक बहुत ही गंदे लेख पर पड़ी और उन्होंने मुझसे कहा, 'घनश्यामदास बिड़ला से जरा पूछो तो कि इस तरह के लेखन में क्या उनके अपने विचार तो नहीं झलकते?' मैंने जी डी बिड़ला के सामने नेहरूजी का यही प्रश्न दोहराया तो उन्होंने कहा कि वे हिन्दुस्तान टाइम्स के संपादन में हस्तक्षेप नहीं करते और फिर उन्होंने कहा वैसे मैं दुर्गादास के साप्ताहिक स्तंभ इंसाफ पर बराबर नजर रखे हुए हूँ, जो अश्लील पत्रकारिता को छू रहा है। मैंने इसके बारे में उनसे बात भी की है और मैं आज फिर अंतिम चेतावनी देते हुए उनसे बात करूँगा। दरअसल मैंने दुर्गादास से पिंड छुड़ाने का फ़ैसला कुछ अरसा पहले कर लिया था। तभी मैं मुलगांवकर को ले आया हूँ।'

अगले दिन ही दुर्गादास अपने सरपरस्त मौलाना आजाद के पास जा पहुँचे। मौलाना ने जी डी बिड़ला से बात की, जिन्होंने कहा कि दुर्गादास के बारे में मैंने उनसे शिकायत की है और वे मुझी से बात करें। मौलाना जानते थे कि वे मुझसे पार नहीं पायेंगे। इसलिए उन्होंने प्रधानमंत्री से शिकायत की, लेकिन प्रधानमंत्री चुप रहे। शीघ्र ही दुर्गादास की जगह मुलगांवकर को संपादक बना दिया गया। इस तरह 'इंसाफ' अपनी आयी मौत मर गया लेकिन उसकी राख में से एक साप्ताहिक समाचारपत्र 'इंफा' का जन्म हुआ।

नेहरूजी के समय में ताक झाँक पत्रकारिता का ज्यादा चलन न था लेकिन मौजूदा दौर में यह बड़ी तेजी से फल-फूल रही लगती है। इसकी अनूठी झलक उस व्यक्ति में मिलती है जिसने हाल ही में आपातकाल पर एक पुस्तक प्रकाशित करायी है। मेरे एक मित्र ने इसकी एक प्रति मेरे पास भेजी। इस पुस्तक में उसने मुझे नेहरूजी का स्टेनोग्राफर लिखा है। मैंने उससे पत्र लिखकर पूछा कि उसे यह कमाल की खबर कहाँ से हाथ लगी है। उसने पत्र का कोई उत्तर न दिया। दरअसल 'ताक झाँक-पत्रकारिता' से मामूली शिष्टाचार की उम्मीद रखने की गलती

मेरी ही थी। मैंने पुस्तक पढ़ने की ठानी। यह बड़ी ही गलत किस्म की पुस्तक है जिसमें अनगिनत झूठ आधे झूठ इशारेबाजी और बकवासबाजी को दुर्भावना की चाशनी चढ़ाकर कुछ पन्नों में ठूस दिया गया है। इस तरह की अश्लील पत्रकारिता का नमूना मुझे कहीं कभी भी देखने को नहीं मिला। साफ तौर पर उत्तरी भारत में चल रही 'नफरत की हवा' को भुनाने के लिए ही यह किताब लिखी गयी है। रात देर में किताब खत्म हुई तो बिस्तर पर लटते समय वह मेरे हाथ से फर्श पर गिर पड़ी। अगले दिन सुबह मेरी मेहतरानी ने उसे फर्श से उठाया और मुझसे पूछने लगी 'साहब क्या मैं इसे अपने चूल्हे के लिए ले जाऊं?' मेरा कहने को जी हुआ 'हाँ और यह तीस रुपये और लो। अपने चूल्हे के लिए एक और खरीद लेना।' उस समय मेरा अन्दाज समुअल जान्सन जैसा था जिन्होंने एक पादरी को दफनाने के लिए एक क्राउन चन्दा मांगने वाले से कहा था 'यह लो दो क्राउन, दो पादरियों को दफना देना।'

स्वाधीनता के शुरू के वर्षों में रामकृष्ण डालमिया ने अपने पत्र 'टाइम्स आफ इंडिया' और 'इलस्ट्रेटिड वीकली आफ इंडिया' का सहारा लेकर अपनी नन्ही सी जान से सरकार के साथ जोरआजमाईश की कोशिश की थी। उन्होंने पवित्र गौओं और पूजनीय बंदरों को बीच में घसीटकर बड़े ही पुरातनपंथी ढंग से अकेले नेहरूजी पर वार किये थे। नेहरूजी का नाराज होना स्वाभाविक था लेकिन वे किसी तरह की बदले की कारवाई नहीं करना चाहते थे। उन्होंने मुझसे 'टाइम्स आफ इंडिया' और 'इलस्ट्रेटिड वीकली' को चंदा भेजने से मना कर दिया क्योंकि वे कूड़ा अखबारों की आर्थिक सहायता नहीं करना चाहते थे। लेकिन मैंने पत्र सूचना कार्यालय से 'टाइम्स आफ इंडिया' और 'इलस्ट्रेटिड वीकली' में छपने वाली अपमानजनक खबरों और लेखों की कतरनें भेजने को कह दिया। पत्र-सूचना कार्यालय ने कुछ नहीं भेजा। डालमियाजी का गलत अभियान असफल हो गया। लेकिन 'टाइम्स आफ इंडिया' और 'इलस्ट्रेटिड वीकली' प्रधानमंत्री के निवास में फिर कभी प्रवेश न पा सके।

डालमियाजी के अभियान के दिनों की ही बात है। 'ब्लिट्ज' ने अपने मुख पृष्ठ पर इन्दिरा के विरुद्ध एक अपमानजनक समाचार मोटी सुर्खियों के साथ छापा, जिसमें आरोप लगाया गया कि इन्दिरा ने किसी व्यापारी से बहुत सारी कीमती साड़ियां ली हैं। नेहरूजी ने कैलाशनाथ काटजू से सलाह ली और 'ब्लिट्ज' के संपादक को नोटिस भेजा कि या तो वे मुखपृष्ठ पर सुर्खियों के साथ क्षमायाचना छापें वरना कानूनी कारवाई के लिए तैयार हो जायं। संपादक ने बहादुरी दिखाने के बजाय समझदारी से काम लिया और नेहरूजी की धमकी का पालन किया। 'ब्लिट्ज' ने फिर कभी ऐसी हरकत नहीं की।

एन्यूरिन बेवन जब पहली बार भारत आये तो वे राजकुमारी अमृतकौर के निवास पर ठहरे। वहां फ्रैंक मोरेस का लिखा एक लेख उनके हाथ पड़ गया, जिसमें परमाणु ऊर्जा विभाग बनाने के लिए नेहरूजी को आड़े हाथों लिया गया था और इस विभाग को 'सफेद हाथी' बताया गया था। बेवन का कहना था 'यह आदमी आपके यहां के उच्चकोटि के पत्रकारों में गिना जाता है।' मैंने कहा, 'कुछ अरसे से इन पर शैतान का साया आ गया है गोवा का भूत इनके सिर चढ़ गया है और परमाणु ऊर्जा आयोग इनकी नयी चिढ़ है। वे अपनी नाक की सीध में ही देख सकते हैं।' बेवन ने बताया कि उन्हें भी अपने यहां राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा की योजना पारित कराने में समाचारपत्रों के कड़े विरोध का सामना करना पड़ा

था। उन्होंने कहा, 'जो राजनीतिज्ञ जनता से जुड़े होते हैं उन्हें समाचारपत्रों के विष-वमन से परेशान होने की आवश्यकता नहीं। ईश्वर ने सारी बुद्धिमानी समाचारपत्रों के हवाले नहीं कर दी है। नेहरूजी भारत में विज्ञान और टक्नोलाजी को बड़े स्तर पर प्रोत्साहन देकर महानतम कार्य कर रहे हैं। इसका लाभ आपको आर्थिक विकास और सामाजिक परिवर्तन के रूप में भविष्य में मिलेगा।'

नेहरूजी को समाचारपत्रों के इस बढ़े चढ़े दावे की पोल का पता था कि वे जनमत को अभिव्यक्ति देते हैं। जब हैरी ट्रूमैन 1948 में अमरीका के राष्ट्रपति पद के लिए चुनाव में खड़े हुए थे तो वहां के सारे समाचारपत्र उनके विरुद्ध थे। उनका दावा था कि वे सही अर्थों में जनमत को अभिव्यक्ति दे रहे हैं और वे सब रिपब्लिकन पार्टी के प्रत्याशी डेवी का समर्थन दे रहे थे। ट्रूमैन ने सबको आश्चर्यचकित कर दिया और वे चुनाव जीतकर संयुक्त राज्य संघ (अमरीका) के महान नयकाय राष्ट्रपति बन गये।

3 अक्तूबर 1938 को म्यूनिख-समझौते पर लंदन के 'टाइम्स' का संपादकीय नेहरूजी को समाचार-पत्रों की 'बुद्धिमत्ता' और 'दूरदर्शिता' का निरंतर स्मरण कराता रहा। संपादकीय इस प्रकार था

मि. चैंबरलेन को जितनी वाहवाही मिली है और जिस वाहवाही में विश्व भर में वाहवाही आकर शामिल हो रही है, उस जन निर्णय को व्यक्त करती है जो न तो राजनीतिक लोग बदल सकते हैं और न ही इतिहासकार। मिस्टर चैंबरलेन की जोखिम भरी कूटनीति से जो बुनियादी सचाई सामने आयी है वह यह है कि एकदलवादी राज्य तक में अंतिम हथियार के रूप में दल को जनता प्रभावित करने से पीछे नहीं हटेगी। इस सचाई का सहारा लेकर सार्वभौमिक विनाश को रोकने वाले व्यक्ति को इस बात से डरने की कोई जरूरत नहीं कि उसके अपने देश में दल की नुक्ताचीनी जनता की कृतज्ञता पर भारी पड़ेगी। लेकिन इस अनिवार्य प्रतिक्रिया के बावजूद स्थिति को पाछे ले जाने वाला कोई कदम नहीं उठाया जाना चाहिए। इस असहनीय तनाव में राहत के बाद निष्क्रियता के खोल में घुसना ठीक नहीं। संकट से निकली सीख सीधी-सादी और अत्यावश्यक है। अंतर्राष्ट्रीय तुष्टीकरण-नीति पर जोर शोर से चलना चाहिए। तुष्टीकरण न केवल शक्तिशाली, बल्कि शक्तिहीनों और उस राज्य का भी होना चाहिए, जिसने अपने को सबके कल्याण के लिए शक्तिहीन होने दिया है। चेकोस्लोवाकिया ने सभी की सहानुभूति का पात्र बनने का काम किया है। इस सूरत में पहला अन्तर्राष्ट्रीय जिम्मेदारी न केवल यह हो जाती है कि उसकी संकुचित सीमाओं की गारंटी दी जाय बल्कि जबरन उपनिवेश बनाये जाने से उत्पन्न नयी समस्याओं को हल करने में उसकी सहायता की जाये। जहां तक अपेक्षाकृत शक्तिशाली राष्ट्रों का संबंध है उनके लिए आवश्यक तुष्टीकरण का क्षेत्र खुला है।

उस समय लन्दन के 'टाइम्स' के संपादक जियोफ्री डासन थे जो बदनाम क्लाइवेडन गिरोह के सदस्य थे। इस गिरोह के सदस्य लॉर्ड एस्टर के निवास पर मिला करते थे। क्लाइवेडन गिरोह तानाशाह हिटलर और मुसोलिनी से समझौते का प्रबल समर्थक था। क्लाइवेडन में सामाजिक मेल जोल की अक्सर होने वाली बैठकें सारे यूरोप की दो खूबसूरत लड़कियों की उपस्थिति में और जानदार हो जाती थीं। वे थीं लेडी रावेनडेल और लेडी एलेक्जेंड्रा मेटकाफ। क्लाइवेडन गिरोह विन्स्टन चर्चिल का कटु आलोचक था।

मेरी ही थी। मैंने पुस्तक पढने की ठानी। यह बडी ही गलत किस्म की पुस्तक है जिसम अनगिनत झूठ आधे झूठ इशारेबाजी और बकवासबाज़ी का दुर्भावना की चाशनी चढाकर कुछ पन्नो म ठूस दिया गया है। इस तरह की अश्लील पत्रकारिता का नमूना मुझे कही कभी भी देखने को नही मिला। साफ तौर पर उत्तरी भारत मे चल रही नफरत की हवा' को भुनाने के लिए ही यह किताब लिखी गयी है। रात देर म किताब खत्म हुई तो बिस्तर पर लटत समय वह मेर हाथ स फश पर गिर पडी। अगल दिन सुबह मरी मेहतरानी ने उसे फश से उठाया और मुझम पूछने लगी साहब क्या मैं इसे अपने चूल्हे के लिए ले जाऊ?' मेरा कहने को जी हुआ हाँ और यह तीस रुपये और लो। अपने चूल्हे के लिए एक और खरीद लेना। उस समय मेरा अन्दाज सैमुअल जानसन जसा था जिन्होने एक पादरी को दफनाने के लिए एक क्राउन चदा मागने वाले से कहा था यह लो दो क्राउन, दो पादरियो को दफना देना।

स्वाधीनता के शुरू के वर्षों म रामकृष्ण डालमिया ने अपन पत्र टाइम्स आफ इडिया और इलस्ट्रेटिड वीक्ली आफ इडिया का सहारा लेकर अपनी नन्हा-सी जान से सरकार के साथ जोरआजमाईश की कोशिश की थी। उन्होन पवित्र गौओ और पूजनीय बदरो को बीच म घसीटकर बन्ने ही पुरातनपथी ढग से अक्सर नेहरूजी पर वार किये थे। नेहरूजी का नाराज़ होना स्वाभाविक था लेकिन वे किसी तरह की बदले की कारवाई नही करना चाहते थे। उन्होन मुझसे टाइम्स आफ इडिया' और इलस्ट्रेटिड वीक्ली को चदा भजने से मना कर दिया क्योकि वे कूडा अखबारो की आर्थिक सहायता नही करना चाहते थे। लकिन मैंने पत्र सूचना कार्यालय से टाइम्स आफ इडिया और इलस्ट्रेटिड वीकली म छपने वाली अपमानजनक खबरो और लेखो की कतरनें भेजने को कह दिया। पत्र-सूचना कार्यालय ने कुछ नही भजा। डालमियाजी का गलत अभियान असफल हो गया। लकिन टाइम्स आफ इडिया और इलस्ट्रेटिड वीक्ली प्रधानमत्री के निवास मे फिर कभी प्रवेश न पा सके।

डालमियाजी के अभियान के दिनो की ही बात है। ब्लिटज' ने अपन मुख पृष्ठ पर इन्दिरा के विरुद्ध एक अपमानजनक समाचार लेख सुर्खियो के साथ छापा जिसमे आरोप लगाया गया कि इन्दिरा ने किसी व्यापारी स बहुत सारी कीमती साडिया ली है। नेहरूजी न कैलाशनाथ काटजू से सलाह ली और ब्लिटज़ के सपादक को नोटिस भेजा कि या तो व मुखपष्ठ पर सुर्खियो के साथ क्षमायाचना छापें वरना कानूनी कारवाई के लिए तयार हो जायें। सपादक ने बहादुरी दिखाने के बजाय समझदारी से काम लिया और नेहरूजी की धमकी का पालन किया। 'ब्लिटज़ ने फिर कभी ऐसी हरकत नही की।

एन्यूरिन बेवन जब पहली बार भारत आये तो वे राजकुमारी अमृतकौर के निवास पर ठहरे। वहा फ्रक मोरेस का लिखा एक लख उनके हाथो पड गया जिसमे परमाणु ऊर्जा विभाग बनाने के लिए नेहरूजी को आडे हाथो लिया गया था और इस विभाग को सफेद हाथी बताया गया था। बेवन का जुमना था यह आदमी आपके यहा के उच्चकोटि के पत्रकारो म गिना जाता है। मैंने कहा कुछ अरसे से इन पर शतान का साया आ गया है गोवा का भूत इनके सिर चढ गया है और परमाणु ऊर्जा आयोग इनकी नयी चिढ है। वे अपनी नाक की सीध म ही देख सकते हैं। बेवन ने बताया कि उन्हे भी अपन यहाँ राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा की योजना पारित कराने म समाचारपत्रो के कड विरोध का सामना करना पडा

नेहरूजी का अमरीका का पहला दौरा अमरीकी जनता पर अनुकूल प्रभाव डालने की दृष्टि से असफल रहा। इसके लिए बडी हद तक कुछ अपरिपक्व उजडड और कभी अमरीकी व्यापारी जिम्मेदार थे। न्यूयार्क के कुछ बडे अमरीकी व्यापारियो ने डिनर आयोजित किया था और वहा स्वागत भाषण म उनमे से एक व्यापारी ने घोषित किया 'इस मेज के गिर्द 100 करोड डालर बैठे है।' एक और मौके पर नेहरूजी को जताया गया कि जनरल मोटर्स का बजट भारत सरकार के बजट से बडा है। इस तरह की सच्चाईया' नेहरूजी जसे सुसस्कृत व्यक्ति के कानो को न भायी।

अमरीका से लौटने के कुछ दिना बाद एक दिन सुबह मैं नेहरूजी के साथ नाश्ता कर रहा था, क्योकि उस दिन वे प्रधानमन्त्री निवास म अकेले थे। अचानक व बोल उठे 'अमरीकी लोग समझते है कि वे देशो और महाद्वीपो को खरीद सकते हैं।' मैंने उनसे पूछा 'क्या आप न्यूयार्क के कुछ असभ्य व्यापारियो के साथ अपने छोटे से अनुभव के आधार पर सारे राष्ट्र को नही आक रहे है ? मेरा ख्याल है कि ज्यादातर अमरीकी लोग उदार और खुले दिल के होते हैं। आपका यह मूल्याकन उस औसत अमरीकी टूरिस्ट से कहीं बेहतर है जो हमारे विशाल देश म दो हफ्ते घूमने के बाद एक किताब लिख मारता है। नेहरूजी मेरी बातें ध्यान से सुन रहे थे। फिर उन्होने सिगरेट सुलगायी और एक सिगरेट मुझे देने लगे। लेकिन मैं उनके सामने कभी सिगरट नही पीता था।

नेहरूजी आमतौर पर सूअर का नमक लगा, सुखाया हुआ और ताजा गोश्त नहीं खाते थे। डेनमार्क का नमक लगा सूअर का गोश्त बहुत मशहूर है क्योकि वहाँ सूअरो को सूखा दूध चराया जाता है। नेहरूजी ने भी इसके बारे मे सुन रखा था। जब हम कोपनहेगन म थे तो नेहरूजी ने मुझसे नाश्ते म नमक लगा सूअर का गोश्त और अडे मँगाने को कहा।

जापान के दौरे पर नेहरूजी को पता लगा कि ओसाका म तरह सूअरो का गोश्त बहुत शौक से खाया जाता है। ओसाका म पहुँचने पर उन्होने इसी गोश्त का आर्डर दिया। लेकिन उस दिन यह गोश्त न मिल सका। नेहरूजी को कुछ निराशा हुई।

जापान म एक ओयस्टर फार्म देखने गये तो जापान के विदेश-मन्त्री ने तेज किस्म की सास के साथ ताजा ओयस्टर नेहरूजी को जबरन खिलाये। काफी जोर डालने पर ही वे खाने को तयार हुए थे।

जब हम कार म थे तो मैंने नेहरूजी को बताया कि लगभग पिचहत्तर बरस पहले जापानी लोग गोमास नही खाते थे। और अब उनका दावा है कि कोबे का गोमास दुनिया भर म सबसे अच्छा है। मैंने उनसे पूछा डिनर म मँगाएँ ? उन्होने कहा, 'बकवास बद करो।' वे जानते थे कि मुझे पता है कि दुनिया के किसी भी कोने म उन्होने गोमास कभी नही खाया।

जापान के सफेद बालो वाले विदेश मन्त्री फ्यूजियामा ने विशिष्ट जापानी ढग से एक बड रेस्तोरां म छोटी-सी डिनर-पार्टी का आयोजन किया जिसमे गीशा लडकियाँ परिचारिकाएँ थी। पार्टी म केवल हम चार व्यक्ति ही थे—नेहरूजी फ्यूजियामा महा-सचिव एन आर पिल्लै और मैं। हम गद्दे बिछे फश पर चटाइयो पर बैठे हुए थे और हमम से हरेक के पीछे घुटनो के बल गीशा लडकी बैठी थी। नेहरूजी और मैं एक तरफ बैठे थे। रिवाज यही है कि स्त्रियाँ गीशा पार्टियो म नही आमन्त्रित की जाती। गनीमत यही रही कि इन्दिरा वहाँ नही थी।

20

परिवेश के प्रति नेहरूजी की सवेदनशीलता

नेहरूजी न मुझे एक वार बताया था कि उन्हे जमन भापा का कामचलाऊ ज्ञान था और वह कसे उसे खा बठे। जब वे सितबर 1935 मे बाडेनवीलर म अपनी बीमार पत्नी को देखन जमनी गय तो हिटलर दो वप बाद ही रीश पर अधिकार करने वाला था। उस समय वहा की स्थितियाँ देखकर उन्हे इतना वडा धक्का लगा कि वे जमन भापा पूरी तरह भूल गय। कोशिश के बावजूद उनके मुह स जमन भापा का एक शब्द तक न निकला। वह ज्ञान उन्हे फिर कभी प्राप्त न हो सका।

अक्तूबर 1948 म जब हम अमरीका गय तो मैंने स्टेट एक्सप्रेस 555 सिगरेटो के कतन पक्टि अपन साथ ले लिय जो नेहरूजी के पूरे दौरे के लिए काफी थ। मुझ पता था कि भुन हुए तबाकू वाली अमरीकी सिगरेटें उनके लिए ज्यादा तज रहगी। व्हाइट हाउस म मैंन उनके कमरे स सारी सिगरेटें हटा दी और उनकी जगह स्टेट एक्सप्रेस सिगरटें रख दी। मुझ ऐसा करत देख वे नाराज हो उठ। मुझस पूछने लग तुम्ह पता नही कि मैं जहाँ जाता हू वहा मिलने वाली चीजें ही इस्तेमाल करना मुझे पसद है ? मैंन उत्तर दिया, ठीक है आप अमरीकी सिगरट पीकर देख लें और जसा देश वसा भेप बना लें। मैंने उन्हे चस्टरफील्ड सिगरेट दी जो अमरीकी सिगरेटो म सबस हलकी होती है। उन्होंन वह मुझसे झपट ली और सुलगाकर पीने लगे। दो कश लेने के बाद ही जोर जोर स खासने लग। मैंन कहा फेंक दीजिए। मैंने भी कई बरस अमरीकी सिगरटें पी हैं और मुझे पता है कि वह कितनी तज होती हैं। इस तरह के दौर पर आपको लगातार बोलना है और इसलिए जरूरी है कि आप अपना गला बचाकर रखें।' व मरी तरफ देखकर मुस्कराय। बहुत स मामलों म उनकी हरकतें बच्चा की-सी होती थीं और कभी-कभी उन्हें बच्चा मानकर व्यवहार करना पडता था।

प्रबंध किया जा रहा है और इससे वहाँ सत्रास की स्थिति पैदा हो गयी है। उनका परिवार विशुद्ध निरामिषभोजी है और वे इस खयाल से विक्षुब्ध थे। बड़ी हिमाकत यह हुई कि डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट साहब ने चार मुर्गे वहीं काट कर पकान के लिए भेज दिये। परिवार की बड़ी महिला इसके बारे में सोच सोचकर बहुत दुखी हो रही थी। सौभाग्य से मैं समय पर पहुँच गया और उन्हें मैंने इस मानसिक कष्ट से बचा लिया। मैंने उनसे शुद्ध मनपाली निरामिष भोजन देने के लिए कहा। बहुत ही बढ़िया खाना मिला, जो मैंने बड़े मजे से खाया।

4 नालाबार में वहाँ के राजा ने हमारी पार्टी को लंच दिया और इस मौके पर उनके यहाँ पहली बार गोश्त आया। साफ था कि उन्हें यह पसंद न था, लेकिन वे खाने के मामले में सोच ली गयी मेरी रुचिया को अरुचिकर नहीं बनाना चाहते थे। हस्बेमामूल भोजन का प्रबंध किसी होटल को सौंपा गया था और उन्होंने किस्म किस्म के गोश्त के सात खाने और फल परोसे, जिन्हें मैंने छुआ तक नहीं।

5 मैं निरामिषभोजी नहीं, लेकिन मैं किसी भी समय ज्यादा गोश्त नहीं खाता और अपने घर पर तो बिल्कुल नहीं। इसलिए मेरे भोजन में गोश्त पर ज्यादा जोर देने की जरूरत नहीं। दरअसल दौरों पर तो मैं गोश्त खाना ही नहीं चाहूँगा, बल्कि तब मुझे हल्के खाने की जरूरत महसूस होती है। सिर्फ यही हिदायत भेजना काफी रहेगा कि मैं सभी तरह के खाने खा लेता हूँ बशर्ते वे हल्के हों और उनमें मिर्च-मसाले न हों। वैसे मैं निरामिष भोजन ही पसंद करूँगा बशर्ते यह पार्टी या मेजबान को बुरा न लगे। हर सूरत में खाना हल्का ही रहे। मिर्च मसालों को छोड़कर जहाँ जैसा खाना मिले वहाँ वैसा खाना खाने में मुझे कोई एतराज नहीं।

6 सर्किट हाउसों में ठहरने पर मेरे लिए आमतौर पर बाहर प्रबंध कराना पड़ेगा। जिस तरह का खाना सुविधा से मिल सके मुझे दिया जा सकता है। इसमें यूरोपीय खाना भी हो सकता है। लेकिन खानों की गिनती कम रखी जाय और भोजन हल्का हो। होटलों द्वारा ऐसे लंबे चौड़े बंदोबस्त ठीक नहीं, जिनमें उनके अमले को दूर से आना पड़ता हो।

दिल्ली वापस लौटने पर नेहरूजी ने गुस्से से मुझसे पूछा "वह बेवकूफी से भरा सर्कुलर किसने भेजा था?" मैंने उत्तर दिया "कुछ अरसा पहले पद्मजा नायडू ने मुझसे सभी राजभवनों, मुख्य-मंत्रियों और मुख्य-सचिवों को एक सर्कुलर भेजने को कहा था जिसमें लिखना था कि आपको किस किस तरह के खाने और फलों के रस परोसे जाने चाहिए। उन्होंने तो फेहरिस्त में फालसे का रस भी शामिल कर रखा था जिसका नाम दक्षिण में कोई नहीं जानता। चूंकि मुझे इस तरह के मामलों में औरतों का हस्तक्षेप पसंद नहीं, इसलिए मैंने मना कर दिया और उनसे कह दिया कि इस विषय में तब तक कुछ न किया जाये जब तक आपकी मंजूरी न मिल जाये। वे उस समय चुप हो गयीं। लेकिन पूछताछ के बाद पता चला कि एक और निजी सचिव पर हावी होकर उन्होंने बिना मेरी जानकारी के वह सर्कुलर भिजवा दिया था जो उन्होंने अपने आप तैयार किया था।' साथ ही मैंने उन्हें यह भी बता दिया, "आपका नोट मिलते ही पुराना सर्कुलर रद्द करते हुए सभी संबंधित लोगों को नया सर्कुलर भेज दिया गया है

नेहरूजी ने कोई आनाकानी नही की और गीशा लडकी के हाथ से खाना खाते रहे। रिवाज के मुताबिक उ होने गाहे बगाहे उसे भी अपने हाथो से खिलाने म कोताही नही की। एन आर पिल्लै दुल्हन की तरह शरमा रहे थ। उन्होंने कितना चाहा कि मुझसे जगह बदल लें क्योकि नेहरूजी को गदन लवी करके मरी तरफ देखना पड रहा था। उन्होने दो बार मेरी तरफ देखा और मेरी हरकता पर मुस्कराये। नहरूजी न चावला की शराब लन से इकार कर दिया, लेकिन हरी चाय के कुछ घूट जरूर लिये। तब गीशा लडकियाँ सुशिक्षित और प्रशिक्षित परिचारिकाएं होती थी।

मैंने एक बार नेहरूजी स पूछा इस बारे म आपका क्या खयाल है कि अगर आप नेहरू न हाने तो शायद टारमिगन होना पसद करते।' नेहरूजी की जिज्ञासा जाग उठी और उन्होने मुझसे पूछा यह क्या होता है ?' मैंने उन्हे बताया सर्दिया म चट्टानी टारमिगन के पख और रोए टुडा और एल्पाइन की ढलानो पर रहने वाले इस जमीनी पक्षी को बर्फ की सफेदी म छुपा देत हैं। इसके कत्थई पख झड जाते हैं और उनकी जगह सफेद पख आ जाते हैं। सर्दियो म उसके पख सफेद-नुर्राक हो जाते हैं और बर्फ की सफेदी स मेल खाने लगते हैं। बसत म तापमान बदलने पर इसकी जिल्द कत्थई हान लगती है और फिर इसके पख गहरे कत्थई रग के हो जात हैं। सुनकर व हसन लग और उन्होने मुझस पूछा ऐसी बातें कहाँ स जुटा लते हो ?' मैंने उन्हे बताया मैं कमोबेश प्रकृति वैज्ञानिक हूँ और मुझे पशु-पक्षियो पेड पौधा और पहाडो समुद्रा पर लिखी पुस्तकें पढने का शौक है। इसके बाद मैंन उन्हे इन विषयो पर कुछ पुस्तकें दी। वे पुस्तको को बहुत सभाल कर रखत थ और पढने के बाद तुरत लौटा देत थे।

एक बार नेहरूजी से मरा कुछ झगडा हो गया हालांकि गलती मेरी नही थी। कालीकट म 27 दिसबर 1955 को उनके निजी सचिव के नाम उनका एक लबा सा नोट आया जिसकी एक प्रति उन्होंने मेरे पास भी भेजी। मैं उस नीचे उद्धत कर रहा हू

पता नही कि जहा जहा भी म अपने दौरा पर जाता हूँ वहा वहाँ किस तरह की हिदायत भेजी जाती हैं। जब भी मैं वहा खाने या किसी और चीज की नुक्ताचीनी करता हू तो मुझ बताया जाता है कि सारा प्रबध हिदायतो के अनुसार किया गया है। खाने म रलवे के रिफ्रेशमेंट रूम की तरह कई-कई तरह की खाने की चीजें मिलती है। कभी खाना अच्छा हाता है कभी खराब। लकिन मुख्य बात यह है कि मेरे खाने के लिए लबा चौडा इतजाम किया जाता है और किसी होटल या रेस्तराँ को यह इतजाम सौपा जाता है। आमतौर पर किसी शहर के बडे होटल स भारी साज-सामान के साथ आदमियो का हुजूम आता है और लबे चौडे खाने का बदोवस्त करता है।

1 लागा को बताया गया है कि मुझे यूरोपीय तरीके के खाने दिये जायें और उनम तरह तरह का मास होना जरूरी है। दरअसल मैं आम तौर पर आधा खाना ही खाता हूँ और उसम से भी मास की सभी चीजें छोड देता हू। मुझ न तो विशेष रूप स मास खाना पसद है और न ही यूरोपीय तरीके के खाने हालाकि अगर गोश्त अच्छा बना हो तो मुझे पसद आता है।

2 मैं जब कालीकट पहुचा और कृष्णमनन के निवास पर गया तो वहा देखा कि यूरोपीय तरीके स बने तरह-तरह के गोश्त परोसे जाने का

प्रबंध किया जा रहा है और इससे वहाँ सन्त्रास की स्थिति पैदा हो गयी है। उनका परिवार विशुद्ध निरामिषभोजी है और वे इस खयाल से विक्षुब्ध थे। बडी हिमाकत यह हुई कि डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट साहब ने चार मुर्गे वहीं काट कर पकाने के लिए भेज दिये। परिवार की बडी महिला इसके बारे में सोच सोचकर बहुत दुखी हो रही थी। सौभाग्य से मैं समय पर पहुँच गया और उन्हें मैंने इस मानसिक कष्ट से बचा लिया। मैंने उनसे शुद्ध मलयाली निरामिष भोजन देने के लिए कहा। बहुत ही बढिया खाना मिला, जो मैंने बडे मज़े से खाया।

4 नीलांबर में वहाँ के राजा ने हमारी पार्टी को लंच दिया और इस मौके पर उनके यहाँ पहली बार गोश्त आया। साफ था कि उन्हें यह पसंद न था, लेकिन वे खाने के मामले में सोच ली गयी मेरी रुचियों को अरुचिकर नहीं बनाना चाहते थे। हस्बमामूल भोजन का प्रबंध किसी होटल को सौंपा गया था और उन्होंने किस्म किस्म के गोश्त के सात खाने और फल परोसे जिन्हें मैंने छुआ तक नहीं।

5 मैं निरामिषभोजी नहीं, लेकिन मैं किसी भी समय ज्यादा गोश्त नहीं खाता और अपने घर पर तो बिल्कुल नहीं। इसलिए मेरे भोजन में गोश्त पर ज्यादा जोर देने की जरूरत नहीं। दरअसल दौरों पर तो मैं गोश्त खाना ही नहीं चाहूँगा बल्कि तब मुझे हल्के खाने की जरूरत महसूस होती है। सिर्फ यही हिदायत भेजना काफी रहेगा कि मैं सभी तरह के खाने खा लेता हूँ बशर्ते वे हल्के हों और उनमें मिर्च-मसाले न हों। वैसे मैं निरामिष भोजन ही पसंद करूँगा बशर्ते यह पार्टी या मेजबान को बुरा न लगे। हर सूरत में खाना हल्का ही रहे। मिर्च मसाला को छोडकर जहाँ जैसा खाना मिले वहाँ वैसा खाना खाने में मुझे कोई एतराज़ नहीं।

6 सर्किट हाउसों में ठहरने पर मेरे लिए आमतौर पर बाहर प्रबंध कराना पडेगा। जिस तरह का खाना सुविधा से मिल सके मुझे दिया जा सकता है। इसमें यूरोपीय खाना भी हो सकता है। लेकिन खानों की गिनती कम रखी जाय और भोजन हल्का हो। होटलों द्वारा ऐसे लंबे चौडे बंदोबस्त ठीक नहीं जिनमें उनके अमले को दूर से आना पडता हो।

दिल्ली वापस लौटने पर नेहरूजी ने गुस्से से मुझसे पूछा, "वह बेवकूफी से भरा सर्कुलर किसने भेजा था?" मैंने उत्तर दिया, "कुछ अरसा पहले पद्मजा नायडू ने मुझसे सभी राजभवनों, मुख्य-मंत्रियों और मुख्य-सचिवों को एक सर्कुलर भेजने को कहा था जिसमें लिखना था कि आपको किस किस तरह के खाने और फलों के रस परोसे जाने चाहिए। उन्होंने तो फेहरिस्त में फालसे का रस भी शामिल कर रखा था, जिसका नाम दक्षिण में कोई नहीं जानता। चूंकि मुझे इस तरह के मामलों में औरतों का हस्तक्षेप पसंद नहीं, इसलिए मैंने मना कर दिया और उनसे कह दिया कि इस विषय में तब तक कुछ न किया जाये जब तक आपकी मंजूरी न मिल जाये। वे उस समय चुप हो गयीं। लेकिन पूछताछ के बाद पता चला कि एक और निजी सचिव पर हावी होकर उन्होंने बिना मेरी जानकारी के वह सर्कुलर भिजवा दिया था जो उन्होंने अपने आप तैयार किया था। साथ ही मैंने उन्हें यह भी बता दिया, "आपका नोट मिलते ही पुराना सर्कुलर रद्द करते हुए सभी संबंधित लोगों को नया सर्कुलर भेज दिया गया है

और इसमें आपके नोट में दिये गये सभी सुझाव शामिल कर दिये हैं।" उन्होंने कहा ठीक है पदमजा को कुछ बातों की अच्छी जानकारी है। लेकिन इसका यह मतलब कतई नहीं कि वह यूरोपीय या हिंदुस्तानी खानों की पाक विशेषज्ञ है।

परिवेश के प्रति उनकी इसी संवेदनशीलता ने ही उनसे मास्को से विदाई के समय कुछ हद तक गलत किस्म का वक्तव्य दिलाया था। सोवियत यूनियन के दौरे पर उनका हर जगह बड़ा ही भव्य स्वागत हुआ था। विदाई के समय उन्होंने कहा था 'अपने दिल का एक हिस्सा मैं यहां छोड़कर जा रहा हूं।' उनकी इसी प्रवृत्ति ने चीन के दौरे की समाप्ति पर उन्हें इसी तरह का एक नारा देने पर मजबूर किया— हिन्दी चीनी भाई भाई।

चीन द्वारा तिब्बत पर कब्जा कर लेने के तुरंत बाद नेहरूजी और कृष्ण मेनन जनता से कहने लगे कि भारत और चीन पिछले 3 000 वर्षों से शांति से रहे हैं जिसका अर्थ यह होगा कि अंत में वही शाश्वत शांति कायम हो जायेगी। उन्हीं दिनों एक शाम संयोग से प्रधानमंत्री निवास में मेरे अध्ययन कक्ष में नेहरूजी और कृष्ण मेनन एक साथ मौजूद थे। मैंने उनसे कहा 'इतिहास के अपने अध्ययन से मैं इस अकाट्य निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि अतीत में जब जब भी चीन शक्तिशाली हुआ है उसने विस्तारवादी रुख अपनाया है।' यह सुनकर नेहरूजी ने त्यौरियां चढ़ायीं और कृष्ण मेनन की भी भौंहें तन गयीं। मैंने दृढ़ता से कहा 'आप लोग जीवित रहे तो अपने जीवन-काल में ही महसूस करेंगे कि आज चीन का रुख फिर से विस्तारवादी हो गया है।' इस बात को उन्होंने भारत पर विश्वासघाती चीनी हमले के बाद महसूस भी किया। तब नेहरूजी और मेनन जनता में वही बातें दोहराने लगे जो उन्हें मैंने अपने अध्ययन कक्ष के एकांत में बतायी थी।

नेहरूजी स्थितियों का सही अनुमान नहीं लगा पाते थे। भारत के विभाजन का निर्णय हो जाने के बाद उन्होंने 1947 में लाहौर का दौरा किया। मैं उस समय उनके साथ था। हम वहां दीवान रामलाल के घर में ठहरे। लाहौर में नेहरूजी ने एक प्रेस-कांफ्रेंस बुलायी और उसमें घोषणा की कि विभाजन हो जाने पर स्थितियां सुधर जायेंगी और दोनों विरोधी पक्ष अपने अपने क्षेत्र में शांति कायम रखना चाहेंगे। लेकिन अधिकांश पत्रकार यह बात स्वीकार नहीं कर पा रहे थे। उन्होंने पूछा 'आप किस आधार पर यह कहते हैं?' नेहरूजी ने कहा 'जनता में बिताये अपने चालीस वर्षों के आधार पर।' हम सभी जानते हैं कि बाद में क्या हुआ था।

अपने स्पेन के दौरे के बाद वे यूरोप में नम्बियार से मिले। नम्बियार ने नेहरूजी से पूछा कि स्पेन के गृहयुद्ध का अंत क्या होगा? नेहरूजी ने उत्तर दिया कि रिपब्लिकन जीत जायेंगे। फिर वे यह देखने के लिए चुप हो गये कि नम्बियार क्या कहते हैं। नम्बियार ने उन्हें बड़े ही स्पष्ट शब्दों में बताया 'इंग्लैंड यूरोप और अमरीका के सभी उदारवादियों और कृष्ण मेनन की तरह आप गलतफहमी में हैं। मेरा अनुमान है कि रिपब्लिकनों के जीतने की ज़रा-सी भी गुंजाइश नहीं है। फ्रैंको जीतेगा और होगा यह कि फ्रैंको स्पेन का शासक बन जायेगा।' यह अलग बात है कि मुझे यह खयाल पसंद नहीं। उनके इस अनुमान पर नेहरूजी नाराज ही नहीं हुए बल्कि गुस्से में आ गये। और हम सभी जानते हैं कि स्पेन में क्या हुआ था।

फेडरल रिपब्लिक आफ जर्मनी के भूतपूर्व चांसलर डा० कानराड आडेनौयर

व बार म विंस्टन चर्चिल की उक्ति थी कि व बिस्मार्क के बाद जमनी के सबसे वड राजनीतिज्ञ थे। उन्होंने अपने मेमॉयज—1955 59 ' की तीसरी जिल्द म भारत और नेहरू पर बीस पष्ठ लिखे हैं। बहुत-सी दूसरी बातो के अलावा उन्होंने इसम लिखा है

> हमारी पहली भेंट के दौरान नेहरू ने मुझ पर अच्छा प्रभाव छोडा। वह बडे ध्यान स मेरी बात सुनत थे। अपनी बात वह बडे शात और शिष्ट ढग से धीमी आवाज़ म कहत थे। उनकी चेष्टाएँ बडी सतुलित थी तथा उनका व्यवहार सयत और विनम्र था।

इन बीस पष्ठो के आखिरी हिस्से म आदेनौयर लिखते हैं

> नेहरू की यथार्थपरक दृष्टि न मुझे प्रभावित नही किया। मुझे लगा कि वह ऐसी हर बात मानने के लिए तैयार रहते हैं जो उनकी अपनी दुनिया की तस्वीर म फिट हो जाती है। इस तस्वीर मे हेर फेर करने के लिए नेहरू म जरा भी झुकाव नही दिखायी दिया।
>
> इसम सन्देह नही कि वह बहुत ही सुसस्कृत व्यक्ति हैं। वह शब्दो के प्रयोग और वाक्य रचने म बहुत स्पष्ट हैं। लेकिन राजनीति की गहरी समस्याओ की जटिलता का उन्होंने सही अनुमान नही लगाया। उनके सोचने के तरीके म ब्रिटिश और भारतीय दष्टिकोण का अजीब मेल मिलता है। इसी कारण वह राजनीति की वास्तविकताएँ नही समझ पात।

आदेनौयर न अपनी बात जमनी के एक पत्र 'औसेन पोलिटिक' (विदेशी मामले) के सपादक के एक लेख मे स उद्धरण देत हुए खत्म की। इसमे चीन की नीति म परिवतन पर नेहरूजी की निराशा का उल्लख किया गया था, क्योकि यह परिवतन नेहरूजी की प्रत्याशाओ के एकदम विपरीत था।

21

धन के प्रति नेहरूजी का रुख

फरवरी 1946 के शुरू म इलाहाबाद म जब मैं नेहरूजी क साथ काम करन लगा ता मुझ पता चला कि उनके वित्तीय मामला की देखभाल बबई की बच्छराज एड कपनी करती है जो गाधीजी क निकट सहयोगी और व्यापारी स्वर्गीय सेठ जमनालाल बजाज की प्राइवेट फम है। कुछ महीना बाद जब मैं उनके साथ बबई गया तो उ होन मुझस बच्छराज एड कपनी म जान और अपनी वित्तीय स्थिति की पडताल करन को कहा। कुछ समय बाद नहरूजी के कहने पर मैंने बच्छराज एड कपनी से उनकी सारी परिसपत्तिया निकाल ली। उन्ह अपने पिता स दाय म जो कुछ भी मिला और जा कुछ उनकी पुस्तका की रायल्टी मे स बचाया जा सका बस वही उनका परिसपत्तियो म शामिल था। वी के कृष्ण मेनन न शुरू से ही उनका पुस्तका की रायल्टी का मामला बडा गडबड कर रखा था। इस विषय म कृष्ण मेनन का अधिकार क्षेत्र ब्रिटेन ब्रिटिश साम्राज्य (भारत समेत) और यूरोप तक सीमित था। अमरीका और लेटिन अमरीका के लिए प्रकाशक अलग था।

2 सितबर 1946 को अतरिम सरकार म कार्यभार सभालते ही उनक पैतक निवास और निजी बक-खाते को छोडकर सारी परिसपत्तिया भारत का भेंट कर दी गयीं। उनका मूल्य उस समय डेढ लाख था।

जब डिस्कवरी आफ इडिया पुस्तक प्रकाशन के लिए तयार हो गयी तो भारत म उसक प्रकाशन-अधिकार कृष्ण मनन स लकर भारतीय प्रकाशक को द दिये गय। डिस्कवरी आफ इण्डिया की रायल्टी म उन्ह हर जगह स काफी अच्छी रकम मिली।

जब भी रायल्टी का पसा और फलस्वरूप बचत म धन बढन लगता था ता नहरूजी समय समय पर बडी रकम इन्दिरा क नाम कर दत थे और कभी कभी कमला

नेहरू मेमोरियल अस्पताल को उपहार के रूप म भी भेज देत थे। इसके अलावा पच्चीस-पच्चीस हजार रुपया अपन दोनो नातियो के नाम से राष्ट्रीय बचत पत्रो म लगा देत थे। मुझे दुख होता था कि नेहरूजी एस डी उपाध्याय और हरी के लिए कोई बन्दोबस्त नही करत, जिन्होने मामूली वेतन पर बरसो उनके पिता और उनकी सेवा की थी।

एक दिन केंद्रीय राजस्व बोर्ड के अध्यक्ष ए के राय ने बताया कि नेहरूजी सचिव सहायता की मद म अपनी रायल्टी का पद्रह प्रतिशत अपनी आय म से कटौती के रूप म दिखा सकत हैं और वे इस मद म पिछले पाच वर्षों का पैसा वापस ले सकत हैं जो काफी बडी रकम होगी। बाद म भी हर वर्ष वह यह कटौती दिखा सकत हैं।

उस समय नेहरूजी मशोबरा (शिमला) म छुट्टिया मना रहे थ। वापस आने पर उन्होने अपनी वसीयत का मसौदा मुझे दिखाया। उन्होने मुझे मसौदा पढने को और उस पर अपने विचार बताने को कहा। मैंने उसे पढा और मुझे फिर दुख हुआ कि उन्होने अपने दो वफादार कर्मचारियो उपाध्याय और हरी के लिए उसमे कोई व्यवस्था नही की थी।

अगले दिन दफ्तर जाते समय मैंने नेहरूजी को बताया कि वसीयत मैंने पढ ली है और मुझे उसकी भाषा बडी हृदयस्पर्शी लगी है। उन्होने मुझसे कहा कि मैं उसे टाइप करा लू। इस वसीयत पर हस्ताक्षर मेरी उपस्थिति म किये गये और कैलाशनाथ काटजू तथा विदेश मत्रालय के तत्कालीन महासचिव एन आर पिल्लै ने उस पर गवाह के रूप म हस्ताक्षर किये।

दो दिन बाद मैंने नेहरूजी को ए के राय से हुई बातचीत के बारे मे बताया और कहा कि रायल्टी की आय म से सचिव सहायता की मद म पिछले पाँच वर्षों की कटौती की रकम वापस मिल सकती है। मैंने उनसे कहा कि रकम की वापसी के सभी कागज मेरे पास तैयार है। बस उन्हे उन पर हस्ताक्षर करने है। सुनकर वे नाराज हो उठे और कहने लगे "मैं इस बेवकूफ की सलाह मानने को तैयार नही। मैंने सचिव-सहायता की मद पर कोई पैसा खर्च नही किया है। फिर मैं क्या रिफन्ड मागू ?" मैं अपनी बात पर अडा रहा और मैंने धीरे से उनसे कहा "मैं आपकी पुस्तको की रायल्टी से सबधित सभी काम करता हूँ और देय रकम न वापस लेने और अगले वर्षों म कटौतियाँ न करने का कोई कारण मुझे नजर नही आता।" फिर मैंने कागज उनके सामने रख दिये। वे कुछ देर चुप रहे और फिर कहने लगे "उस सूरत म मैं हस्ताक्षर कर देता हूँ।" और उन्होने चुपचाप हस्ताक्षर कर दिये।

जब आयकर विभाग से रकम की वापसी का बडा तगडा चेक आया तो मैं उसे नेहरूजी के पास ले गया और उनसे कहा कि मुझे पैसे की कोई जरूरत नही। मैंने कहा, "अपनी वचत म से आपने न तो अपनी वसीयत म और न ही किसी और जगह उपाध्याय और हरी के लिए कोई व्यवस्था की है जिसे देखकर मुझे दुख हुआ है। यह चेक उस कमी को पूरा करेगा। मैं बैक म एम्प्लायीज वेल्फेयर एकाउन्ट के नाम से एक अलग खाता खोलना चाहता हू। इसम से ज्यादा बडी रकम तो उपाध्याय और हरी को दे दें जो इसे सरकारी लघु बचत-पत्रो म लगा दें और बाकी की रकम आनद भवन के दूसरे नौकरो के लाभ के लिए रख दें। उन्होंने आपके यहाँ तब काम किया था जब आप उन्हे कुछ देने की स्थिति म नहीं थे। मैं चाहता हूँ कि पूरी जिन्दगी हर वर्ष आप ऐसा ही करते रहे।" सुनते

हुए वे सिर झुकाये सोच में डूबे अपने डेस्क की तरफ देख रहे थे। फिर उन्होंने सिर ऊपर उठाया। उनके होठों पर वही दिव्य मुस्कान थी। मैं उनके चेहरे से उनके मनोभाव पढ़ लेता था, जो दर्पण की तरह था। वे अपने मनोभाव कभी भी न छुपा पाते थे और कभी-कभी तो बिना कुछ बोले ही चेहरे से बहुत कुछ कह जाते थे।

सोवियत यूनियन में ख्रुश्चेव-युग की शुरुआत थी। राजदूत मेंशिकोव ने एक इंटरव्यू के दौरान नेहरूजी से रूसी भाषा में उनकी पुस्तकें छापने की अनुमति मांगी। नेहरूजी ने सहमति दे दी। बाद में उन्होंने मुझसे इसका जिक्र किया। सौभाग्य से ज्यादा देर नहीं हुई थी। मैंने विदेश-मन्त्रालय के महासचिव से सोवियत राजदूत को यह बताने के लिए कहा कि इस संबंध में कोई प्रस्ताव मास्को भेजने से पहले वे मुझसे बात करें। राजदूत तुरंत मुझसे मिलने आये। मैंने उन्हें बताया कि हम पुस्तक की बिक्री का पंद्रह प्रतिशत रायल्टी लेते रहे हैं और उन्हें रायल्टी *की रकम भारत में समय-समय पर हमारे माँगने पर रुपये में देनी पड़ेगी।* राजदूत महोदय नेहरूजी के प्रति सम्मान के रूप में यह सब-कुछ करने को सहमत हो गये। आमतौर पर सोवियत यूनियन रायल्टी की रकमों का भुगतान अपने देश से बाहर नहीं करता। संबंधित लेखक उस पैसे को सोवियत यूनियन में ही खर्च कर सकता है।

बाद में मैंने नेहरूजी को ताकीद कर दी कि अगर किसी और साम्यवादी देश का राजदूत इस तरह की अनुमति मांगे तो वे सहमति दे दें लेकिन बाकी की बात मुझसे करने को कह दें। मैंने उनसे कहा कि मैं अपनी शर्तों पर उनसे बातचीत करूंगा। इस तरह मुझे चीन और पूर्वी यूरोप के दूसरे देशों के राजदूतों से निपटना पड़ा। दरअसल कुछ वर्षों तक नेहरूजी को सारे पश्चिमी देशों की अपेक्षा साम्यवादी देशों से ज्यादा रायल्टी मिली। फलस्वरूप इंदिरा और कमला नेहरू अस्पताल को उपहार-स्वरूप दी जाने वाली रकम बढ़ती गयी और उपाध्याय हरी तथा आनन्द भवन के नौकरों को एम्पलायीज वेल्फेयर एकाउंट में से अच्छा पैसा मिलता रहा।

यहाँ उल्लेख किया जा सकता है कि इंदिरा के सरकार से निकल जाने के बाद अब उसका ज्यादातर गुजारा अपने पिता की लेखनी की कमाई से ही चलेगा। जब वह प्रधानमन्त्री थी तो अपने पिता से अपने को दो दर्जा ऊपर रखने की उसकी कोशिश को देखकर हंसी भी आती थी। और दुख भी होता था। बेचारी! मेरा खयाल है कि अधिकांश स्त्रियाँ बहुत अधिक भ्रम पाले रखती हैं।

1959 में प्रधानमन्त्री-कार्यालय से त्यागपत्र देने के बाद मैं उस वर्ष गर्मी के तीन महीनों के लिए मास्को और लंदन जा रहा था। नेहरूजी को पता था कि मेरे पास विदेशी मुद्रा नहीं है। उन्होंने बड़ी खुशी से मास्को में राजदूत के पी एस मेनन और लंदन में अपने साहित्य एजेंट को पत्र लिखे कि मुझे जितने पैसों की जरूरत हो या मैं जितने पैसे मांगू मुझे दे दिये जायें। इन दोनों पत्रों की प्रतियां उन्होंने मेरे पास भेज दी। मैंने उनकी इस कृपा पर आभार प्रकट किया और यह लिखकर भेजा मैंने *अभी तक आपसे कभी कोई पैसा नहीं लिया है।* मास्को और लंदन में मैं अपने मित्रों के साथ ठहरूंगा। चीजें खरीदने का मेरा कोई इरादा नहीं है। मेरी जरूरतें हजामत वगैरह जैसे खर्चों तक सीमित हैं जिन्हें मेरे मेजबान खुशी से वहन कर लेंगे। मैंने उनका प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया।

अपने प्रधानमन्त्री के कार्यकाल और उससे पहले भी नेहरूजी ने अच्छे उद्देश्य तक के लिए निजी रूप से कभी किसी से धन नहीं मांगा। वे किसी भी उद्देश्य के

लिए भेजा गया नक़द चदा लन इकार करत रहे। खेद है कि उनस आगे आनेवाले प्रधानमत्रियो ने इस मामल म उनका अनुसरण नही किया। वे जनता के नाम अपील जारी करन के तरीके से काम लेते थ। किसी राजनीतिक या जन-उद्देश्य क लिए वे मच पर थलियाँ भी स्वीकार कर लेते थे।

लेकिन एक बार वह अपनी लीक से हटे। सर स्टैफोर्ड क्रिप्स की मृत्यु के बा लन्दन म बनी एक कमटी ने नेहरूजी को क्रिप्स के स्मारक के लिए भारत से कुछ धन प्रतीकरूप म इकट्ठा करके भेजन का लिखा। काफी असमजस और सोच विचार के बाद नहरूजी न कुछ लोगो को पत्र लिखे। इनम हैदराबा के निज़ाम और नवानगर के जाम साहब भी थ। इनम छोटी-छोटी और अधिक-से-अधिक पाच हज़ार रुपय तक की रकम भेजन की माँग थी। इस तरह पाँच हज़ार पौंड इकट्ठे हुए और लदन की कमटी को भज दिये गय।

पहले चुनावो क शुरू म भोपाल के नवाब न विजयलक्ष्मी पडित के माध्यम स पचास हज़ार रुपये का चक बिना मँगाय भेजा। चैक वापस करन पर नवाब की भावनाओ को चोट पहुँचती। यह सोचकर नहरूजी न वह चैक लालबहादुर को सौंप दिया जिनके ज़िम्मे नेहरूजी और उनका अपना चुनाव प्रबध था।

1946 म पहल जब तक दिल्ली म शरणार्थी नही आये थे नेहरूजी अपनी जेब म लगभग दो सौ रुपय रखा करत थे। उसके बाद के दिनो मे यह पसा अक्सर उनकी जेब से काफूर की तरह उडन लगा। वे जिस किसी को कष्ट म देखते पैसा दे देत। बा म मुझसे और पसा माँगत। उनका रोज़ाना का यह रवैया हो गया जो एक आदमी की ह से बाहर था। मैंने उ ह यह रुपया देना यह कहकर रोक दिया कि जेब म पस लकर चलना उनके लिए उचित नही। नहरूजी न मुझसे कहा 'तब मैं पसा उधार ल लिया करूँगा।' और उ होन सुरक्षा-अधिकारियो स उधार लेकर शरणार्थियो को पैस देन शुरू किय। मैंने सार सुरक्षा-अमले को चेतावनी द दी कि व नेहरूजी को एक दिन म दस रुपय से ज़्यादा उधार न दें। साथ ही मैंन प्रधानमत्री क रिलीफ फड म से समय समय पर पसा निकालकर नेहरूजी के एक निजी सचिव के पास रखन का प्रबध कर दिया। यह हिन्दी भाषी अधिकारी हर दिन सुबह-सुबह नहरूजी के निवास पर उपस्थित हो जात थे। परेशान-हाल लोगो की पैसे से मदद करन की नेहरूजी की हिदायतो पर वे जहाँ के तहाँ अमल करते। इस तरह के लोगो को सहायता और मदद के लिए निजी सचिव के दफ्तर म भी भेज दिया जाता था। अत म उन अधिकारी महोदय को 'निजी सचिव (जनता)' कहा जाने लगा।

नहरूजी अपन ऊपर पसा खर्च करन म कजूसी की ह तक मितव्ययी थे। लेकिन उ होन श्रीमती सास ब्रुनर स प्रार्थनारत गाधीजी का चित्र पाच हज़ार रुपय म खरीदने म ज़रा सी भी हिचक न दिखायी। एन्यूरिन बेवन ने एक बार मुझ स कहा था कि किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व को इस कसौटी से कूता जा सकता है कि वह अपन ऊपर अपनी आय का कितना अश खर्च करता है। बेवन खद गरीब होते हुए भी मौका मिलने पर उभरने के लिए सघर्षरत कलाकारो स उनके चित्र खरीदत थे और लोगो को भेंट म देत थे।

पसे के मामल म नेहरूजी अपने हाथ न सानन का खास खयाल रखत थे, लकिन उ होने दूसरो को अपने हाथ सानन से कभी मना नहीं किया—चाहे वह पसा काग्रेस पार्टी के लिए उगाहा गया हो या ऐसे किसी उद्देश्य के लिए जिसम उनकी दिलचस्पी हो। इस विषय म और बातें अगले अध्याय म।

27 मई 1964 को जब नेहरूजी का देहावसान हुआ, व अपने पीछे इलाहाबाद का अपना पतृक मकान और अपने बक-खाते म बस इतना रुपया छोड गये कि उससे मामूली सा सपदा शुल्क अदा किया जा सके।

धन सबधी मामलों म नेहरूजी जनमत स बहुत डरत थे। सरदार पटेल एकदम उलट थे। एक उदाहरण एसा भी है जब नहरूजी अपने इस भय और घबराहट को मजाक की हद तक ले गय। मैं हँसने लगा। उन्होंने बडी गभीरता से पूछा, 'क्या हँस रहे हो ' तब मैंने जनमत सबधी एक कहानी सुनायी। उस समय लायड जार्ज ग्रेटब्रिटेन क प्रधानमत्री थे। एक दिन मास्को म ब्रिटिश राजदूत बोल्शेविक विदेश मत्री चचरिन से भेंट करने गय। चाय और खान की चीजें परोसी गयी। ब्रिटिश राजदूत चिचेरिन को बताने लगे कि उनके प्रधानमत्री की स्थिति कितनी कठिन है क्योंकि उन्ह ग्रेट ब्रिटेन म जनमत का ध्यान रखना पडता है। इस दृष्टि स सोवियत सरकार की स्थिति ज्यादा बेहतर है। चिचेरिन ने राजदूत महोदय की बात काटते हुए कहा कि सोवियत यूनियन म उन्ह भी अपने देश क जनमत का ध्यान रखना पडता है। साथ ही चस्पाँ किया यह सब इस बात पर निर्भर करता है कि जनमत से कोई किस तरह से निपटता है।' तभी क्रेमलिन म पलने वाली एक दोस्त बिल्ली म्याऊ म्याऊ करती कमरे म घुस आयी। चिचेरिन ने उसे उठाया और उसे सहलाने लगे। फिर उन्होंने शहद की शीशी मेज पर से उठायी और थोडा-सा शहद तश्तरी म उँडेल दिया। फिर उन्होंने राजदूत महोदय को बिल्ली थमाते हुए पूछा राजदूत महोदय क्या आप इस बिल्ली से शहद चटवा सकते हैं ? राजदूत ने बिल्ली को सहलाया और हलके से उसका मुह तश्तरी म दबाया। बिल्ली ने सूघा और अपना मुह परे हटा लिया। जीत की खुशी म राजदूत महोदय के मुह से निकला अरे वाह इससे तो मेरी बात सिद्ध होती है। चिचेरिन मुस्कराये और उन्होंने बिल्ली को पकडकर उसकी पूछ तश्तरी के शहद म डुबो दी। फिर बिल्ली को छोड दिया। बिल्ली बैठकर अपनी पूछ म लगा शहद चाटने लगी। चिचेरिन आराम स जमकर बैठ गय और राजदूत महोदय से कहा जनमत के बहाने का सहारा बडे आराम से ज्यादातर मामलों म लिया जाता है। जनमत से निपटने के हजारों तरीके है। अगर आप उसका शिकार ही होना चाहें तो और बात है।

नेहरूजी बडे ध्यान से सुन रहे थे और मुस्करा रहे थे। लेकिन उन्होंने कुछ कहा नहीं। मैंने अपने स कहा वे कह भी क्या सकते है ?
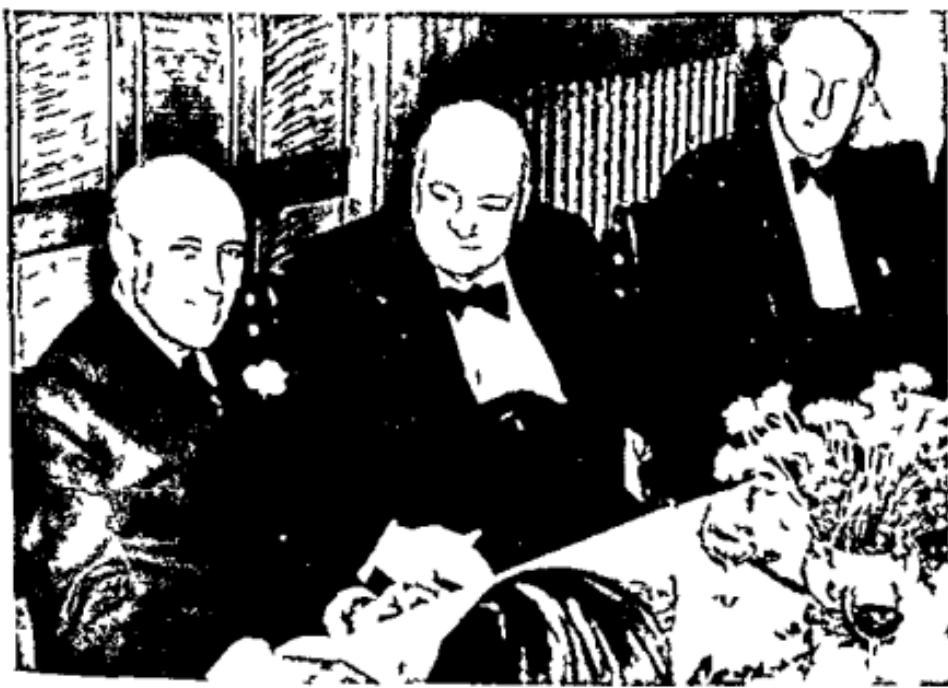
नेहरूजी और चर्चिल, 1953

स्विटजरलड मे नेहरूजी, इंदिरा और बच्चे राजीव तथा संजय
लेखक के साथ, 1953

विजय लक्ष्मी पंडित इंदिरा और नेहरूजी वाशिंगटन मे 1948

संयुक्त राज्य अमरीका में रूसी और जापानी लडकियो के साथ
स्विमिंग पूल पर कृष्ण मेनन

पटेल और नेहरुजी (चौथे दशक के अंतिम वर्षों मे)

श्री राजेन्द्र प्रसाद और नेहरुजी

सिर पर आसीन कबूतर के साथ नेहरूजी

नेहरूजी 1940

22

जी डी बिडला

15 दिसंबर 1950 को सरदार पटेल की मृत्यु के कुछ समय बाद ही एक दिन घनश्यामदास बिडला ने मुझे फोन किया कि वे मुझसे मिलना चाहते हैं। मैंने प्रधानमंत्री निवास के अपने अध्ययन-कक्ष में उनसे भेंट की। मेरी उनसे यह पहली मुलाकात थी, हालांकि इससे पहले कई वर्षों से वे मेरे माध्यम से प्रधानमंत्री को बंबई के अलफोंसो आम और नासिक के रसीले अंजीर हर वर्ष भेजते रहे थे। कभी-कभी दिल्ली में उनके बाग से उम्दा किस्म की शतावरी भी आती थी। इस मुलाकात में उन्होंने मुझसे कहा कि वित्त-मंत्री उनके और उनकी फर्मों के लिए दिक्कतें पैदा कर रहे हैं। बरसों स्वतंत्रता-संघर्ष के दिनों में उनकी फर्मों ने चंदे की जो बडी-बडी रकमें कांग्रेस पार्टी को दान के रूप में दी थीं वे उस पर टैक्स लगा रहे हैं या पनल्टी ठोंक रहे हैं। यह सब कारवाईयाँ उस रिपोर्ट के आधार पर की जा रही हैं जो अंतरिम सरकार में वित्त-सदस्य लियाकतअली खाँ द्वारा नियुक्त इंकम-टैक्स इंवेस्टिगेशन कमीशन ने तैयार की थी। उन्होंने कहा कि वित्त मंत्री सी डी देशमुख ब्रिटिश सरकार की सिविल सेवा में थे और इस कारण उन्हें उन हालात का समझ ही नहीं है जिनमें यह रकम चंदे में दी गयी थी। यह सभी राशियाँ गांधीजी और सरदार पटेल के कहने पर उन्होंने दी थीं। उन्हें पता ही नहीं कि इस तरह के मामलों में किस तरह से कारवाई करनी चाहिए। उन्होंने बताया कि नेहरूजी से उनके संबंध कभी भी निकट के नहीं रहे और उन दोनों के बीच हमेशा दूरी रही। मैंने उनसे कहा कि पंडित नेहरू का कांग्रेस के लिए चंदा इकट्ठा करने के कामों से कभी कोई वास्ता नहीं रहा। उनसे सीधे मिलने के बजाय वे पहले मौलाना आजाद से मिल लें और उन्हें सारी स्थिति समझा दें। मुझे विश्वास है कि मौलाना आजाद प्रधानमंत्री से जरूर बात करेंगे। इस बीच मैंने प्रधानमंत्री को बता दिया कि जी डी बिडला मुझसे मिले थे और उन्होंने मुझसे क्या-क्या

बातें की थीं।

जी डी बिड़ला ने वही किया जैसा मैंने उनसे कहा था। बाद में मौलाना आज़ाद की प्रधानमंत्री से बात हुई और उन्होंने जी डी बिड़ला को बुलाकर बातचीत की। बीच में यह भी बता दूँ कि जब भी कभी जी डी बिड़ला ने इन्टरव्यू माँगा प्रधानमंत्री ने अक्सर उनसे अपने निवास पर दफ्तर जाने से पहले सुबह के समय ही भेंट की। बिड़लाजी से बैठक के बाद प्रधानमंत्री और वित्त मंत्री देशमुख के बीच पत्र-व्यवहार चला। शुरू में देशमुखजी ने कुछ कड़ा रुख अपनाया। लेकिन प्रधानमंत्री ने देशमुखजी को स्पष्ट कर दिया कि स्वाधीनता से पहले कांग्रेस पार्टी को दिया गया चंदा एक राजनीतिक पार्टी को दिया जाने वाला चंदा नहीं माना जाय बल्कि विदेशी सत्ता के विरुद्ध संघर्ष में लगे राष्ट्रीय आन्दोलन को दिया गया चंदा मानना चाहिए। अंत में वित्त मंत्री सही काम करने को राजी हो गये। बाद में प्रधानमंत्री ने मुझसे कहा कि इसके बारे में मैं बिड़लाजी को सूचित कर दूँ।

इसके तुरंत बाद एक दिन जी डी बिड़ला से मेरी बड़ी देर तक बातचीत हुई। उन्होंने मुझे बहुत-सी बातें बतायी। उनके अलावा उन्होंने मुझे बताया गांधीजी के ट्रस्टीशिप के सिद्धांत ने मुझे बहुत प्रभावित किया। स्वाधीनता से पहले मैंने अपनी तमाम जायदाद का त्याग कर दिया। कुछ तो मैंने अपने लड़कों में बाँट दी लेकिन ज्यादातर बिड़ला ऐजुकेशन ट्रस्ट जैसे जनोपकारी ट्रस्टों के नाम कर दी। इनमें से बिड़ला ऐजुकेशन ट्रस्ट पिलानी में इंस्टीच्यूट ऑफ टैक्नोलाजी चलाता है। अब मुझे सिर्फ बिड़ला ब्रदर्स (प्राइवेट) लि से कर-मुक्त 5 000 रुपये हर माह मिलते हैं। मैंने चुटकी ली सरकार में संपत्ति-कर और संपदा शुल्क लगाने के बारे में बात चल रही है इनका आप पर कोई असर नहीं पड़ेगा क्योंकि अपनी जायदाद से आप उसी तरह आज़ाद होंगे जिस तरह गधा सींगों से। उन्होंने स्वीकार किया कि हाँ यही स्थिति होगी।

एक दिन नेहरूजी ने मुझे जी डी बिड़ला से अपनी एक मुलाकात के बारे में बताया जो 1925 की सर्दियों में हुई थी। नेहरूजी ने गांधीजी को एक पत्र लिखा था जिसमें कहा था कि वे अपने पिता पर भार नहीं रहना चाहते अपने पाँवों पर खड़ा होना चाहते हैं। लेकिन दिक्कत यह है कि वे कांग्रेस के पूरे समय काम करने वाले कार्यकर्ता हैं। गांधीजी ने 15 सितंबर 1924 को इस पत्र के उत्तर में लिखा, 'क्या मैं कुछ पैसों का बंदोबस्त करूँ? तुम कोई ऐसा काम धंधा क्यों नहीं पकड़ लेते जिसमें पैसा मिलता हो? पिता के घर में रहते हुए भी तुम्हें अपनी मेहनत की कमाई पर गुज़ारा करना चाहिए। क्या तुम किसी समाचार पत्र के संवाददाता बनना चाहोगे? या प्रोफेसर का पद संभालोगे?'

30 सितंबर 1925 को गांधीजी ने फिर लिखा 'मैं ऐसे मित्र या मित्रों से कहने में नहीं हिचकूँगा, जो तुम्हें तुम्हारी जनसेवाओं के लिए पैसा देना अपना सौभाग्य समझें। अगर तुम्हारी जरूरतें असाधारण नहीं है और जो तुम्हारी स्थिति को देखते हुए असाधारण नहीं होंगी उन्हें पूरा करने के लिए मैं चाहूँगा कि तुम जनता के पैसे में से कुछ ले लो। मैं खुद मानता हूँ कि कोई काम धंधा करके या अपनी सेवाओं का इस्तेमाल करने के एवज़ में अपने दोस्तों को पैसे का इंतज़ाम करने की छूट देकर घर के साझे खर्च में तुम्हें योग देना चाहिए। वैसे अभी कोई जल्दी नहीं है लेकिन कुढ़ने के बजाय कोई फैसला ज़रूर कर लो। अगर तुम कोई व्यापार करने का फैसला भी करो मुझे बुरा नहीं लगेगा। मुझे

विश्वास है कि तुम्हारे पिताजी को भी तुम्हारा कोई भी फैसला बुरा नहीं लगेगा बशर्ते उसमें तुम्हें पूरी तसल्ली होती हो।' (गांधीजी पिता और पुत्र के स्वाभिमान की सीमा नहीं आंक पाये थे।)

गांधीजी ने इस मामले का ज़िक्र जी डी बिड़ला से किया जो इलाहाबाद आये। जी डी बिड़ला ने बड़े संकोच से नेहरूजी से बात की और कहा कि नेहरूजी जिस तरह का इंतज़ाम चाहें, किया जा सकता है। नेहरूजी बड़ी मुश्किल से अपनी नाराज़गी छुपा पाये और उन्होंने बड़ी नम्रता से उनका यह प्रस्ताव ठुकरा दिया।

राजकुमारी अमृतकौर की एक योजना में सहायता देने में जी डी बिड़ला और उनके निकट संबंधियों ने बड़ी उदारता से काम लिया। जिस योजना के साथ बाद में नेहरूजी को बताकर मैं भी संबद्ध रहा। अतः मुझे इससे परेशानी उठानी पड़ी। इसके बारे में अलग से लिखूंगा।

नेहरूजी ने एक बार जी डी बिड़ला के बारे में अपनी राय से मुझे अवगत कराया। उन्होंने कहा, 'घनश्यामदास बिड़ला में एक बहुत ही उदार व्यक्ति और नया-नया धंधा शुरू करने वाले जलदस्यु का अजीब सा मेल है।"

1955 के शुरू में जी डी बिड़ला के साथ मेरी एक लंबी बैठक हुई। उन्होंने बताया कि सरदार पटेल और गांधीजी ने कई तरीकों से उनका इस्तेमाल किया। फिर वे बोले, 'इन सर्दियों में दूसरे चुनाव होने वाले हैं। पहले चुनावों में अखिल भारतीय कांग्रेस के पास सरदार पटेल का छोड़ा पैसा था। अगर पंडितजी चाहें तो बड़े उद्योगपतियों से एक केंद्रीय फंड में पैसा इकट्ठा करने में मदद देकर मुझे खुशी होगी।" मैंने उनसे कहा कि इस मामले में पंडितजी को सीधे लाना ठीक नहीं रहेगा। मैं इस मामले पर कुछ और लोगों के साथ मिलकर विचार करूंगा और इसका ज़िक्र प्रधानमंत्री से भी करूंगा। फिर मैं आपसे संपर्क करूंगा। मैंने टी टी कृष्णमाचारी, लालबहादुर और यू एन ढेबर की बैठक बुलायी और उसमें बताया कि जी डी बिड़ला से मेरी क्या बातें हुई हैं और मैंने इसकी खबर प्रधानमंत्री को भी दे दी है। मैंने उनसे कहा कि हम केंद्रीय फंड के लिए बिड़लाजी को एक टार्गेट दे दें। टार्गेट तय करते समय इस बात का ध्यान रखें कि प्रांतीय कांग्रेस कमेटियाँ भी अपने-अपने प्रांतों में बड़े उद्योगपतियों को छोड़कर बाकी लोगों से पैसा इकट्ठा करेंगी। बैठक में सबकी राय थी कि कांग्रेस के केंद्रीय फंड का टार्गेट एक करोड़ रुपये होना चाहिए।

इन्हीं लोगों की एक बैठक बाद में टी टी कृष्णमाचारी के निवास पर हुई जिसमें जी डी बिड़ला भी उपस्थित थे। बिड़लाजी ने कहा कि टार्गेट पूरा करना असंभव नहीं। उन्होंने प्रधानमंत्री के नाम से एक अलग बैंक खाता खोलने का सुझाव दिया। बिड़लाजी को पैसा इकट्ठा करने के लिए कह दिया गया और सोच लिया गया कि प्रधानमंत्री चुपचाप राज़ी हो जायेंगे।

मैंने प्रधानमंत्री के साथ टी टी कृष्णमाचारी, लालबहादुर और मलैया की बैठक का इंतज़ाम किया। तब तक प्रधानमंत्री मेरे ज़रिए सभी कुछ जान चुके थे। टी टी कृष्णमाचारी ने सुझाव दिया कि प्रधानमंत्री अपने नाम से एक अलग खाता खोलने की बात मान लें। मैंने हस्तक्षेप करते हुए कहा कि प्रधानमंत्री के बचाव की सूरत भी रखी जानी चाहिए और खाता दो आदमियों के नाम में होना चाहिए। मैंने मोरारजी देसाई का नाम सुझाया जो उस समय अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के कोषाध्यक्ष थे। प्रधानमंत्री ने अनुमोदन किया। लेकिन

बाद में मुझ पर कृष्णमाचारी बहुत नाराज हुए, क्योंकि मोरारजी से उनकी पटरी नहीं बटती थी।

कांग्रेस के केंद्रीय चुनाव फंड में टार्गेट से पच्चीस लाख रुपये ज्यादा इकट्ठे हुए।

नेहरूजी इलाहाबाद के अपने घर आनंद भवन में कभी-कभार जाते थे। एक बार वहाँ से लौटने पर नेहरूजी खिन्न और चिढ़े हुए नजर आ रहे थे। मैंने इन्दिरा से पूछा, "बूढ़े को क्या परेशानी है?" उसने बताया कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी जब अपना कार्यालय स्वराज भवन से बदलकर दिल्ली लायी तो वह अपने पीछे भवन को बहुत टूटी-फूटी हालत में छोड़ आयी और उसके पिता को कांग्रेस कमेटी के अधिकारियों के इस दुर्व्यवहार को देखकर बहुत दुख हुआ है। वे भवन की मरम्मत और उसमें संशोधन-परिवर्तन के खयाल से परेशान हैं और इनमें लगने वाले पैसे के बारे में चिंतित हैं। भवन में चिल्ड्रेन्स नेशनल इंस्टीच्यूट कायम किया जाना था जिसकी डायरेक्टर श्रीमती श्यामकुमारी खान थीं।

मैंने इसके बारे में जी डी बिड़ला से बात की और उनसे अनुरोध किया कि इस ऐतिहासिक इमारत को ठीक-ठाक कराने के लिए कुछ किया जाना चाहिए। उन्होंने तुरंत स्वराजभवन-ट्रस्ट के नाम अपने एक ट्रस्ट से एक लाख रुपये का चैक काटा और नेहरूजी के पास भेज दिया। नेहरूजी बहुत खुश हुए और उन्होंने इसकी सूचना बी सी राय को दी, जो स्वराजभवन-ट्रस्ट के ट्रस्टी थे। चैक श्यामकुमारी खान को भेज दिया गया। बिड़लाजी ने इस काम के लिए कस्तूरभाई लालभाई के ट्रस्टों में से एक ट्रस्ट से पचीस हजार रुपये का चैक भी दिलवाया।

इस बीच मैंने श्यामकुमारी खान से कहा कि वे अच्छे-से वास्तुकार से स्वराज भवन के पूरी तरह से नवीकरण का अनुमान लगवायें। श्यामकुमारी खान ने अविलम्ब विस्तृत रिपोर्ट और 2 लाख रुपये के खर्च का तखमीना भेज दिया। मैंने दोनों प्रधानमंत्री के सामने रख दिये।

मैंने बिड़लाजी से जिक्र किया कि तखमीना 2 लाख रुपये का है। क्षण भर भी बिना हिचके उन्होंने अपने ट्रस्ट से स्वराजभवन-ट्रस्ट के नाम एक लाख रुपये का चैक काटकर नेहरूजी को भेज दिया। नेहरूजी ने बिड़लाजी से यह कहते हुए चैक वापस कर दिया कि वे मुझसे नाराज हैं कि मैं उन्हें इतनी तकलीफ दे रहा हूँ। नेहरूजी के इस नकारात्मक रुख और पैसा जुटाने की कोई और सूरत देखकर मैंने उनसे छल करने का फैसला किया। मेरे कहने पर बिड़लाजी ने वह चैक फाड़ दिया और उतनी ही रकम का एक और चैक चिल्ड्रेन्स नेशनल इंस्टीच्यूट के नाम लिख दिया। मैंने इन निर्देशों के साथ चैक श्यामकुमारी खान को भेज दिया कि इस रकम को स्वराजभवन की मरम्मत और संशोधन-परिवर्तन पर ही खर्च किया जाये। तीन महीने बाद नेहरूजी को मेरी इस हरकत का पता चला। वे खामोश रहे। शायद उन्होंने सोचा कि इस तरह के मामले में डाँट फटकार का भी मुझ पर कोई असर नहीं होने वाला है।

मैं विशेष रूप से उल्लेख करना चाहूँगा कि जब तक मैं नेहरूजी के साथ सरकारी तौर पर संबद्ध रहा तब तक बिड़लाजी ने कभी भी मुझसे छोटा या बड़ा किसी भी तरह का लाभ उठाने की कोशिश नहीं की। वे इतने बड़े आदमी हैं कि इस तरह की बातों से परे हैं।

पिलानी के इंस्टीच्यूट आफ टक्नोलाजी के दौरे से लौटने के बाद ब्रिटिश राजनीतिज्ञ एन्यूरिन बेवन ने मुझसे कहा था 'यह किसी उदारचेता और

कल्पनाशील व्यक्ति द्वारा निर्मित प्रथम श्रेणी का सस्थान है।" राजदूत ए सी एन नम्बियार यूरोप म लगातार पचपन वर्षों तक रहे हैं और उन्ह पश्चिमी जमनी चेकास्लोवाकिया, फ्रास स्विटजरलड और स्वीडन जसे यूरोपीय देशा के विश्वविद्यालया की अच्छी जानकारी है। उनकी भतीजी पिलानी म मानविकी विभाग म डीन थी। वे उसस कई बार मिलने पिलानी गये और इन कई दौरा के बाद उन्होंने मुझे बताया कि पिलानी का बिडला इस्टीच्यूट आफ टैक्नोलाजी यूरोप के इसी प्रकार के किसी सस्थान से कम नही ठहरता।

ऐसे तथाकथित बडे व्यापारियो और उद्योगपतियो के विरुद्ध शोर मचाना दूसरे दर्जे के राजनीतिज्ञो का शगल रहा है। इन व्यापारियो और उद्योगपतियो म स कुछ न नारे दन के बजाय देश के निर्माण मे योग दिया है। शोर करनेवाले इन नारे राजनीतिज्ञों की तुलना म वे बडे ठहरते ह। अगर इनम से किसी न अनियमितताएँ की हैं तो सरकार उन्ह दड दे। लेकिन शोर मचाने से क्या लाभ ?

1952 ही स जी डी बिडला नहरूजी को उनके जन्म दिन पर, उनकी आयु के वर्षों का 1 000 रुपय प्रतिवष म गुणा करके और उसमे एक रुपया जोडकर निकलन वाली रकम का चैक भेजत रह थे। यह एक रुपया नेहरूजी अपनी मर्जी स खच कर सकते थे। यह चैक डिस्ट्रैस रिलीफ फड के खाते म जमा हो जात थ, जिसम स अनगिनत गरीब विद्यार्थिया, विधवाओ और परेशानहाल लोगा को मदद मिली है।

23

नेहरूजी और मादक पेय

अक्सर लोगो न मुझसे पूछा है कि क्या नेहरूजी पीते थे और अक्सर मेरा उत्तर रहा है हाँ पानी। लेकिन व कभी भी इस मामले मे मोरारजी देसाई जैसे जिद्दी और अतिनैतिकवादी नही रहे।

मैंने उन्हे एक बार ही शराब पीते देखा है। स्थान था स्विटजरलैंड मे बर्जेनस्टोक का पर्वतीय स्थल। हम वहाँ यूरोप म भारतीय दूतावासो क अध्यक्षो की कान्फ्रेंस के लिए लदन से गये थे। लेडी माउंटबेटन के कहने पर नेहरूजी ने चार्ली चैपलिन को कुछ दिनो क लिए वेवी से बर्जेनस्टाक आने का निमत्रण दिया था। चैपलिन वेवी मे रहते थे। नेहरूजी ने मुझे ताकीद कर दी थी कि जब व व्यस्त होंगे तो मुझे चार्ली चैपलिन के साथ रहना पडेगा। जिस होटल म हम ठहरे थ वहाँ ही चार्ली चपलिन नेहरूजी के मेहमान बनकर रहे। इससे मुझे आडबरप्रिय राजदूतो की उस बैठक स बचने का मौका मिल गया।

चार्ली चैपलिन अपने व्यक्तिगत और राजनीतिक कटु अनुभवो के कारण अमरीका छोडकर तभी स्विटजरलैंड मे आकर बसे थे। वे कभी भी अमरीकी राष्ट्र के नागरिक नही बने और खुदक म अपना ब्रिटिश पासपोर्ट ही रखे रहे। उन्होने अमरीका के अपने अनुभव खुलकर मुझे सुनाये। उनमे अमरीका के प्रति कटुता थी लेकिन उन्होने फ्रेंकलिन रूजवेल्ट की बहुत प्रशसा की। उस समय कोलम्बिया विश्वविद्यालय के अध्यक्ष और ट्रुमैन के बाद बनने वाले अमरीका के भावी राष्ट्रपति आइजनआवर समेत बाकी सब के लिए उनके दिल म केवल असीमित तिरस्कार था। उन्होंने ग्रेटा गारबो का उल्लेख बड़े ही स्नेह भरे स्वर मे किया और मुझे बताया कि उन्होने उसमे पूछकर उसके घुटने चूमे थ। मैंने उन्हें बताया कि मैंने ग्रेटा गारबो को न्यूयार्क के वाल्डोर्फ एस्टोरिया होटल म नेहरूजी के स्वागत के लिए भीड में खडे देखा था। चार्ली चैपलिन ने कहा वह किसी भी

राज्याध्यक्ष के लिए ऐसी हरकत कभी नहीं करेगी। लेकिन नेहरूजी उसके और मेरे जैसे लोगों के लिए भारत के प्रधानमंत्री से कहीं अधिक और कुछ हैं।"

चार्ली चैपलिन का बात करने का तरीका और हाव भाव स्त्रियों की तरह मृदुल थे और बहुत अच्छे लगते थे। बर्जेनस्टोक में दो दिन रहने के दौरान मैंने उनके साथ बहुत ही मजेदार समय बिताया।

एक दिन शाम को मैं और चार्ली चैपलिन होटल के लाउंज के एक एकांत कोने में बैठे शैरी की चुस्कियां ले रहे थे। तभी नेहरूजी वहां आये और हमारे साथ बैठ गये। चार्ली चैपलिन ने उनसे अपने साथ शैरी लेने का आग्रह किया। नेहरूजी ने उन्हें बताया कि वे शराब नहीं पीते और उन्हें किसी शराब का स्वाद अच्छा नहीं लगता। एक महिला की तरह चार्ली चैपलिन बड़े प्यार से उन्हें पीने के लिए कहते रहे और अंत में उन्होंने शैरी का एक गिलास मँगा लिया। चार्ली को बुरा न लगे, इस खयाल से नेहरूजी ने एक घूंट भरा, चेहरा सिकोड़ा और गिलास एक तरफ रख दिया।

कार में जनेवा वापस आते समय चार्ली चैपलिन नेहरूजी के साथ थे और लंच जनेवा में वेवी के स्थान पर रुककर उन्होंने चैपलिन और उनकी पत्नी ऊना के साथ लंच लिया। लंच के दौरान चैपलिन अपनी पत्नी को 'प्यारी रोशनी' कहते न थकते थे। कार से यात्रा के दौरान चार्ली चैपलिन बड़े बेचैन रहे, क्योंकि वे पहाड़ी सड़कों पर कार के सफर से बहुत डरते थे।

जर्मनी के दौरे पर नेहरूजी को चांसलर आदेनौयर और उनके मुख्य मंत्रियों को जवाबी भोज देना था। राजदूत नम्बियार शराबें सर्व करना चाहते थे। इस विषय में उन्होंने महासचिव एन. आर. पिल्लै से बात की। वे दोनों मेरे पास आये और मुझसे कुछ करने को कहा। मैंने नेहरूजी से बात की लेकिन उन्होंने पहली बार ही साफ मना कर दिया। मैंने फिर कोशिश की और उनसे कहा, 'हम भारत में नहीं हैं। क्या आप मोरारजी बनना और इन विदेशियों पर इनके ही देश में नशाबंदी लागू करना चाहते हैं? इनके यहां पीने का चलन है और इनको यह सुविधा न देना असहिष्णुता होगी। पार्टी में मौजूद भारतीय शराब पीने से अपने को रोक सकते हैं।' कुछ क्षण उन्होंने सोचा और फिर बोले, 'ठीक है, ननु को कह दो कि शुरू में शैरी दे सकते हैं, बाद में मोसेल वाइन (मधुर) और फिर राइन वाइन (सूखी)। इनके अलावा और कोई शराब नहीं।' यही किया गया, हालांकि इस फैसले पर एन. आर. पिल्लै नाखुश थे।

दिल्ली में नेहरूजी महत्वपूर्ण विदेशी महानुभावों को प्रधानमंत्री निवास में ठहराया करते थे। प्रधानमंत्री निवास में एन्यूरिन बेवन, सेल्विन लॉयड, एंथनी ईडन और हैरोल्ड मैकमिलन का ठहरना मुझे अभी तक याद है। इन लोगों के वहां ठहरने के दौरान विदेश मंत्रालय के नयाचार विभाग के लोग उनके कमरों में बढ़िया ह्विस्की की शराबों की बोतलें रख देते थे। एक अंग्रेजी बोलने वाला नौकर इस काम पर लगा दिया जाता था कि जब भी मेहमानों को जरूरत पड़े, वह उन्हें शराब दे दे। लेकिन नेहरूजी की खाने की मेज पर शराब कभी सर्व नहीं की गयी।

1955 के शुरू दिनों की बात है कि मेरे पास राजदूत के. पी. एस. मेनन का पत्र आया, जिसमें नेहरूजी के रूस की भावी यात्रा के दौरान मादक पेयों के सर्व किए जाने के बारे में संकोच से निवेदन किया गया था। मैंने वह पत्र नेहरूजी के सामने रख दिया। उन्होंने मुझे नोट भेजा, जो मैं नीचे दे रहा हूं:

जहाँ तक के पी एस मेनन के पत्र का सबध है आप उन्हे स्पष्ट कर दें कि चाहे पार्टी छोटी हो या बडी, उसम मादक पेय सव नही किये जायेंगे। अगर इससे रूसियों को परेशानी होती है तो मुझे खेद है, लेकिन उन्हे यह पता होना चाहिए कि हमारे तरीके क्या हैं। लेकिन निम्नलिखित अपवाद हो सकता है

सरकार के सदस्यो के लिए आयोजित रात्रि भोज म रूसियो को कुछ शेरी या हल्की वाइन या वोदका दी जा सकती है। लेकिन शम्पन किसी को भी नही। उपस्थित भारतीयो मे से न तो किसी को मादक पेय सर्व किये जायेंगे और न ही वह उन्हें स्वीकार करेगा।

स्वागत के समय किसी भी तरह के मादक पेय नही होग। आप बता सकते है कि हम इसी नियम का पालन चीन म करते है। वहाँ अभी तक मादक पेयों के मामले म कोई अपवाद नही बरता गया। पहले से ही चीन की सरकार को सूचना दे दी गयी थी कि मैं शराब नहीं पीता और न हम मेहमानों को शराब सर्व करते हैं। यदि के पी एस मेनन चाहें तो रूसियो को पहले से इस विषय म सूचित कर दें।

24

सरोजिनी नायडू

उनस मरी सबस पहली मुलाकात 1946 म दिल्ली म हुइ। व छाटे कद की महिला थी और उनका मुह मेढक की तरह चौडा था। उन्होंन मेरे बारे म अपनी लडकियो, पद्मजा और लीलामणि से सुन रखा था। उनका व्यवहार मेरे प्रति सहृदयतापूण था। सरोजिनी जसी रोबदार मैंन कोई अय महिला नही देखी और न ही शायद वडी उम्र की ऐमी स्त्री कही होगी जा उनके जितनी मिठाईयो और पकवानों की शौकीन हो। वे पूरी तरह म मुक्त महिला थी जिनम दूसरा का सम्मन की सूझ थी और दूसरा के प्रति सहानुभूति का भाव था। जब उनकी छोटी बहन और उसके पति ननु (ए सी एन नम्बियार) म न बनी और व अलग हो गय तव सरोजिनी की सहानुभूति ननु के साथ थी। उन्होने अपनी बहन के विरुद्ध उनका पक्ष लिया।

गाधीजी के प्रभाव म आकर सरोजिनी न अपने मशहूर भाई चट्टो (वीरेन्द्र-नाथ चट्टोपाध्याय) की आतकवादी कारवाईयो के विरुद्ध एक वक्तव्य जारी किया, जिसम उसकी कारवाईया का नरमी स खडन किया गया था। इस पर उनक पिता अघोरनाथ चट्टोपाध्याय बहुत बाधित हुए और उन्होने अपन जीवन म उनम कभी भी मिलने स इकार कर दिया। जब व मृत्युशय्या पर थे तो सरोजिनी उनके अतिम दशन करने घर पहुची। वद्ध न मिलन की अनुमति नही दी। यह दुख उन्ह जीवन भर सालता रहा।

सरोजिनी उनका पुत्र जयसूय और पुत्रियाँ पदमजा और लीलामणि हैदराबाद शहर की मिली जुली सस्कृति की देन थे। वे नितात गैर-साम्प्रदायिक, दरअसल कुछ हद तक मुस्लिम-समथक थे। आध्र के रेड्डिया के प्रति उनके मन म तिरस्कार था। रवैया उनका नवाबी था। सराजिनी के मन म उत्तर भारत क कुछ राजकुमारा-महाराजाओ के प्रति सहानुभूति थी विशेषकर कुछ मुस्लिम

राजकुमारो के प्रति। उन्हें दरबार लगाने और गप्पें मारने में बड़ा मज़ा आता था। उन्हें के एम पणिक्कर जैसे दरबारियों से घिरा रहना और तारीफ कराना बहुत अच्छा लगता था। समाजवाद से उन्हें कुछ लेना-देना नहीं था और उन्हें जीवन में सुख देने वाली चीज़ों से मोह था। उनका दृष्टिकोण बड़ा ही उदारवादी था।

1946 में नेहरूजी कांग्रेस के अध्यक्ष बने तो उन्हें गांधीजी ने कार्यकारिणी कमेटी में सरोजिनी को शामिल न करने की सलाह दी क्योंकि अंग्रेज़ों के साथ कुछ महत्वपूर्ण समझौते होने की उन्हें उम्मीद थी और उन्हें डर था कि कार्यकारिणी कमेटी में होने पर सरोजिनी बहुत सी बातें जान जायेंगी और बातों को गोपनीय न रखकर बातचीत में उनका ज़िक्र कर बैठेंगी। नेहरूजी ने उनकी जगह कमलादेवी चट्टोपाध्याय को शामिल कर लिया। सरोजिनी कुछ दिन बहुत नाराज़ रहीं।

देश के स्वाधीन होने पर मन्त्रिमंडल में स्त्रियों के स्थान के लिए सरोजिनी का नाम सबसे पहला होना था। लेकिन उन्हें उम्र में ज़्यादा मानकर उत्तर प्रदेश में गवर्नर बनाकर भेज दिया गया। गवर्नर के रूप में वे बहुत सफल सिद्ध हुईं। लेकिन अफसोस कि उनके दुखद अवसान से उनका कार्यकाल भी पूरा न हो सका।

नेहरूजी के साथ लखनऊ के एक दौरे पर मैं भी था। वे नेहरूजी के पुराने नौकर हरी का इतना ध्यान रख रही थीं और इतना अधिक स्नेह उसे दे रही थीं कि देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। अपने ए डी सी के साथ वे हरी के कमरे में गयीं। उनके खुद के हाथ में मिठाइयों की बड़ी प्लेट थी और पीछे उनका ए डी सी फलों की टोकरी लिये चल रहा था। वे दोनों चीज़ें उन्होंने हरी के कमरे में रख दीं। सरोजिनी के अलावा कोई गवर्नर यह नहीं कर सकता था। अपनी महानता के कारण वही ऐसा कर सकती थीं।

कवियित्री और वक्ता तथा सहज स्वभाव की सरोजिनी को हिन्दुस्तान की बुलबुल कहकर पुकारा गया। वे शायद सर्वाधिक प्रतिभाशाली दक्ष और महानतम महिलाओं में से थीं जिन्हें देश ने पिछली कुछ शताब्दियों में जन्म दिया है।

25

राजकुमारी अमृतकौर

1887 में कपूरथला के राजघराने में जन्मी राजकुमारी अमृतकौर छह भाइयों की अकेली बहन थी। उनकी प्रारंभिक पढ़ाई इंग्लैंड में हुई थी। सीनियर कैम्ब्रिज परीक्षा पास करने के बाद वे आक्सफोर्ड में जाना चाहती थीं, लेकिन उनकी माँ ने उन्हें नहीं जाने दिया। इसलिए उन्हें वापस लौटना पड़ा और पियानो बजाने कामकाज करने और टेनिस खेलने में अपना मन लगाना पड़ा। टेनिस की वे अच्छी खिलाड़ी थीं और उन्होंने कई ट्राफियाँ जीती थीं।

राजकुमारी ने एक बार मुझे बताया था कि उनके युवा दिनों में भारत में तीन स्त्रियाँ अतीव सुन्दरियाँ मानी जाती थीं—कूच बिहार की इंदी, ताई राजवाड़े और वे स्वयं। उनका एक अंग्रेज से प्रेम हो गया था। लेकिन उनके माता पिता विशेषकर माँ यह सोचने को भी तैयार न थे कि मेरा विवाह किसी विदेशी से हो।

धीरे धीरे राजकुमारी का अपनी माँ से झगड़ा बढ़ने लगा। उनके पिताजी इन झगड़ों से खुश नहीं थे लेकिन उन्होंने चुप रहना ही ठीक समझा। उनके बड़े भाई को उनसे सहानुभूति थी और वे कभी कभी माँ को डाँटते भी थे। लेकिन इसका कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। उनके जिस भाई ने उनका समर्थन किया वे थे लेफ्टीनेंट-कर्नल कुँवर शमशेरसिंह जो इंडियन मिलिट्री सर्विस के सबसे पुराने अफसरों में से थे। राजकुमारी ने घर छोड़ दिया और वे कुँवर शमशेरसिंह के साथ रहने लगीं। उनके दिल में उनके लिए बड़ा प्यार और लगाव था जो जीवन-पर्यन्त बना रहा। वे तब तक शिमला में अपने पैतृक निवास में नहीं गयीं जब तक उनकी माँ की मृत्यु न हो गयी। फिर वे अपने पिता के साथ रहने लगीं और उनके लिए मेजबानी करने लगीं। उनके पिता के निवास पर वायसरायों, गवर्नरों और दूसरे बड़े लोगों का आना-जाना लगा रहता था।

एक बार राजकुमारी ने मुझे बताया था कि उन्हें जीवन में केवल एक व्यक्ति से नफरत रही है। मैंने उनसे पूछा कि वह व्यक्ति कौन था। उन्होंने कहा, 'मेरी माँ।' फिर वे अपनी माँ को चुनिन्दा शब्दों में कोसने लगी।

राजकुमारी अमृतकौर आल इंडिया वीमैंस कान्फ्रेंस में बहुत रुचि लेती थी जो अंग्रेजों के समय में सक्रिय संस्था थी। अच्छे उद्देश्यों के लिए चन्दा जुटाने की योग्यता उनमें शुरू से ही देखी गयी। वे नयी दिल्ली के लेडी इरविन कालिज के संस्थापकों में से थीं और इस संस्थान को बनाने में उन्होंने काफी सहायता दी।

तीसरे दशक के मध्य में राजकुमारी अमृतकौर ने गांधीजी के सचिवों में से एक सचिव के रूप में उनके साथ रहना शुरू किया। इससे पहले गांधीजी और उनके बीच कुछ पत्राचार हुआ था और उन्होंने शिमला तथा आसपास के इलाकों में गांधीजी के लिए खादी और ग्रामोद्योगों के क्षेत्र में काम किया था। 1959 में राजकुमारी अमृतकौर ने मुझे बताया था कि उनके प्रिय भाई और संरक्षक कुंवर शमशेरसिंह समेत परिवार के सभी लोगों ने गांधीजी के साथ इस प्रकार का सम्पर्क रखने तक का विरोध किया था सेवाग्राम में उनकी कुटिया में रहने की बात तो जाने ही दीजिए। लेकिन कुंवर शमशेरसिंह तुरंत ढीले पड़ गये और उन्होंने इस सम्पर्क को स्वीकार कर लिया। बाद में तो वे गांधीजी के स्वास्थ्य सम्बन्धी विषयों के लेखन पर उनके अनौपचारिक चिकित्सक-सलाहकार बन गये।

राजकुमारी गांधीजी के साथ बहुत कम रह पाती थी क्योंकि गांधीजी उन्हें अपने कामों से बाहर भेज दिया करते थे और उनसे शिमला-क्षेत्र में अपने कार्यों की देखभाल करने को कहते थे। 1942 में गांधीजी गिरफ्तार हुए और उन्हें जेल भेज दिया गया। भारत छोड़ो आन्दोलन के दिनों में राजकुमारी को पंजाब की जेल ही में रखा गया। वे पहली बार जेल गयी थीं। उन्होंने मुझे बताया कि उन्हें अपना जेल जीवन अच्छा नहीं लगा क्योंकि वहाँ छिपकलियां और चूहे बहुत थे। वे दोनों से ही डरती और नफरत करती थीं। लेकिन वे जेल में बहुत कम अरसे रहीं। अधिकारियों ने उन्हें अपनी मर्जी से ही छोड़ दिया। गांधीजी के जेल से छूटकर आने के बाद वे उनसे आ मिलीं और उस समय तक उनके साथ रहीं जब तक 15 अगस्त 1947 को वे मंत्रिमंडल में मंत्री न बन गयीं।

नेहरूजी राजकुमारी को महिला मंत्री के रूप में पहले नहीं लेना चाहते थे। वे हंसा मेहता के पक्ष में थे। नेहरूजी ने उन्हें गवर्नर या राजदूत बनाना तय कर रखा था। लेकिन गांधीजी ने राजकुमारी को मंत्रिमंडल में शामिल करने के लिए आग्रह किया और नेहरूजी राजी हो गये।

अपने दस वर्ष के कार्यकाल में केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्री के रूप में उन्होंने देश में मलेरिया पर नियन्त्रण और फिर उसका उन्मूलन किया। आल इन्डिया इंस्टीच्यूट आफ मेडिकल साइंसेज की स्थापना की। मंत्री के रूप में राजकुमारी अपने सरकारी अधिकारियों और चिकित्सा प्रशासकों पर कुछ ज्यादा ही निर्भर करती थीं। मंत्रिमंडल में एक नहीं कई मौके ऐसे आये जब वे अपने मंत्रालय के विचाराधीन प्रस्तावों को पूरी तरह समझा न पायीं। मंत्रिमंडल के अपने साथियों के ज्यादा पूछताछ करने पर वे रो पड़ीं। मामले पर विचार विमर्श को स्थगित कर दिया गया और मंत्रिमंडल की अगली बैठक में उनके मंत्रालय सचिव और स्वास्थ्य-सेवाओं के महानिदेशक को बुलाना पड़ा ताकि मंत्रिमंडल को प्रस्ताव सही तरीके से समझाये जा सकें।

सबसे अधिक सुरुचि सम्पन्न जिन दो महिलाओं से मेरी भेंट हुई है, वे हैं—

राजकुमारी अमतकौर और विजयलक्ष्मी पडित। उनकी सुरुचि उनके सहज व्यक्तित्व अकृत्रिम परिधान और सरल सज्जा म दखी जा सकती थी, जो अधिकाश महारानिया की अश्लील तडक भडक से अलग दीखती थी।

राजकुमारी सक्षिप्त और सुदर भाषण देने म बहुत कुशल थी। भाषण म क्या कहा जा रहा है इसके बजाय लोग उनकी सुमधुर और गहरी आवाज की वजह म उन्ह ध्यान से सुनते थे। लेकिन जहा तक किसी विषय पर सुविचारित भाषण देने या बहस मे बोलने का मबध था, वे जरा भी प्रभावित नही करती थी। उनका लेखन भी कमजोर था। मैंने एक बार ए सी एन नम्बियार से पूछा था कि राजकुमारी फ्रच कैसी बोलती हैं। नम्बियार फ्रच अच्छी तरह जानत थ। उनका जवाब था, ढिठाई कहो।"

काग्रेसी मत्री होते हुए भी वे काग्रेसियो के खिलाफ बोलती रहती थी। लोकसभा के काग्रेस-सदस्यो को यह बहुत बुरा लगता था। वे विरोध-पक्ष के लोकसभा-सदस्या, विशेषकर कम्युनिस्ट सदस्यो, से मेल-जोल रखती थी। उन्ह राजदूता द्वारा बुलाया जाना और अपन घर मे उन्ह आमत्रित करना बहुत अच्छा लगता था। राजदूता के सामने काग्रेस के खिलाफ कटु शब्दा म बोलने की उनकी आदत हो गयी थी। उन्ह यह भान नही था कि इस तरह बालना एक काग्रेसी मत्री को शोभा नही देता। एक बार उन्होने काग्रेसजनो की कटु आलोचना करते हुए प्रधानमत्री को पत्र भेजा, जिसके अत मे लिखा था, 'काग्रेसी बदमाश और धूत हैं। उन्ह अपनी पडी रहती है और उनके सामने शैतान भी मात है।" नेहरूजी नाराज होन के बजाय हँसने लग। उन्होंने उत्तर म लिखा, बधाई के लिए धन्यवाद। मैं भी काग्रेसी हूँ। इस सिलसिले मे मुझे एक कहानी याद आती है। एक अमरीकी महिला राजदूत पोप पायस ग्यारहवें से मिलन गयी। वह अपने जमाने की सबस अधिक सुदर स्त्रिया म स थी लकिन जुबान की बडी तीखी और तज्ञ। उन्होंने कैथोलिक धम की दीक्षा हाल ही म ली थी। व बढ चढकर कैथोलिक धम का महत्व और नये धम-परिवतक के कत्तव्यो के बारे म बोल जा रही थी। व नये-नये मुल्ला का-सा जोश दिखा रही थी। उनके इस लबे चौडे भाषण को मितभाषी पोप न मौन रहकर सुना और केवल एक वाक्य कहा लकिन मादाम मैं भी कथोलिक हूँ।'

एक बार बगलौर म प्रसिद्ध चिकित्सको और डाक्टरो की एक कान्फ्रेंस म राजकुमारी परिवार नियोजन क विषय पर बोली और उन्होने कहा कि इस विषय पर गाधीजी की धारणाओ के सबस अधिक निकट आवतन-पद्धति (रिद्म-मथड) पडती है। फिर व जोश मे आ गयी और उन्होंने कहा अपने अनुभव क आधार पर कह सकती हूँ कि यही पद्धति सबसे अधिक कारगर है।" एक अविवाहिता क मुह से निकले यह शब्द विशिष्ट श्रोताओ क लिए काफी थ लकिन उन्होन अपनी हसी को किसी तरह स रोका। दरअसल राजकुमारी अपन अनुभव के बजाय चिकित्सा-क्षेत्र के अनुभव कहना चाहती थीं।

एक बार राजकुमारी ने लडकिया की-सी खिलखिलाहट के साथ बताया कि एक धना उम्र म बडे विशिष्ट व्यक्ति ने साठ साल की उम्र म उनके सामने विवाह का प्रस्ताव पश किया। व कट्टी उच्चायुक्त थे। प्रस्ताव रखत समय उन्होंने जिन शब्दा का इस्तेमाल किया था, उन पर उन्ह बडी हँसी आयी थी, 'आ अमत क्या तुम मेरी जिन्दगी म आकर मेरे अकेलपन की भागीदार नहीं बन सकती?' बचारे को अपना अकेलापन अपने-आप ही भोगना पडा।

1961 62 के चुनावो म राजकुमारी अमतकौर जालधर निर्वाचन-क्षेत्र से लोकसभा क लिए फिर से चुनाव लडना चाहती थीं। उनमे पहले यह चुनाव-क्षेत्र स्वर्णसिंह माँग चुके थे। राजकुमारी का अपना चुनाव-क्षेत्र हिमाचल प्रदेश म मडी था। काग्रेस की केंद्रीय चुनाव कमेटी जालधर स स्वर्णसिंह को खडा करना चाहती थी। सुझाव दिया गया कि राजकुमारी मडी से खडी हो सकती हैं। फिर पजाब म कथल चुनाव-क्षेत्र से खडा होने के लिए कहा गया जहाँ से जीत की बहुत अच्छी सभावना था। अपना ज़िद म राजकुमारी ने कहा, 'जालधर के अलावा और काइ नही। उन्ह कुछ नही मिला। इसस वे कटु हो उठीं। 1962 म, जब उन्ह मन्त्रिमडल म शामिल नही किया गया तो उनकी कटुता और बढ गयी। मन्त्रिमडल म मत्री न रहने पर उनको 2 प्रेज़ीडन्ट एस्टेट वाला बडा बगला छोडना था। सरकार ने उन्ह अकबर रोड पर अपेक्षाकृत छोटा निवास एलाट किया। बगला बदलन मे दो दिन पहल मैंने प्रधानमत्री को सुझाव दिया कि राजकुमारी को 2 प्रेज़ीडेन्ट एस्टेट म ही रहने दिया जाये, क्योंकि वे रेडक्रास, टी वी एसोसिएशन लप्रोसी एसोसिएशन और आल इडिया इस्टीच्यूट आफ मेडिकल साइसज की नियन्त्रक-कौंसिल की अध्यक्ष है। इनम से एक तो सरकारी सस्थान है। प्रधानमन्त्री की सिफारिश पर राष्ट्रपति ने राजकुमारी को 2 प्रेज़ीडेन्ट एस्टेट का बँगला 500 रुपये प्रतिमास किराये पर फिर स एलाट कर दिया। इस किराय म बिजली-पानी का खच भी शामिल था। राजकुमारी खुश हो गयी और उन्होंने मेरा आभार माना।

मन्त्रिमडल म मत्री न रहने के कुछ समय बाद ही नेहरूजी ने उनसे मध्यप्रदेश का गवनर बनने को कहा लेकिन उन्होने मना कर दिया।

1959 मे जब मैंने प्रधानमत्री निवास छोडा तो राजकुमारी न मुझसे अपन बगले म रहन को कहा। एक सप्ताह मैं उनके यहा ठहरा। लेकिन जब मुझे पता चला कि व खाने और दूसरी चीज़ो के लिए मुझसे पैसा नही लेंगी तो मैं उनके बगले से चला आया और अपन एक मित्र के यहाँ रहने लगा जो लोकसभा सदस्य थे। दो वष बाद राजकुमारी ने मुझे अपने निवास म रहने के लिए कहा और उन्हान मुझस खाने वगरह का खच बेमन से लेना स्वीकार कर लिया। मैं उनके यहाँ आ गया। कुछ अरसे बाद उन्होन मुझसे कहा कि मैं उनक यहाँ उनकी या उनके बडे भाई कुवर शमशेरसिंह की मत्यु जिसकी भी बाद म हो तक रहूँ।

राजकुमारी का व्यवहार अपने परिवार की दूसरी पीढी के प्रति कुछ हद तक कडा था। स्त्रिया के प्रति भी उनका रवया रूखा और अप्रीतिकर था। लेकिन जब वे किसी को कष्ट मे देखती थीं तो उस सहायता देने मे कोइ कसर बाकी नही रखती थी चाह वह व्यक्ति कोई भी हो।

1962 म राजकुमारी अपनी वसीयत म सशोधन करके काफी कुछ मेरे नाम करना चाहती था। मैंने उन्ह ऐसा करने से रोका। फिर उन्होने आल इडिया इस्टीच्यूट आफ मडिकल साइसेज की भूमि पर इस शत के साथ एक बँगले के निर्माण का फसला किया कि वे उनके भाई और मैं जब तक जीवित रह वहाँ ठहर सकें। इसके बाद वह इस्टीच्यूट की सपत्ति मे शामिल हो जायेगा। मुझे अब अफसोस होता है कि मैंने उन्हे इस फसले पर अमल न करने की सलाह क्यों दी? उन्होने और उनके भाई न शिमला की अपनी शाही इमारत भारत सरकार को उपहार-स्वरूप देने की मेरी सलाह भी मान ली। यह काम 1963 म किया गया और भारत के राष्ट्रपति ने प्रधानमत्री की सहमति से 2 प्रेज़ीडेन्ट एस्टेट का

बंगला जीवन-पर्यन्त निःशुल्क उनके रहने के लिए प्रदान कर दिया। लेकिन दुख है कि राजकुमारी की मृत्यु अगले वर्ष ही हो गयी। लेकिन उनके भाई 1975 के मध्य तक इस बंगले में रहे। उस समय उनकी उम्र छियानवें वर्ष थी। मैं भी उनके साथ अंत तक रहा और इस तरह राजकुमारी से जो वादा किया था, निभाया।

राजकुमारी ने मां की तरह मेरी देखभाल की। इस साहसी और कमाल की महिला के बारे में सुखद स्मृतियां ही मेरे मन में रह गयी है।

26

विजयलक्ष्मी पडित

शता-ी के प्रारभ के साथ ज-मी स्वरूप अपने समय की सबसे खूबसूरत स्त्रियों म स थी। बचपन म उ-हे यही नाम दिया गया। कश्मीरी ब्राह्मणो म प्रचलित रिवाज के अनुसार विवाह के समय उनका नाम बदलकर विजयलक्ष्मी हुआ। नेहरू और निकट सबधियो और मित्रो के लिए वे नान थी।

उ-हे जीवन म सुख देने वाली वस्तुआ से प्यार था। अपनी युवावस्था म वे अच्छे खाना की पारखी और स्वादिष्ट खाना पकाने म पटु थी। अपने पिता और भाइ की तरह वे जो कुछ पहन लेती वही उन पर फब जाता। अपनी छोटी-सी काया म इतनी सुरुचि समटने वाली इस महिला को देखकर जी खिल उठता था। अपनी वद्धावस्था म भी वे आकपक हैं हालाकि पिछल वरसो म उ-होने अपने शरीर क प्रति लापरवाही ही बरती है। वे उदार थी लकिन दुर्भाग्य से फिजूल खच भी। इसस उ-हे बाद म परेशानी उठानी पडी।

नेहरू-परिवार म केवल मोतीलाल और जवाहरलाल न स्वच्छा से सुख का जीवन त्यागने और सादा जीवन अपनाने का निणय उस समय लिया था जब उ-होन अपन को राष्ट्रीय सघप म झोक दिया था। विजयलक्ष्मी समेत परिवार के शप सदस्य स्थितियो के तजी से बदलने की चपेट म आकर बदले। अपने को परिस्थितियो क अनुकूल ढालना सुगम नही था।

विजयलक्ष्मी न 1945 का पूरा वप और 1946 का एक भाग अमरीका म बिताया जहा उ-होने अँग्रेजो और उनके पिट्ठू गिरिजाशकर बाजपेयी के प्रचार को काटते हुए भारतीय-स्वाधीनता क लिए अच्छा काय किया। इस दष्टि से राष्ट्-सघ के ज म के समय प्रेक्षक के रूप मे उनकी सा-फ्रासिसको म उपस्थिति उचित ही थी।

1947 म विजयलक्ष्मी पडित को उत्तर प्रदेश के मत्रिमडल मे से निकालकर

सोवियत यनियन मे राजदूत बनाकर भेज दिया गया, जो उनके-से स्वभाव वाले व्यक्ति के लिए बिल्कुल गलत जगह थी। उनमे अपने से बाद म उसी स्थान पर आने वाले व्यक्ति राधाकृष्णन जैसी दार्शनिक अनासक्ति नही थी। स्टालिनवादी युग के मास्को का वातावरण फीका था और वहा भयानक सख्ती और कठोर अनुशासन का दौर दौरा था। ऐसे वातावरण मे उनका निबाह नही था। यहा तक कि उन दिनो सोवियत यूनियन मे नेहरूजी तक को साम्राज्यवादी पिट्ठू माना जाता था। मास्को म उनका कार्यकाल छोटा रहा और उन्ह राजदूत के रूप मे वाशिंगटन भेज दिया गया। उन्होने मुझे बताया था कि मास्को म वे जब तक रही उन्ह नैतिक हार का सा एहसास होता रहा। लेकिन वहा से निकलते ही उन्हें राहत की साँस मिली।

वाशिंगटन की सोसायटी उनके अनुकूल थी। उसमे वे खूब रमी और उन्ह वहाँ दरबार लगाना और पार्टियो म आमन्त्रण निमन्त्रण का सिलसिला बहुत भाया। फिजूलखर्ची चरम सीमा पर थी। उन्होने नेहरूजी से बिना पूछे उनके अमरीकी प्रकाशक से रायल्टी खाते मे से पैसा निकलवा लिया। मुझे प्रकाशक को लिखना पडा कि नेहरूजी या मेरी लिखित अनुमति के बिना रायल्टी खाते म से किसी को कोई रकम न दी जाये।

1946 के बाद से 1953 तक उन्होने राष्ट्र-सघ की महासभा म भारतीय प्रतिनिधिमडल का नेतत्व बडी सफलता के साथ किया। बीच म केवल एक वर्ष व नेतत्व न कर सकीं। 1953 म वे राष्ट्र-सघ की महासभा की अध्यक्ष चुनी गयी। 1953 के बाद से नेतत्व का काम कृष्णमेनन ने सभाल लिया।

तब विजयलक्ष्मी मनमौजी थी और उन्ह अतिम क्षण मुलाकात वगैरह रद्द करने की आदत-सी पड गयी थी। एक बार राष्ट्र सघ म उन्होने हेनरी कबट लाज के साथ भी यही किया। उनका नाराज होना स्वाभाविक था। उन्होने सदेश भेजा यहा बोस्टन म भी ब्राह्मण रहते हैं।' बोस्टन म न्यू इग्लड के परिवारो को 'बोस्टन-ब्राह्मण' कहा जाता था। कैबट लाज का परिवार बोस्टन के विख्यात परिवारो म म है।

गाधीजी की हत्या के तुरत बाद राजकुमारी अमतकौर न नेहरूजी के पास गाधीजी की सीलबद फाइल भेजी। नेहरूजी ने फाइल खोली और उसम रखे कागजो का सरसरी तौर पर देखने के बाद मुझे बुलाया और कहा 'यह कागज जवान विजयलक्ष्मी के सैयद हुसैन के साथ भाग जाने से सबधित हैं। बेहतर है तुम इन्हें जला दो।' मैंने उनमे आग्रह किया कि व मुझे इन्ह अपने निजी सग्रहालय म रखने दें, लेकिन वे इसके पक्ष म नही थे। मैंने फाइल उनसे ली और सीधा प्रधानमत्री निवास के बावर्चीखाने मे पहुँचा। मैं तब तक वहीं खडा रहा, जब तक सारे कागज जलकर राख न हो गये।

विजयलक्ष्मी को यह कमाल हासिल था कि जब कोई आगन्तुक उनके सामने होता तो व उसम बहुत ही मीठी मीठी बातें करती, लेकिन जहाँ उसने पीठ फेरी, उनकी बातें बहुत ही कडवी हो जाती। शायद यह कूटनीति का ही कोई गुर है।

मुझे खबर लगी थी कि विजयलक्ष्मी न मेरे खिलाफ यह कहा है कि मैं इन्दिरा को उनके खिलाफ खडा कर रहा हूँ। लेकिन सचाई यह है कि मैंने किसी को किसी के खिलाफ खडा नही किया।

वाशिंगटन म अपना कार्य-काल पूरा करके विजयलक्ष्मी 1952 म भारत लौट आयीं और वे लोकसभा के लिए चुन ली गयीं। उन्ह उम्मीद थी कि वे मन्त्रिमडल

में मत्री बना दी जायेंगी। लेकिन नेहरूजी को यह ठीक नहीं लगा कि सामान्य स्थिति म अपनी बहन को मत्रिमडल म ले आयें। 1953 म राष्ट्र सघ की महा सभा के अध्यक्ष-पद पर उनके चुन लिय जाने पर इस क्षति की पूर्ति हो गयी। जब विजयलक्ष्मी लोकसभा की सदस्य बनी तो नेहरूजी ने मुझ से कहा कि निर्माण और आवास मत्री से कहकर इ ह नयी दिल्ली म बँगला दिला दिया जाये। मैंने कहा कि इससे फालतू की नुक्ताचीनी होगी। मैंने प्रस्ताव रखा कि प्रधानमत्री निर्माण मत्री से कह कि जो ससद सदस्य मत्रिमडल के मत्री गवनर या दूतावास के अध्यक्ष रह चुके है उनके और दोनो सदनो म विरोधी पक्ष के नेताओ के लिए कुछ बगले अलग रखे जायें। नेहरूजी को प्रस्ताव अच्छा लगा और उ होने इस आशय का पत्र निर्माण मत्री को लिख दिया। इस प्रकार विजयलक्ष्मी को बँगला मिल गया और प्रधानमत्री तथा वे स्वय आलोचना से भी बच गये।

ससद म विजयलक्ष्मी का दिल न लगा। विदेश मत्रालय के महा-सचिव ने मुझसे सलाह करके बी जी खेर के स्थान पर लदन म उच्चायुक्त बनकर जाने का आग्रह उनसे किया। वे तुरत चली गयी। उच्चायुक्त के रूप म उ होने अच्छा काम किया।

विजयलक्ष्मी जब लदन म थी तो वाशिंगटन म हमारे राजदूत जी एल मेहता का एक पत्र प्रधानमत्री के नाम आया जिसके साथ हेनरी ग्रेडी का एक पत्र नत्थी था। हेनरी ग्रेडी इससे पहले दिल्ली मे अमरीकी प्रतिनिधि रह चुके थे। उ होने विजयलक्ष्मी के उस समय के एक पत्र की फोटो प्रति भेजी थी, जब वे वाशिंगटन म राजदूत थी और उसमे उ होने काफी बडी रकम उधार माँगी थी।

SWERLING BROTHERS
25 BROADWAY
NEW YORK 4, N Y

PERSONAL

Jun 29 19 4

Mr B M Bi la
8 Royal Exchang Plac
Calcutta Indi

Dea Mr Bi l

I have you ter f Jun 3rd regardi g Mr Pan it

I Septembe 1947 paid h $3000 00 I think thi paymen wa mad on in truction from Mr G D Bi la W ha wri ten receip from Mrs Pand f thi amoun dated Sep embe 17 1947 and also ha th can lled heque wh h ent h end rsed by he to the Cha N tional Bank Thi ha been repai to and th amount tand on our boo d bit gain t the Bi la J t Mfg Co Ltd

Please note that on Ma 13 1950 ga Mr Pandi an additional heque f $5000.00 She requested thi amount i writi g t th time loan for short ti but th f t i tha thi loan ha ever been entirely repaid W wrote and tel phoned he evera ti bo t t an finall on No embe 2 1951 paid ba k $3000 00 leavin balan f $2000.00 till unpaid I N embe 1951 he proci ed in writing that the remaining $ 000 00 ould be paid within ho t 51 bu have been able to co se thi and se ral l tt rs hi h we wrote h bout it have remai ed unanswe red

I spok to M F Bi la bou thi and he ha sugg ted that d bit the balanc f $2000 00 to the Bi la J t M g C Please advi if you have any ther i truction I tn t

Yours 1 rely

SIS R

Wellesley College
Wellesley, Mass.
5 May, 1947.

Swerling Brothers
96 Wall Street
New York 5, N.Y.

Dear Miss Weiser,

I have your letter dated May 1, 1947, and the enclosed cheque for $600.00.

Thanking you,
Yours truly,
Tara Pandit

THE JOHN DAY COMPANY INC. PUBLISHERS

RECEIVED
JAN 11 1946
SWERLING BROTHERS

40 EAST 49th STREET · NEW YORK 17, N.Y.

January 9, 1946

Mr. Simon Swerling
Swerling Brothers
96 Wall Street
New York 5, New York

Dear Mr. Swerling:

Thank you for the check of $1200.

I am enclosing a copy of my letter to Mr. Richard Walsh of the John Day company. In the event of the money from the Reserve Bank not coming here during the next few weeks I shall, on reaching home, make the necessary arrangements for repayment. I am flying from Washington on the 18th. My home address is Anand Bhawan, Allahabad, India.

Yours sincerely,

Vijaya Lakshmi Pandit

Vijaya Lakshmi Pandit

इस पत्र में उन्होंने विदेशी मुद्रा की कमी के कारण भारत सरकार द्वारा समय पर उनका वेतन और परिलब्धियाँ न भेज पाने का चमत्कारी कारण दिया था और इस आधार पर ऋण माँगा था। ग्रेडी ने लिखा था कि बार-बार लिखने पर भी विजयलक्ष्मी ने वह ऋण नहीं लौटाया है। इसलिए उन्हें अपना पैसा वापस लेने में राजदूत मेहता की सहायता लेनी पड़ी है। प्रधानमंत्री सकते में आ गये और उन्होंने विजयलक्ष्मी को लंदन में पत्र लिखा कि यह कर्ज तुरंत लौटा दें।

1954 के उत्तरार्द्ध में इन्कम टैक्स इन्वेस्टीगेशन कमीशन के अध्यक्ष ने प्रधानमंत्री को चुपचाप बताया कि बिड़ला की दो बड़ी कंपनियों की बहियों में दो ऐसे इन्दराज हैं, जिनमें विजयलक्ष्मी को काफी भारी रकमें दी गयी हैं। प्रधानमंत्री ने मुझसे बिड़ला से संपर्क करने और इस तथ्य की पुष्टि माँगने को कहा। मैं इस मामले में अपने को नहीं उलझाना चाहता था, लेकिन मुझसे जो कहा गया, मुझे करना पड़ा। जी डी बिड़ला ने रिपोर्ट की पुष्टि कर दी। उन्होंने कहा, "केवल ऐसे एक ही राष्ट्रीय नेता हैं जिन्होंने हम से पैसा नहीं लिया और वे हैं पंडितजी। श्रीमती पंडित समेत बाकी सभी ने लिया है।" फिर उन्होंने गांधीजी और सरदार पटेल से शुरू करके नीचे तक नाम गिनाने शुरू किये। उन्होंने बताया कि बिड़ला ग्रुप की बहियों में जयप्रकाश नारायण को उनका निजी सचिव दिखाया गया है और गांधीजी की हत्या के समय तक उन्हें हर महीने तगड़ा वेतन दिया गया है। गांधीजी की हत्या के सिलसिले में जयप्रकाशजी ने सरदार पटेल की कड़ी आलोचना की तो पटेल ने आगे से जयप्रकाशजी को वेतन देने के लिए उन्हें मना कर दिया। जी डी बिड़ला ने मुझसे अनुरोध किया कि मैं प्रधानमंत्री से पूछकर उन्हें बता दूँ कि क्या जयप्रकाश नारायण को वेतन देना शुरू कर दिया जाये। मैंने उनसे कहा, 'इस तरह के मामले में प्रधानमंत्री कोई सलाह नहीं देने वाले हैं। आप अपने आप फैसला करें। अगर मैं आपकी जगह होता तो न केवल उन्हें वेतन भेजना शुरू कर देता, बल्कि उन महीनों का वेतन भी एकमुश्त भेज देता जिन महीनों में उन्हें वेतन नहीं दिया गया है।'

मैंने प्रधानमंत्री को बताया कि जी डी बिड़ला ने तथ्य की पुष्टि कर दी है। उन्होंने विजयलक्ष्मी को लंदन पत्र लिखा और इस मामले के बारे में पूछा। श्रीमती पंडित ने सभी बातों से इंकार करते हुए उत्तर भेजा। प्रधानमंत्री ने बिड़लाजी से उन रकमों की रसीदें मँगाने को मुझसे कहा। मैंने बमन से फिर उनसे संपर्क किया। उन्होंने बताया कि भारत में रुपये में किये भुगतानों की तो कोई रसीदें न होंगी लेकिन विजयलक्ष्मी या और किसी ने न्यूयार्क में बिड़ला कंपनियों के एजेंट से डालर में रकम ली होगी तो उनकी रसीदें जरूर होंगी। उन्होंने मुझसे पूछा "क्या रसीदें मँगाने से कोई लाभ निकलने वाला है?" फिर भी उन्होंने अपने छोटे भाई बी एम बिड़ला से न्यूयार्क से रसीदें मँगाने को कह दिया। बी एम बिड़ला ने रसीदों की फोटो प्रतियाँ भेज दीं और वे मैंने प्रधानमंत्री को दिखायीं।

मैंने प्रधानमंत्री से कहा कि इस मामले में और ज्यादा चिंता करने से कोई लाभ निकलने वाला नहीं है। इस दुखद अध्याय को यहीं बंद कर दें तो ठीक रहेगा।

लंदन में अपना कार्यकाल पूरा करने के बाद वे भारत लौटीं तो उन्हें बंबई का गवर्नर बनाकर भेज दिया गया। 1962 में उन्हें आशा थी कि उन्हें राधाकृष्णन के स्थान पर उपराष्ट्रपति पद के लिए चुन लिया जायगा। लेकिन यह विचार नेहरूजी के आसपास भी नहीं था। वे जाकिर हुसैन को ले आये।

नेहरूजी की मृत्यु के कुछ अरसा बाद विजयलक्ष्मी ने पूना से मुझे पत्र लिखा कि क्या मैं कुछ दिनों के लिए उधर नहीं आ सकूँगा क्योंकि उन्हें अपने भविष्य के बारे में मुझसे कुछ बातें करनी हैं। मैं पहुँच गया। उन्होंने मुझसे कहा कि वे उप-चुनाव में नेहरूजी के निर्वाचन-क्षेत्र से लोकसभा के लिए चुनाव लड़ना चाहती हैं लेकिन इन्दिरा इसका कड़ा विरोध कर रही है। लालबहादुर और कामराज राजी हैं और उनका ख्याल था कि उन्हें कांग्रेस का टिकट मिल जायगा। इस विषय में उन्होंने मुझसे सलाह माँगी। मैंने उनसे कहा कि मात्र सदस्य-मात्र बने रहने के लिए मानसिक रूप से तैयार होकर ही उन्हें सक्रिय राजनीति में आना चाहिए क्योंकि मंत्रिमंडल में इन्दिरा के होते हुए नेहरू-परिवार की किसी और महिला के लिए उसमें कोई स्थान नहीं है। साथ ही मैंने यह भी कह दिया कि अगर वह इसके लिए मानसिक रूप से तैयार नहीं हुईं तो मात्र सदस्य-मात्र के काम से उन्हें निराशा और हताशा ही हाथ लगेगी। दूसरी तरफ राजभवन में उनके पास अपने संस्मरण लिखने के लिए पूरी सुविधाएँ और पूरा समय है जिन्हें लिखने की योजना वे एक अरसे से बना रही हैं। उन्होंने कहा कि वे गवर्नर रहते रहते ऊब चुकी हैं क्योंकि गवर्नर मदारी के बन्दर से ज्यादा कुछ नहीं। इस तरह वे राजनीति में फिर से कूद पड़ीं और लोकसभा के लिए चुन ली गयीं। यह सब देखकर मुझे अफसोस हुआ।

नेहरूजी की मृत्यु के बाद का समय विजयलक्ष्मी के लिए न केवल असन्तोष का था बल्कि कष्टों का समय रहा। इन्दिरा से उनकी पहले भी कभी नहीं बनी। लेकिन जब इन्दिरा प्रधानमंत्री बन गयीं तो विजयलक्ष्मी के दिन लद गये। इन्दिरा अपनी बुआ से बदला लेकर आनन्दित होती रही जो कि क्रूरता थी। इन्दिरा ने उन्हें सरकारी समारोहों तक में आमंत्रित करना बन्द करा दिया। लोगों में हवा फैल गयी कि विजयलक्ष्मी से संपर्क रखने से इन्दिरा नाराज होती है। उत्तरोत्तर लोगों ने उनसे मिलना-जुलना बन्द कर दिया। जब स्थितियाँ असहनीय हो उठीं तो उन्होंने लोकसभा से त्यागपत्र दे दिया और वे दिल्ली से चली गयीं और देहरादून में रहने लगीं।

1977 के चुनावों में विजयलक्ष्मी घायल शेरनी की तरह अपने वनवास से लौटीं और उन्होंने अपनी भतीजी को पछाड़ने में मदद दी। भारत के पूरे गत वर्षों में से प्रतिशोध के अदम्य मनोवेग के नाटक की चरम परिणति पर अन्तिम यवनिका उठती हुई मैंने देखी। बेशक अब विजयलक्ष्मी कहती हैं कि यह सब प्रजातंत्र, कानून और मानवीय मूल्यों की फिर से स्थापना के लिए था। यह भी गलत तो नहीं है।

कुछ वर्षों पहले विजयलक्ष्मी ने मुझसे पूछा था, "भाई ने अपने जीवन के अन्तिम दौर में मेरी तरफ बिल्कुल ध्यान देना क्यों छोड़ दिया था?" मैंने उस समय इस प्रश्न का उत्तर नहीं देना चाहा था और बात का रुख बदल दिया था। इस अध्याय में इस प्रश्न का मैंने आंशिक उत्तर दे दिया है। शेष उत्तर यह है कि नेहरूजी अपनी बेटी का प्रतिद्वंद्वी तैयार करना नहीं चाहते थे जो आयु में विजयलक्ष्मी से कहीं छोटी थी। इस विषय में और बातें इन्दिरा से सम्बन्धित अध्याय में।

27

कुछ पुस्तकें

एस गोपाल 'बायोग्राफी आफ जवाहरलाल नेहरू' (वाल्यूम 1)

यह पुस्तक बड़ा निराश करती है। ऐसी पुस्तक लिखने के लिए नेहरू मेमोरियल फंड ने लेखक को पैसा और दूसरी सुविधाएँ देने में बड़ी फिजूलखर्ची से काम लिया है और फिर रायल्टी रखने की अनुमति भी दे दी है। पुस्तक बिल्कुल नीरस है। पढ़ते हुए लगता है कि जैसे किसी इतिहास में एम लिट के विद्यार्थी का शोध पढ़ रहे हों। ज्यादा-से ज्यादा यह एक छोटी-सी अलमारी है, जिसमें तथ्यों को फाइलों की तरह ठूंस दिया गया है।

पुस्तक में एक गढ़ी हुई कहानी है जो किसी भी तरह इतिहास का हिस्सा नहीं बननी चाहिए। वह है, 1946 में मोलोतोव के साथ कृष्ण मेनन की भेंट में हुई बातचीत। गोपाल साहब लिखते हैं

> किसी भी बड़े गुट से निरपेक्ष स्वतंत्र विदेश-नीति का आधार तैयार करने के लिए नेहरूजी ने ब्रिटिश राजनयिक प्रतिनिधियों का इस्तेमाल करने के बजाय अनौपचारिक संपर्क बनाना बेहतर समझा। जवाहरलाल नेहरू के निजी दूत के रूप में कृष्ण मेनन ने मोलोतोव से मुलाकात की और सोवियत यूनियन से मैत्रीपूर्ण संबंध कायम करने की इच्छा व्यक्त की और खाद्यान्न के मामले में सहायता मांगी। मेनन ने मोलोतोव से भारत में रूस के सैनिक विशेषज्ञों के दौरों की संभावना के बारे में भी बात की जबकि इस तरह की कोई बात करने के लिए उनसे नहीं कहा गया था। इससे न केवल ब्रिटेन के कॉमनवेल्थ आफिस और भारतीय विदेशी मामलों के विभाग को ही परेशानी हुई बल्कि कैबिनेट में जवाहरलाल नेहरू के कुछ साथी भी चिंता में पड़ गए। कृष्ण मेनन को उनके नेता (नेहरू) ने एक पत्र में हल्की ताड़ना दी। कैरियर के दौरान ताड़ना के इस तरह के कुछ पत्रों में से यह पत्र पहला था

भारत और सोवियत संघ के बीच राजनयिक संबंध कायम करने की आधार शिला रखने से संबंधित तथ्य इस प्रकार हैं।

1946 की सर्दियों के शुरू में विजयलक्ष्मी पंडित राष्ट्र संघ की महासभा में भारतीय प्रतिनिधि मंडल का नेतृत्व कर रही थीं। उसमें वी के कृष्ण मेनन पूरे प्रतिनिधि न होकर वैकल्पिक प्रतिनिधि थे। भारतीय प्रतिनिधि मंडल के नेता को नेहरूजी ने तार भेजा कि कृष्ण मेनन और के पी एस मेनन महासभा के सत्र की समाप्ति पर मास्को चले जायें और राजनयिक संबंध कायम करने के विषय पर सोवियत सरकार से बात चलायें। इसका उल्लेख भारतीय प्रतिनिधि-मंडल के महासचिव ने एक सोवियत प्रतिनिधि से किया और कहा कि इसकी सूचना विदेश मंत्री मोलोतोव को दे दें जो सोवियत प्रतिनिधि मंडल का नेतृत्व कर रहे थे। इस पर मोलोतोव ने श्रीमती पंडित और भारतीय प्रतिनिधि मंडल को अपने यहाँ शानदार लंच पर आमंत्रित किया, जहां वोदका और वाइन खूब चली। लंच खत्म होते-होते भारतीय और सोवियत यूनियन के बीच राजनयिक संबंध पूरी तरह से कायम हो चुके थे। मोलोतोव ने कहा कि इस काम के लिए किसी का मास्को जाना जरूरी नहीं और वे इसकी सूचना अपनी सरकार को देंगे। उन्हें पक्का विश्वास था कि सोवियत सरकार हमारे इस सुझाव का निश्चित रूप से स्वागत करेगी।

यहाँ यह उल्लेख भी कर दिया जाये कि नेहरूजी के समय में कृष्ण मेनन कभी भी सोवियत यूनियन के दौरे पर नहीं गये। मेरा खयाल है कि 1967 के आस पास जब वे सरकार में नहीं थे तो कृष्ण मेनन पहली बार रूस गये थे। यह दौरा वर्ल्ड पीस कौंसिल की किसी बैठक के सिलसिले में था।

गोपालजी ने अपनी पुस्तक में कृष्ण मेनन को कई जगह अँग्रेज परस्त कहा है। यह तो वही बात हुई कि छलनी छलनी को कहे कि तुझमें सत्तर छेद।

मौलाना आजाद "इंडिया विन्स फ्रीडम"

यह पुस्तक मौलाना अब्दुल कलाम आजाद ने शाम के समय हुमायूं कबिर को बोल-बोलकर लिखवाई थी जब वे मुक्त मूड में होते थे।

मौलाना ने इसमें उत्तरी-पश्चिमी सीमांत प्रदेश में मलाकंद में पोलिटिकल अफसर के खिलाफ मामला रफा-दफा करने की प्रशंसा की है। इस अफसर ने अक्तूबर 1946 के मध्य में इस इलाके के दौरे पर गये नेहरूजी और उनके दल के खिलाफ प्रदर्शन करने और उन पर गोली चलाने के लिए कबायलियों को उकसाया था और साफ-साफ मुस्लिम लीग के एजेंट की-सी शमनाक हरकत की थी। नेहरूजी और खान साहब पहली कार में थे। मैं दूसरी कार में कुछ वरिष्ठ पुलिस अफसरों के साथ पीछे पीछे चल रहा था। नेहरूजी की कार पर एक गोली आकर लगी। हम सब कार से उतर पड़े। तभी एक गोली मेरी नाक को छूती हुई निकल गयी। अपनी नाक के लंबी न होने पर पहली बार मुझे संतोष हुआ।

दिल्ली लौटने पर नेहरूजी ने अपराध की सीमा तक गलती करने वाले उस अफसर के विरुद्ध अनुशासनात्मक कारवाई करने का मामला हाथ में लिया। वायसराय लॉर्ड वेवल ने उनकी इस कोशिश को असफल करने के लिए हर संभव उपाय किया। मामला खिंचता गया और निराश होकर नेहरूजी ने इसे छोड़ ही दिया। लेकिन उन्होंने अपनी नाराजगी जाहिर कर दी थी। इस अफसर के प्रति विभाजन-पूर्व प्रशासन के बारे में मौलाना की धारणा बहुत भ्रामक थी जिस पर

अपराधपूर्ण कदाचार का आरोप हो।

मौलाना आज़ाद कहते हैं कि 15 अगस्त 1947 को जब पहली अधिराज्य सरकार बनी तो गांधीजी ने उनसे शिक्षा मंत्रालय संभालने का आग्रह किया था जो बहुत महत्वपूर्ण था। यह सरासर गलत कथन है। गांधीजी प्रायः सोमवार को मौन रखते थे और इसलिए उन्होंने नेहरूजी को पुराने लिफाफे के भीतरी तरफ व्यक्तिगत रूप से लिखकर भेजा था कि वे मौलाना को शिक्षा-मंत्री न बनाएं क्योंकि उन्हें पक्का भरोसा है कि मौलाना शिक्षा का सत्यानाश कर देंगे। गांधीजी ने साथ ही यह भी लिख दिया था कि मंत्रिमंडल में उन्हें बिना विभाग का मंत्री बना दिया जाय और वे वरिष्ठ राजनीतिज्ञ के रूप में कार्य करें। नेहरूजी गांधीजी की राय न मान सके क्योंकि मौलाना की ज़िद थी कि या तो शिक्षा मंत्रालय या कुछ नहीं।

गांधीजी का यह पत्र उस संग्रहालय में है जो मैंने 1946 से ही बड़ी मेहनत के साथ बनाया था और बाद में प्रधानमंत्री के ही निवास में छोड़ आया था जिसे अब तीनमूर्ति हाउस कहा जाता है।

प्रसंगवश यह बता दूं कि गांधीजी ज़ाकिर हुसैन को शिक्षा मंत्री बनाना चाहते थे।

हीरेन मुखर्जी 'द जंटल कोलोसस'

नेहरूजी की मृत्यु के बाद जितनी पुस्तकें लिखी गयी हैं, उनमें यह छोटी सी पुस्तक मुझे सबसे अच्छी लगी है। बेशक इसके आकार का यह दावा नहीं कि यह विस्तृत जीवनी है। बस इस विषय में लेखक को कोई गलतफहमी भी नहीं है।

28

मौलाना अबुल कलाम आजाद

खूबसूरत, प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी मुस्लिम तत्त्वज्ञानी आजाद सुथरी मूछों और अच्छी तरह तराशी दाढ़ी तथा फैज टोपी से और भी प्रभावशाली दीखते थे। व बरजस्ता उर्दू म बहुत अच्छे वक्ता थे। वे ससद मे बहुत कम बोले, लेकिन जब भी बोले सदस्यो म सीटो पर पहुँचने के लिए होड लग गयी। उन्हे मुस्लिम धर्म-श्रुतियों का विस्तृत ज्ञान था और कुरान पर उनकी लिखी व्याख्या विश्व भर म प्रसिद्ध है। बस उनका तत्त्वज्ञान यही तक था। बाकी मामलो म व पूरे ससारी थ और जीवन म सुख देने वाली चीजो से उन्हें मोह था।

1945 म जेल से छूटने के कुछ अरसे बाद कुछ पुरातनपथियो ने गाधीजी स शिकायत की कि मौलाना जेल म नियमित रूप से शराब पीते थ राजकुमारी अमतकौर ने मुझे बताया था कि जेल स छूटने के तुरत बाद की उनकी मुलाकात म गाधीजी ने मौलाना स पूछा कि क्या वह पीते थे। मौलाना न साफ इकार कर दिया। लेकिन गाधीजी के दिमाग मे शक बना रहा।

28 अप्रल 1946 को कांग्रेस की कार्यकारिणी कमेटी ब्रिटिश केबिनेट मिशन के सुझावो पर अभी विचार ही कर रही थी कि तभी गाधीजी पर खबर पहुँची कि मौलाना न बिना उन्हे या कार्यकारिणी समिति को बताये एक पत्र केबिनेट मिशन को लिख दिया है। मौलाना उस समय कांग्रेस के अध्यक्ष थे। इस पत्र का मसौदा तयार करने वालो म हुमायू कबिर भी थे। मौलाना ने साम्प्रदायिक समस्या के हल के बारे मे अपने और केबिनेट मिशन के विचारों मे साम्यता ढूढ निकाली थी। मौलाना ने हल सुझाया था कि सघीय ढाचे मे अधिकारो का अधिकतम विकेन्द्रीकरण हो और प्रातो को कुछ विषयो को छोडकर बाकी सभी म अधिकतम स्वायत्तता दी जाये। केंद्र के पास केवल रक्षा, विदेशी मामले और सचार रहें। केबिनेट मिशन को अपने कठिन काय म मौलाना के रूप मे एक

समथक मिल गया। कैबिनेट मिशन को व्यक्तिगत रूप से लिखे अपने पत्र म मौलाना ने लिखा था कि केबिनट मिशन गाधीजी या कबिनेट मिशन क प्रस्तावा क सबध म उनके स नेहो के बारे म ज्यादा चिता न कर। गाधीजी के कहने पर सुधीर घोष केबिनेट मिशन स किसी तरह से यह पत्र उधार माँगकर ल आये। गाधीजी ने यह पत्र पढ़कर अपने बाजू की चौकी पर रखा ही था कि मौलाना उनसे पहले स तय मुलाकात क लिए आ पहुँचे। राजकुमारी अमतकौर उस समय पास ही पर्दे के पीछे बैठी थी। उन्होने मुझ बाद म बताया कि उन्होने गाधीजी को मौलाना से केवल एक प्रश्न का सीधा उत्तर माँगते हुए सुना था। वह प्रश्न था—क्या उन्होन केबिनेट मिशन से चल रही बातचीत के बार म कोई पत्र मिशन को लिखा है ? मौलाना साफ मुकर गये कि उन्होने इस तरह का कोई पत्र लिखा है। गाधीजी स्तभित रह गये और उन्ह इस बात का बडा सदमा पहुँचा कि मौलाना ने उनसे झूठ बोला।

फिर पता चला कि 22 जून 1946 को मौलाना न वायसराय लाड वविल को आश्वासन देते हुए एक और व्यक्तिगत पत्र लिखा है कि व काग्रेस-अध्यक्ष की हैसियत से अतरिम सरकार म काग्रेस की सूची म एक भी मुस्लिम नाम शामिल नही होने देंगे और अगर उनका नाम शामिल करन का प्रस्ताव आया तो वे भी इकार कर देंगे। इस बार भी पत्र का मसौदा हुमायू कबिर ने तैयार किया था। इससे न केवल गाधीजी बल्कि नेहरूजी और कार्यकारिणी के दूसरे सदस्य हडबडा गय। लकिन परिस्थितिया ने मौलाना का साथ नही दिया और नेहरूजी तथा दूसरे लोगो ने मिलकर मौलाना को काग्रेस अध्यक्ष के पद से हटा दिया। वास्तव म नेहरूजी ने 2 सितम्बर 1946 को काय भार सभालन वाली अतरिम सरकार म तीन मुस्लिम सदस्य शामिल किये थ। अत इससे बाहर रहने के अलावा मौलाना के पास और कोई चारा न रहा।

इस पुस्तक के कई अध्यायो म मैंने मौलाना का उल्लेख किया है। मौलाना बदले की भावना रखने वाले व्यक्ति थे। कृष्ण मेनन का तीव्र विरोध करने का उनके पास कारण था। मौलाना लदन के दौरे पर थे प्रधानमत्री ने उनके नाम एक कोड-तार उच्चायुक्त को भेजा। यह तार उन्ह उनके लदन मे आन के सातवें दिन दिया गया। फिर कृष्ण मेनन आमतौर स उनकी परवाह नही करते थे। कृष्ण मेनन को पता होना चाहिए था कि मौलाना तुनुक मिजाज और दभी व्यक्ति है। और अगर कृष्ण मेनन मौलाना के लिए कुछ आध्यात्मिक भोजन का प्रबध कर देते तो उनका क्या घट जाता !

जब मौलाना जमनी गय तो व कोलोन म हमार दूतावास म राजदूत ए सी एन नम्बियार के मेहमान थ। नम्बियार बहुत ही सावधानी बरतने वाल उम्दा मेजबान थे और उन्ह मौलाना की आदतों और रुचियो की जानकारी थी। उन्होन मौलाना के कमरे म एक छोटी सी बार लगवा दी जिसम व्हिस्की ब्राडी सोसल व्हाइट वाइन राइन रड वाइन और फ्रेंच शम्पेन की बोतलें सजी थी। देश स बाहर मौलाना को शैम्पेन खास पसन्द आती थी। नम्बियार को पता चला कि मौलाना को बोतलों से घिरा उनके कमरे म अकेला छोड दो तो व बहुत खुश रहत हैं। फिर भी नम्बियार को एक शिकायत रह गयी। उन्होन मौलाना के सम्मान म एक रात्रि भोज दिया था, जिसमे जमनी के अनक महत्वपूण व्यक्ति मत्री और दूसर लोग आमत्रित थे। भोज क तुरत बाद मौलाना चुपचाप खिसक गय और अपने कमरे म अकेल शम्पेन की चुस्किया लेने म मशगूल हो गय। बिल्कुल यही

हास्यास्पद बात लदन म हुआ। मौलाना विजयलक्ष्मी पडित के मेहमान बनकर मितनियम लेन म उच्चायुक्त के आवास म ठहर थ । श्रीमती पडित न मौलाना के सम्मान म एक रात्रि भोज का आयोजन किया । इसम निमन्त्रित मेहमानो म सर एथनी इडन, लाड माउटबेटन और अन्य गण्यमान व्यक्ति शामिल थे । रात्रि भोज जिस क्षण खत्म हुआ उसी क्षण मौलाना बिना अपनी तरफ किसी का ध्यान खचे चुपचाप गायब हो गय। थोडी देर बाद ही ईडन और अन्य लोग पूछने लग कि मौलाना कहा है । श्रीमती पडित को इज्जत रखन के लिए कूटनीति स काम लेकर साफ झूठ बोलना पडा । सच यह था कि मौलाना उस समय अपने कमर म बैठे शम्पेन की चुस्कियाँ ल रह थे ।

दौरे से वापस आने पर मौलाना ने सभी लोगो मे नम्बियार की प्रशसा करत हुए उन्ह सबस अच्छा राजदूत बताया। जमनी के दौरे स लौटकर राजदूत नम्बियार की प्रशसा टी टी कृष्णमाचारी न भी कुछ इन्ही शब्दो मे की थी लकिन सम्पन्न या कोई पय पिय बिना। टी टी कृष्णमाचारी ने यह देखकर कि नम्बियार पत्नी रहित हैं मुझस कहा कि अगर विदश मत्रालय नोट भेजे तो वे उनके लिए एक सोशल सक्रेटरी की मजूरी दे देंगे । नोट भेज दिया गया ।

दिल्ली म मौलाना रात्रि भोजो म शामिल नही होते थे। विदश से आये महत्वपूण व्यक्तियो के सम्मान म प्रधानमत्री निवास म आयोजित दोपहर के भोजो म ही शामिल होते थ । मत्रिमडल की बैठको का समय अक्सर शाम पाच बजे का होता था । मौलाना छ बजते ही बैठक से उठ खडे होत चाह कितन ही महत्वपूण विषय पर विचार विमश क्या न चल रहा हो । कुछ समय बाद ही वे अपन कमरे में होत और उनके सामने व्हिस्की, सोडा बफ और समोसो की प्लेट होती । पीने के दौरान बहुत ही कम व्यक्तियो को उनसे मिलन की इजाजत थी । उन लोगो म नेहरूजी अरुणा आसफअली, हुमायू कबिर और एक निजी सचिव शामिल था जो उन्हें खास तौर पर पसद था। शाम के समय नेहरूजी उनसे मिलन से बचत थ लकिन कोई बहुत जरूरी बात करनी हुई तो और बात थी।

एक दिन मौलाना के चहेते निजी सचिव मुझसे मिलने आये । उन्होने मुझसे कहा कि मौलाना के बारे म वे बडे फिक्रमद हैं क्योकि अब वे हर शाम आधी बोतल व्हिस्की पीने लग है । इसलिए उनके फिसलकर गिर पडने की वारदात बढ रही हैं । दरअसल हाल ही म वे गिरकर कमर म चोट खा गय थे और अब उन्ह अपनी कमर सीधी रखने के लिए धातु की प्लेट बाधनी पड रही थी । उसके बाद से दो तगडे आदमी हमेशा उस समय उन्ह सहारा देने के लिए तयार रखे जाते, जब वे पीने के दौरान या पी चुकन पर उठत थे । निजीसचिव महादय ने कहा कि मौलाना केवल एक ही आदमी का कहा मानेंगे और वे हैं प्रधानमत्री । उन्होने मुझसे पूछा क्या पडितजी मौलाना से पगो की तादाद कम करने को नही कह सकत ?' मैंने प्रधानमत्री तक उनका सुझाव पहुँचाने का वादा किया। जब मैंने नेहरूजी स बात की तो वे सिफ मुस्करा दिय ।

अपन मत्रालय का चलान म मौलाना बुरी तरह असफल रहे और गाधीजी की आशका ठीक निकली । उन्हाने शिक्षा के क्षेत्र म कोई योगदान नही किया । उन्होंने सारा काम हुमायू कबिर के जो सैयदेन और अशफाक हुसैन त्रयी पर छोड दिया था ।

लकिन मौलाना की प्रशसा म इतना जरूर कहा जा सकता है कि अपने सभी साथियो म से वही एक ऐसे थे जो नेहरूजी स नही डरते थे । वे अपनी बात बिना

डर या हिचक के वह डालते थे।

1956 के आसपास जब प्रधानमंत्री लंदन में थे तो मंत्रिमंडल-सचिव सुखथंकर का तार आया कि मौलाना सरकारी तौर पर अपने को कार्यकारी प्रधानमंत्री मनवाने की जिद कर रहे हैं। सचिव महोदय ने इस संबंध में निर्देश मांगे थे। नेहरूजी ने उत्तर भेजा कि जब तक वे जीवित हैं कार्यकारी प्रधानमंत्री जैसी कोई चीज नहीं है। भारत में उनकी अनुपस्थिति से भी इस स्थिति में कोई अंतर नहीं पड़ता। केवल राष्ट्रपति ही कार्यकारी प्रधानमंत्री नियुक्त कर सकते हैं और वह भी आमतौर से उसी सूरत में जब प्रधानमंत्री अक्षम हो जाये।

मंत्रिमंडल के सचिव को इस तार की एक प्रति मौलाना को देने के लिए कह दिया गया। अगले दिन प्रेस ट्रस्ट आफ इंडिया के वरिष्ठ प्रतिनिधि मुझसे मिलने आये और उन्होंने मुझसे कहा कि भारत में एक बड़ी हास्यास्पद स्थिति पैदा हो गयी है और मौलाना अपने-आप कार्यकारी प्रधानमंत्री बन बैठे हैं। वे अपनी कार के आगे एक मोटरसाइकिल-सवार और पीछे सुरक्षा-अधिकारियों की कार लेकर चल रहे हैं और इस तरह अपने को हास्यास्पद बना रहे हैं। प्रतिनिधि ने यह भी कहा कि उन्होंने केवल प्रधानमंत्री निवास में चले आने का काम नहीं किया है बाकी सब कर चले आयें। मैंने उन्हें मंत्रिमंडल के सचिव को भेजे गये प्रधानमंत्री के तार के आधार पर सही स्थिति से अवगत कराया। प्रेस ट्रस्ट आफ इंडिया के प्रतिनिधि ने यह सूचना मेरे वक्तव्य के रूप में तुरंत तार से भारत भेज दी। वक्तव्य देखकर मौलाना क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने बड़े कठोर शब्दों में मेरे 'वक्तव्य' के खिलाफ प्रधानमंत्री को विरोध-पत्र भेजा। प्रधानमंत्री ने उन्हें वे स्थितियाँ बताते हुए उत्तर भेजा जिनमें मुझे प्रेस ट्रस्ट आफ इंडिया के प्रतिनिधि को स्थिति समझानी पड़ी थी और उस प्रतिनिधि को मेरा नाम वक्तव्य के साथ नहीं जोड़ना चाहिए था। प्रधानमंत्री ने पत्र में यह भी लिख दिया कि मेरे मन में मौलाना के प्रति श्रद्धा की कमी नहीं है। जब हम लन्दन से बंबई पहुंचे तो मोरारजी देसाई हवाई अड्डे पर थे। वे मुझे एक तरफ ले गये और उन्होंने मुझे मेरे 'वक्तव्य' पर बधाई दी। मैंने उनसे कहा कि मौलाना मुझ पर बहुत नाराज हैं। इस पर उन्होंने उत्तर दिया 'इससे क्या फर्क पड़ता है तुम्हें ?'

रफी अहमद किदवई साम्प्रदायिकता से जितना पूरी तरह से मुक्त थे मौलाना उतना मुक्त नहीं थे। 1952 के चुनावों के लिए उम्मीदवारों के चयन के अवसर पर मौलाना मुस्लिम नामों की पर्चियाँ जेब में भरकर लाते थे और उनके चयन के लिए आग्रह करते थे। यू. एस. मलैया जो लालबहादुर के साथ अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सह महासचिव थे मौलाना से तंग आ गये। मलैया ने उनके साथ दो चालें चलीं। जब तमिलनाडु की सूची विचार के लिए सामने आयी तो मलैया ने अपने मित्र कामराज को सुबह की बैठक में से गैरहाजिर होने को कह दिया। उस दौरान मलैया ने एक चुनाव क्षेत्र को लेकर पूरी सूची की कड़ी आलोचना की। उस क्षेत्र से तमिलनाडु कमेटी ने जिस व्यक्ति का नाम प्रस्तावित किया था मलैया ने उसकी जगह एक मुस्लिम उम्मीदवार का नाम रख दिया। मौलाना बड़े खुश हुए और कहने लगे 'रखो भाई रखो।' दोपहर बाद बैठक में कामराज ने सभाओं और उस चुनाव-क्षेत्र के लिए फिर से उम्मीदवार का नाम सुझाने को कहा क्योंकि उस मुस्लिम उम्मीदवार को मरे तो तीस साल हो चुके थे। कहने लगे कि मलैया को इतने प्रमुख राष्ट्रवादी मुस्लिम की मृत्यु की भी जानकारी नहीं। यह सुनकर कामराज और मलैया को छोड़कर सभी हँसने लगे और

इस तरह मौलाना बेवकूफ बन गये।

केरल की सूची के विचार के लिए सामने आने से पहले मलैया ने केरल प्रदेश कांग्रेस कमेटी के प्रतिनिधियों से बातचीत की। उत्तरी केरल के मोपलाओं के मुस्लिम-बहुसंख्यक क्षेत्रों से केरल प्रदेश कांग्रेस कमेटी ने कोई उम्मीदवार नहीं खड़ा किया था, क्योंकि वहाँ मुस्लिम लीग का जीतना निश्चित था। मलैया के कहने पर उन्होंने चुनाव-क्षेत्रों और उन मुस्लिम उम्मीदवारों के नामों की पूरक सूची भी दे दी जिन्हें जमानत की रकम देकर खड़ा किया जा सकता था। मलैया ने कहा कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी केरल प्रदेश कांग्रेस कमेटी को इन जमानत की रकमों के लिए अतिरिक्त अनुदान देगी। उन्होंने कहा कि इन चुनाव क्षेत्रों में चुनाव अभियान पर कोई पैसा न खर्च किया जाये। जब केरल प्रदेश कांग्रेस की मूल सूची सामने आयी तो मलैया खड़े हो गये और उन्होंने कहा कि जिस राज्य की एक तिहाई जनसंख्या मुस्लिम है वहाँ के असेंबली चुनावों के लिए केरल प्रदेश कांग्रेस कमेटी की सूची में केवल तीन मुसलमानों के नाम हैं। वे कहने लगे कि यह देखकर उन्हें बड़ा धक्का पहुँचा है और फिर वे चुनाव क्षेत्रों और मुस्लिम उम्मीदवारों के नाम-पर-नाम गिनाने लगे, जहाँ से उन्हें खड़ा किया जा सकता है। सुनकर मौलाना बहुत खुश हुए और उसके बाद से वे मलैया को सच्चे अर्थों में गैर-साम्प्रदायिक कांग्रेसी मानने लगे, जो कि वे थे। अतः यह हुआ कि जिन मुस्लिम उम्मीदवारों के नाम मलैया ने सूची में जोड़े थे चुनावों में उनकी जमानतें जब्त हो गयी और यह बात मलैया पहले से ही जानते थे।

मौलाना के कांग्रेस में सबसे बड़े विरोधी वल्लभभाई पटेल थे और उनके पक्के समर्थक नेहरूजी। नेहरूजी के मन में उनके लिए स्नेह था और वे उनसे असहमत होते हुए भी बड़े होने के नाते उनको आदर देते थे।

पिछले अध्याय में मैंने मौलाना की पुस्तक इंडिया विन्स फ्रीडम का जिक्र किया था। मौलाना उस समय तक अपनी विश्वसनीयता खो बैठे थे और उन्होंने मौज मस्ती की हालत में शाम के समय यह पुस्तक हुमायूं कबिर को बोल बोलकर लिखवायी थी। इस पुस्तक के अप्रकाशित अंश राष्ट्रीय पुरालेखागार में हैं और जब वे अंश प्रकाश में आयेंगे तो उन्हें बड़ी सावधानी और संयम से पढ़ना होगा।

29

वह

नितात व्यक्तिगत अनुभवा के आधार पर निमुक्त होकर रीति शृगार शली म लिखा यह अध्याय लखक ने ठीक मुद्रण के वक्त वापस ले लिया।

1 नवबर 1977 प्रकाशक

30

वी के कृष्ण मेनन—1

कृष्ण मेनन का जन्म 1896 म हुआ था। उन्होने मद्रास म अपना कालिज का अध्ययन पूरा किया और ऐनी बीसेंट के अनुयायी बन गये। उन्हें स्काउटो का काम सौंप दिया गया। 1924 म 28 वष की आयु मे ऐनी बीसेंट न उन्हे नचवव के थियोसोफिकल स्कूल मे अध्यापन के लिए इग्लड भेज दिया। स्कूल म उन्होने एक वष पढाया और 1925 म लदन से अध्यापन का डिप्लोमा ले लिया। 1925 27 के दौरान उन्होंने लदन स्कूल आफ इकोनामिक्स म हैराल्ड लास्की का शिष्य बनकर राजनीति विज्ञान का अध्ययन किया और वहा स बी एस सी किया। इसके बाद वे एनी बीसेंट की कॉमनवल्थ आफ इडिया लीग के सयुक्त सचिव बन गय। 1934 म 38 वष की आयु म मिडिल टपिल म उन्होने कानून की प्रक्टिस शुरू की। उस समय डिनर जकिट पहनकर डिनर खाने के अलावा कानून की प्रक्टिस म और कुछ ज्यादा काम नही था। वास्तव मे उन्होने कानून का अध्ययन ही नही किया था और लदन म कानून की प्रक्टिस के नाम पर उन्होंने ऐसा कुछ भी नही किया जिसका जिक्र किया जा सके।

लदन म उनके पुस्तकों के सपादन के बारे मे बहुत-कुछ बढा चढाकर लिखा गया है। उन्होंने सिफ पेलिकन पुस्तकों की पहली शृखला का सपादन किया था। यह काम उन्होंने बोडली हैड के एलन लेन की साझेदारी म किया था। कृष्ण मेनन म परेशान होकर लन ने उन्हें रोडा कहा तो उनकी साझेदारी समाप्त हो गयी।

कृष्ण मेनन लदन की गदी बस्तियो मे कई बरस बहुत गरीबी म रहे। बरसो वे चाय के अनगिनत प्यालों, बिस्कुटो और कभी-कभी नेटिन कटलेटों पर गुजारा करते रहे। फलस्वरूप उनका स्वास्थ्य खराब हो गया।

दक्षिण भारत म एक पत्रकार ने कृष्ण मेनन के जीवन पर विस्तार से लिखा है जो अपने-आप म एक कमाल है। उन्होने हमें विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया

है कि कृष्ण मेनन का परिवार धन-सपदा से भरपूर था और उनके पिता राजाओं के एक वग-वृक्ष की शृखला मे आते थे जिन्हें राजसी सुविधाए प्राप्त थी। मेनन का बचपन ऐश्वय म बीता था और आदशवाद की चपेट मे आकर मेनन ने अपने को इन सुखा और सुविधाओं से वचित कर लिया था। अगर यह बातें उत्तरी केरल म आप किसी को सुनायें तो वह हँसने लगेगा। वास्तव मे कृष्ण मेनन के पिता कृष्ण कुरुप तेल्लीचरी के छोटे-से नगर मे एक जमीदार के यहाँ छोटे-से गुमाश्ता थे। दक्षिण भारत का वही पत्रकार हम यह भी विश्वास दिलाना चाहता है कि कृष्ण मेनन आधुनिक सिद्धाथ थे जिन्होंने ससार और उसके साथ जुडी सुख सुविधाओं को त्याग दिया था और जिन्हें सेंट पैनक्रास के हास चेस्ट-नट वृक्ष-तल अभिनान प्राप्त हुआ था।

जब कामनवल्थ आफ इडिया लीग का विघटन हुआ तो कृष्ण मेनन न इसे इडिया लीग म बदल दिया और अपने को इसका सचिव बना लिया। इग्लड म रहने वाले कुछ अच्छे खाते-पीते भारतीयो ने विशेषकर डाक्टरो ने लीग को आर्थिक सहायता दी। इडिया लीग अकेले कृष्ण मेनन का तमाशा थी और उसमें जो भी धन आया उसका हिसाब किताब देने से कृष्ण मेनन न इकार कर दिया। अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भी उन्हे आर्थिक सहायता मिलती थी। लेकिन कृतज्ञता उनके स्वभाव का अग नही थी। कुछ लोगों का विचार है कि उनके सफल होने का एक कारण यह था कि वे किसी भी उद्देश्य को अपने स इस तरह जोड लेते थे कि उद्देश्य की अपेक्षा वे ही नजर आने लगते थे। इसका मतलब यह हुआ कि अगर आप भारत की स्वाधीनता का समथन करते हैं तो आपको कृष्ण मेनन का समथन करना होगा, किसी दूसरे का समथन करना देश विरोधी होगा। उनका विश्वास इस तरह की उक्ति म था, "जो मेरे समथक नही वे मेरे विरोधी हैं।' इस तरह का विचार उन्ह पसद नही था "जो मेरे विरोधी नहीं वे मेरे समथक हैं।' यह रुख उनकी दुदमनीय असहिष्णुता से पदा हुआ था।

अगस्त 1947 म वे लदन म भारत के उच्चायुक्त बने। लेकिन इससे पहले भी मैंने भीड से अलग कुछ कर गुजरने की प्रवृत्ति उनमे देखी थी और यह भी देखा था कि उन्ह अपने पुराने सच्चे समथको और सहायता देने वालो से हद दर्जे की नफरत है। मैंने कृष्ण मेनन से पूछा 'क्या आप इस सिद्धात पर चलते हैं कि घृणा प्रेम से अधिक शक्तिशाली है ?" उन्होंने उत्तर दिया 'हाँ।' उन्होंने शायद तुर्गनेव की शिकार के बारे म वह कहानी नही पढी थी जिसम एक भयानक शिकारी कुत्ता और नीचे गिर पडे अपने बच्चे को बचाने वाली मादा पक्षी थ। प्रेम से उत्पन्न मादा पक्षी के अविश्वसनीय साहस और आक्रामकता के सामने कुत्ता पीछे हट गया था। इस दृश्य का आकलन करने के बाद तुर्गनेव लिखते हैं 'प्रेम घृणा से अधिक शक्तिशाली होता है।" मैंने कृष्ण मेनन से कहा भी कि वे इस कहानी को जरूर पढें। लेकिन बाद की घटनाओं से सिद्ध हुआ कि उन्होंने वह कहानी पढी भी हो तो उससे कोई सबक नही सीखा।

गाधीजी के असहयोग-आदोलन के शुरू होने पर श्रीमती ऐनी बीसेंट ने 'न्यू इडिया' म प्रसिद्ध सपादकीय लिखा जिसका शीषक था, 'ईट का जवाब गोली से'। उन्होंने और श्रीनिवास शास्त्री जैसे नरम दल वाले लोगो ने इसके बाद मद्रास के गोखले हाल म बहुत-से भाषण दिये।

1931 म दूसरी गोलमेज कान्फ्रेंस के सिलसिले म गाधीजी के लदन पहुचने

ख्याल से ही कृष्ण मेनन इतने उत्तेजित हो उठे थे कि उन्होंने गांधीजी को कोसना शुरू कर दिया था। अभी गांधीजी समुद्री यात्रा पर ही थे कि उन्होंने एक बार 145 स्ट्रैंड पर तमाशा खड़ा कर दिया। उन्होंने भारतीयों के छोटे-से हुजूम के सामने दुर्वासा की तरह अपने हाथों को फैलाकर श्राप दिया, "उस मिस्टर को लेकर जहाज समंदर में डूब जाये।' मेनन ने अपना दिमाग श्रीमती बीसेंट के पास इस हद तक गिरवी रख दिया था कि वे उस समय तक उनके प्रभाव से मुक्त नहीं हो पाये थे।

दूसरी गोलमेज कान्फ्रेंस के बाद गांधीजी के सिविल अवज्ञा आंदोलन के सिलसिले में भारत में होने वाले अत्याचारों की खबरें जब लंदन तक पहुँचने लगीं तो कृष्ण मेनन की आँखें खुलीं। वे 1932 में इंडिया लीग के प्रतिनिधि-मंडल के सचिव के रूप में भारत आये। इस प्रतिनिधि मंडल में लेबर दल के तीन सदस्य थे—मोनिका ह्वाटली, एलन विलकिन्सन और लियोनार्ड मास्टर्स। प्रतिनिधि मंडल के भारत में ठहरने के दौरान कृष्ण मेनन ने नेहरूजी से भेंट की। मेनन नेहरूजी के संपर्क में सही अर्थों में 1935-36 में आये, जब नेहरूजी कमला नेहरू की बीमारी के सिलसिले में कुछ अरसे के लिए लंदन में ठहरे थे। कृष्ण मेनन ने लंदन में नेहरूजी के प्रोग्राम का आयोजन किया। नेहरूजी ने उन्हें अपनी आत्मकथा के प्रकाशन का काम सौंप दिया जिसमें पूरी तरह से गड़बड़ पैदा करने में वे सफल रहे। 1938 में जब हफ्ते भर के लिए ही नेहरूजी स्पेन गये तो कृष्ण मेनन उनके साथ थे। इसी के बाद नेहरूजी इंदिरा के साथ चेकोस्लोवाकिया गये थे जहाँ ए सी एन नम्बियार ने उनकी देखभाल की थी। नेहरूजी के स्पेन के दौरे के बारे में मैंने 'पीड़ित परिवेश के प्रति नेहरूजी की संवेदनशीलता' शीर्षक अध्याय में जिक्र किया है।

कृष्ण मेनन से मेरी पहली मुलाकात 1946 में नयी दिल्ली में हुई। वे सितंबर 1946 को अंतरिम सरकार बनने के अवसर पर ही भारत आये थे। मुझे उनका सूखा-पतला और भूखा चेहरा और गिद्ध की चोंच सी नाक अच्छी नहीं लगी। उनके बाल लंबे और बिखरे हुए थे और यह याद करा रहे थे कि उन्हें हजामत कराने की सख्त जरूरत है। वे सस्ते किस्म के खराब दर्जियों से सिले अंग्रेजी कपड़े पहने हुए थे। सौभाग्य से उन्होंने सिर पर हैट नहीं पहन रखा था वरना वे पूरे आवारागर्द नजर आते। उन्हें देखकर लगता था कि यह आदमी बरसों जरूर लंदन की गंदी बस्तियों में रहा होगा।

सितंबर 1946 में नेहरूजी ने यूरोप में अपने निजी प्रतिनिधि के रूप में कृष्ण मेनन की नियुक्ति की थी ताकि दूसरे देशों से राजनयिक संबंध कायम करा में सुविधा हो जाये। इसका जिक्र हमने 'कुछ पुस्तकें' अध्याय में पहले ही कर दिया है।

नेहरूजी के कहने पर संविधान की प्रस्तावना का मसौदा कृष्ण मेनन ने ही तैयार किया था। नेहरूजी ने इसमें से कुछ शब्द बदले और इस संविधान सभा में पेश कर दिया जिसने इसे ज्यों-का-त्यों पारित कर दिया।

22 जनवरी 1947 को संविधान-सभा ने भारत को प्रभुतासम्पन्न स्वतंत्र गणतंत्र घोषित करने का फैसला किया। इस बात का डर था कि इस फैसले को ब्रिटिश नेता इस रूप में लेंगे कि भारत कामनवेल्थ का सदस्य नहीं बनेगा। इस तरह के डर को दूर करने के लिए नेहरूजी ने 22 जनवरी 1947 को संविधान-सभा में एक भाषण दिया, "हमने कभी भी अपने को विश्व के दूसरे देशों से अलग करने

या जिन देशा ने हम पर शासन किया है उनके प्रति दुश्मनी का रुख अपनाने के बारे म सोचा तक नही है। हम ब्रिटिश जनता और ब्रिटिश कामनवल्थ आफ नेशन्स क मित्र रहना चाहते हैं।"

वायसराय के रूप म माउटबेटन के भारत आने पर कष्ण मेनन सक्रिय हो उठ और व इमानदार दलाल का काम करने लगे। सरदार पटेल और मौलाना आजाद को यह कतई पसद न आया। वस भी सरदार पटेल न कष्ण मनन स कभी भी अच्छी तरह स भेंट नही की। जब भी उन्होने उनसे मिलना चाहा तो पटेल निवास स एक ही उत्तर मिला वे शाम पाँच बजे सैर पर उनके साथ हो सकते है। सैर पर बातचीत मेनन के लिए कष्टकर थी, लेकिन कोई चारा भी नहीं था।

एक दिन नेहरू जी ने मुझसे कहा कि माउटबेटन कहते हैं कि कष्ण मनन कोचीन के किसी राजपरिवार मे सबधित है और कोचीन म प्रचलित मातसत्तात्मक व्यवस्था के अनुसार कष्ण मेनन तत्कालीन कोचीन महाराजा के बाद गद्दी पर बठग। नेहरूजी न मुझसे पूछा कि क्या मुझे इस विषय में पता है। मैं हँसने लगा। फिर मैंने कहा कि कष्ण मेनन ने किसी और के ज़रिए माउटबेटन के साथ मजाक किया है। मैंने नेहरूजी से कहा कि इसस पहले भी कष्ण मेनन किसी राज परिवार क साथ अपने सबधित होने की कहानी मुझ पर थोप चुके हैं और वह कहानी सुनकर मैं हसने लगा था। लदन की गदी बस्तियो में नितात गरीबी में रहने के कारण कष्ण मेनन में एक विशेष प्रकार की हीन भावना पैदा हो गयी थी जो उन्हे इस तरह के काल्पनिक राज परिवारो से सबधित होने की घोषणा करने पर मजबूर करती थी। मेनन की छोटी बहन, नारायणी अम्मा कोचीन परिवार के एक गरीब व्यक्ति से ब्याही थी। वह व्यक्ति मद्रास सरकार क सचिवालय में (मलयालम का) अनुवादक था। उसन इसी छोटे-से पद से अवकाश ग्रहण किया और कोचीन वापस चला गया। अपने बुढ़ापे में वह परिवार का वरिष्ठतम सदस्य बना और बहुत थोडे अरसे के लिए कोचीन का महाराजा बना। मातसत्तात्मक व्यवस्था के अनुसार महाराजा की पत्नी रखल से अधिक कुछ नही होती। महाराजा की बहन के बच्चे उत्तराधिकारी बनते हैं। परिवार की सपत्ति म से अपनी पत्नी को कुछ भी देने का अधिकार महाराजा को नही होता। नेहरूजी न मुझसे कहा कि मैं माउटबेटन को इस विषय में कभी भी मिलने पर जानकारी दू लेकिन मैंने ऐसी हरकत की तकलीफ मोल न ली। लेकिन जब लदन में हाल ही में माउटबेटन ने अपनी इस 'खोज' को प्रचारित किया तो मुझे उन्हे सही जानकारी भेजनी पडी।

15 अगस्त 1947 को अधिराज्य सरकार बनने पर नेहरूजी कष्ण मनन को मत्रिमडल म शामिल करना चाहते थे। लेकिन गाधीजी ने इसका दृढ़ता स विरोध किया और नेहरूजी न यह विचार त्याग दिया। सरदार पटेल तक को इस बात की खबर न लगी। कष्ण मेनन को भी कभी इस विषय में नही बताया गया।

कष्ण मेनन को लदन में उच्चायुक्त बनाने का विचार नेहरूजी के दिमाग में न था। कृष्ण मनन बेचन थे। उन्होने माउटबेटन स मदद ली। आखिरकार माउटबटन ने सुझाव दिया कि कष्ण मेनन को उच्चायुक्त बना दिया जाये। इसके बारे म माउटबेटन न गाधीजी स अलग मे बात भी की थी। इस तरह मदान साफ था और हाथ मारने की देर थी।

अपनी नियुक्ति की घोषणा के कुछ दिनो बाद कृष्ण मेनन मेरे पास

आये। उनका चेहरा खिला हुआ था। उन्होंने बताया कि उप उच्चायुक्त के रूप में उन्होंने ए के चन्दा की नियुक्ति करा ली है। फिर कहने लगे, 'वह दिल्ली की पूरी सिविल सेवा के सबसे अधिक योग्य व्यक्ति हैं।" मैंने उत्तर दिया, 'अगर सपूर्ति सगठन के प्रशासन और नियत्रण मे आप उन्हें पूरी छूट दे देंगे तो वे बहुत अच्छा काम करेंगे।" लेकिन मैंने उन्हें चेतावनी दी, 'अगर आप इन्हें खाली रखेंगे और उनकी तरफ ध्यान नही देंगे तो वह आपके हाथ से निकल जायेंगे।" 1948 में मैं जब उनसे लदन मे मिला तो कृष्ण मेनन ने बडी कटुता के साथ कहा "चन्दा तो बडा बेवकूफ आदमी निकला।" मैंने उनसे कहा कि यह मेरी समझ से बाहर की बात है कि जो आदमी कभी पूरी सिविल सेवा मे सबसे उत्कृष्ट था, वह आज अचानक कैसे बेवकूफ आदमी बन गया है।" कृष्ण मेनन टी टी कृष्णमाचारी की तरह बेहद तुनुक मिजाज आदमी थे। मेरा खयाल है कि जिन लोगो को अल्सर होता है वे अक्सर इसी तरह के होते हैं। असलियत यह थी कि कृष्ण मेनन ने चन्दा को आज़ादी से काम नही करने दिया और वे शिकायत के अलावा कुछ भी करने के लायक नही रहे। वे भारत लौटने के दिन का इतज़ार करते रहे।

1948 में जब कामनवल्थ प्रधानमत्रियो की कान्फ्रेंस के सिलसिले मे मैं लदन में नेहरूजी के साथ था तो कृष्ण मेनन ने मुझे कुछ लोगो के नाम बताये जिन्हें वे नेहरूजी से नही मिलने देना चाहते थे। इनमे से कुछ नाम ऐसे बडे लोगो के थे, जिन्होंने इडिया लीग और कृष्ण मेनन का समर्थन किया था। मैंने उनसे कहा कि नेहरूजी किसी एक पक्ष के हिमायती नही दीखने चाहिए और उन्हें जिसमे वे मिलना चाहें, मिलने देना चाहिए। बेशक इसके लिए उनके पास समय होना जरूरी है। और नेहरूजी सभी से मिले।

लदन में बगालियों का एक ऐसा दल था जिन्होंने कृष्ण मेनन की इडिया लीग से पृथक एक सगठन बना रखा था। कृष्ण मेनन के लदन में उच्चायुक्त बनने के तुरत बाद उस सगठन ने 1947 में लदन में शरतचद्र बोस को बुलाया। बोस ने लदन में कुछ भाषण दिये जिनमे उन्होंने कृष्ण मेनन का प्रत्यक्ष और नेहरूजी की विदेश-नीति की परोक्ष रूप से आलोचना की। इन भाषणो का अच्छा प्रचार हुआ। भारतीय समाचारपत्रो में भी यह भाषण छपे। पता लगा कि इसके पीछे गृह और सूचना मत्री सरदार पटेल का हाथ था।

लदन में शरतचद्र बोस का आक्रोश, एक प्रकार से उनके भाई सुभाषचद्र बोस द्वारा कांग्रेस की विदेश-नीति के विरोध का ही प्रसार था। यह विदेश-नीति नेहरूजी ने तैयार की थी। इसके बारे में नेहरूजी ने 1944 में ही लिखा था

> 1938 में कांग्रेस ने एक चिकित्सा-दल चीन भेजा जिसमे बहुत-से डॉक्टर और आवश्यक साज-सामान था। कई वर्षों तक इस दल ने वहाँ बहुत अच्छा काम किया। इस दल के गठन के समय सुभाषचद्र बोस कांग्रेस के अध्यक्ष थे। उन्होंने कांग्रेस द्वारा ऐसा कोई भी कदम उठाने का अनुमोदन नही किया जो जापान, जर्मनी या इटली विरोधी हो। लेकिन कांग्रेस और देश में इन देशो के प्रति इस तरह की विरोधी भावना चल रही थी कि बोस ने चीन और फासिस्ट और नात्सी हमलों के शिकार देशो के प्रति कांग्रेस की सहानुभूति जताने वाले इस कदम और दूसरे प्रयत्नों का विरोध नही किया। हमने इस सिलसिले मे अनेक प्रस्ताव पारित किये और प्रदर्शनो का आयोजन किया जिनका उन्होंने अपनी अध्यक्षता की अवधि में अनुमोदन नही किया।

लेकिन उन्होंने इनका विरोध भी नहीं किया क्योंकि इन सब के पीछे काम करने वाली भावनाओं का उन्हें पता था। विदेश और देश के बहुत-से मामलों में कांग्रेस कार्यकारिणी कमेटी में शामिल दूसरे लोगों से उनका दृष्टिकोण बिलकुल मेल नहीं खाता था और यही कारण था कि 1939 में वे कांग्रेस से अलग हो गये। उन्होंने कांग्रेस की नीतियों का खुले रूप से विरोध किया और अगस्त 1939 के शुरू में कांग्रेस कार्यकारिणी ने एक व्यक्ति के विरुद्ध अनुशासनात्मक कारवाई करने का अस्वाभाविक कदम उठाया, जो कभी उनका अध्यक्ष रह चुका था।

लंदन में दिये गये शरतचंद्र बोस के भाषणों का नेहरूजी पर एक जबर्दस्त प्रभाव पड़ा जो उनके साथ अंत तक रहा। वे यह मानने लगे कि कृष्ण मेनन पर किया गया हमला उन पर किया गया हमला है। नेहरूजी अपनी इस धारणा से 1962 के अंत तक या सरकार में से कृष्ण मेनन के बाहर निकल जाने के समय तक, बुरी तरह से चिपके रहे। कृष्ण मेनन और उनके कुछ पिट्ठुओं को उनकी यह धारणा अच्छी हाथ लगी और उन्होंने इसका खूब मुस्तैदी से प्रचार किया। इन्दिरा भी इस प्रचार का शिकार हुई।

उच्चायुक्त बनने के एक वर्ष के भीतर ही कृष्ण मेनन ने उच्च आयोग के अमले में बहुत सारे स्थानीय भारतीय भरती कर लिये। इनमें से कुछ तो जाने माने कम्युनिस्ट थे और कुछ की कम्युनिस्टों से गहरी सांठ गांठ थी। कृष्ण मेनन यह नहीं समझ पाये कि लेबर पार्टी की सरकार कम्युनिस्टों और उनके अनुयायियों को पसंद नहीं करती थी। शीघ्र ही ब्रिटिश सरकार ने नयी दिल्ली में विदेश मंत्रालय को ब्रिटिश उच्चायुक्त के जरिए अवगत करा दिया कि उन्होंने अनिच्छा से कोई भी गुप्त या दूसरी वर्गीकृत सामग्री इंडिया हाउस को तब तक न देने का फैसला किया है, जब तक वहाँ महत्वपूर्ण पदों पर जाने माने कम्युनिस्ट और उनसे सहानुभूति रखने वाले व्यक्ति बने रहते हैं। नेहरूजी कृष्ण मेनन से नाराज हो गये और उन्होंने कामनवल्थ सचिव एस दत्त को लंदन पूछताछ करने के लिए भेजा। कृष्ण मेनन को दत्त का यह दौरा बुरा लगा। लेकिन अंत में कृष्ण मेनन को स्थानीय रूप से नियुक्त अमले में से बहुत-से व्यक्तियों को निकालना पड़ा।

1947 48 में कामनवल्थ से भारत के संबंधों के विषय पर सरदार पटेल और नेहरूजी तथा नेहरूजी और गांधीजी के बीच अनौपचारिक विचार विमर्श हुआ था। इसमें माउंटबेटन ने भी सहयोग दिया था। जब जून 1948 में राजाजी गवर्नर जनरल बने तो वे भी बीच में आ गये। इस विषय पर नेहरूजी और एटली के बीच भी कुछ पत्राचार चला था।

भारत के प्रमुख नेता इस पक्ष के थे कि भारत प्रभुतासंपन्न स्वतंत्र राष्ट्र बनाया जाये लेकिन वह कामनवल्थ का सदस्य भी बना रहे और ब्रिटेन के नरेश का भारत में कोई काम न रहे। वे इन निष्कर्षों पर निम्नलिखित कारणों से पहुंचे थे

(1) पाकिस्तान का अस्तित्व

(2) मौजूदा संबंधों को तोड़ने से दूसरे देशों से अपने को काट लेने की अनिच्छा

(3) लार्ड और लेडी माउंटबेटन के काम करने का तरीका जिससे

उत्पन्न अच्छे प्रभाव ने ब्रिटेन और कॉमनवैल्थ के बीच नये सबंध बनाने का मार्ग प्रशस्त किया,

(4) साज-सामान और सामग्री के मामले में सशस्त्र सेनाओं की ब्रिटिश स्रोतों पर बहुत अधिक निर्भरता, विशेषकर परिवर्तन के दौर में।

उच्चायुक्त के रूप में कृष्ण मेनन से कहा गया कि वे राजनीतिक स्तर पर ब्रिटिश सरकार से बराबर सपर्क बनाये रखने की दिशा में शुरुआत करें। उचित समय पर ब्रिटिश सरकार के कानून अधिकारी भी इसमें आकर शामिल हो गये।

अक्तूबर 1948 में लंदन में आयोजित प्रधानमंत्रियों की नियमित कान्फ्रेंस के दौरान नेहरूजी ने ऐटली तथा कनाडा, आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड के प्रधान मंत्रियों से अलग अलग बातचीत की। बहुत-से सुझाव सामने आये। कहा गया कि ब्रिटेन के नरेश कामनवैल्थ के नरेश हो सकते हैं। भारत के राष्ट्रपति की नियुक्ति नरेश नाममात्र के लिए कर सकते हैं। माउंटबैटन ने सुझाव दिया कि भारतीय तिरंगे के एक कोने में क्राउन को रखा जा सकता है। उन्हें ध्यान था कि 1947 में जब उन्होंने भारतीय झंडे के एक कोने में यूनियन जैक को रखने का सुझाव दिया था और जो सभी अधिराज्य सरकारों के झंडों में था तो वह तुरंत अस्वीकार कर दिया गया था। कृष्ण मेनन ने भी एक अव्यावहारिक प्रस्ताव यह प्रस्तुत किया कि नरेश को "कामनवैल्थ के प्रथम नागरिक" की उपाधि दी जाय। इस प्रस्ताव को उनके सिवाय और कोई समर्थक नहीं मिला। सभी प्रस्ताव ठुकरा दिये गये।

28 अक्तूबर 1948 को कान्फ्रेंस की समाप्ति पर नेहरू ने ऐटली को दस-सूत्री स्मरण-पत्र भेजा।

कामनवैल्थ प्रधानमंत्रियों की कान्फ्रेंस से लौटकर नेहरूजी, पटेल और राजाजी में इस विषय पर और विचार विमर्श हुआ। 2 दिसंबर 1948 को नेहरूजी ने कृष्ण मेनन को निम्नलिखित तार भेजा

ऐटली को 28 अक्तूबर 1948 को भेजे गये मेरे दस सूत्री स्मरण-पत्र में संशोधन करके उसे इस प्रकार आठ सूत्री बना दिया जाये

(1) भारत की पद स्थिति की घोषणा को संविधान के मसौदे में ज्यों का त्यों छोड़ दिया जायेगा।

(2) नये संविधान के लागू होने के साथ-साथ भारतीय विधान मंडल द्वारा पारित राष्ट्रीयता अधिनियम में ब्रिटिश नेशनेलटी एक्ट 1948 के संगत उपबंधों के अंश शामिल किये जायेंगे जिसके अधीन भारतीय राष्ट्रिक कामनवैल्थ के नागरिक और किसी भी कामनवैल्थ देश के राष्ट्रिक भारत में होने पर कामनवैल्थ के नागरिक माने जायेंगे। यह व्यवस्था आपसी आधार पर होगी। इस संदर्भ में कामनवैल्थ से अभिप्राय कोई उच्च राज्य नहीं बल्कि ऐसे स्वतंत्र और स्वाधीन राज्यों की एक संस्था है जो कॉमनवैल्थ नागरिकता की संकल्पना को स्वीकार करते हैं।

(3) सांविधानिक परिवर्तनों पर निर्णय ले लिये जाने या किसी और सम्मत समय पर भारत के प्रधानमंत्री और ब्रिटेन के प्रधानमंत्री इन परिवर्तनों और इनकी विशेषताओं तथा इनके परिणामों के बारे में घोषणाएँ करेंगे।

(4) किसी भी अधिनियम या दूसरे देशों से किये जाने वाले नये समझौते में कामनवैल्थ देश विदेशी राज्य नहीं माने जायेंगे और न ही उनके

नागरिको को विदेशियों के रूप में लिया जायगा।

विशेष रूप से किसी भी नये व्यापारिक समझौते में स्पष्ट कर दिया जायेगा कि सर्वाधिक समर्पित राष्ट्र' खंड के अनुसार कामनवल्थ देशों की स्थिति विशेष होती है और उन्हें विदेशी राज्य नहीं माना जाता है।

(5) जिस किसी अन्य देश में भारत सरकार का प्रतिनिधि नहीं होगा वहाँ वह किसी कामनवल्थ देश के राजदूत या मंत्री की सेवाओं का उपयोग करने को स्वतंत्र होगा। भारत सरकार भी इसी तरह की सुविधाएं किसी भी कामनवल्थ सरकार के माँगने पर प्रदान करने को प्रस्तुत रहेगी।

(6) भारतीय राष्ट्रिकों के अलावा अन्य कॉमनवैल्थ नागरिकों के प्रति क्राउन के दायित्वों की पूर्ति के लिए भारत गणतंत्र का राष्ट्रपति, क्राउन के आग्रह पर भारत की क्षेत्रीय सीमाओं के भीतर नरेश की ओर से काय कर सकता है। आपसी आधार पर ऐसी ही व्यवस्था नये कामनवल्थ में भारतीय राष्ट्रिकों पर लागू होगी।

(7) जहाँ तक ग्रेट ब्रिटेन का संबंध है स्थिति यह है कि 1947 के अधिनियम के अनुसरण में नरेश ने सामान्य रूप से प्रभुता के सभी काय भारतीय जनता के पक्ष में त्याग दिये हैं। उस अधिनियम के अंतगत ग्रेट ब्रिटेन की संसद भारत के संबंध में और कोई कानून नहीं बनायेगी और भारत का नया संविधान लागू हो जाने पर इस प्रकार का कोई कानून नहीं बन सकेगा। भारतीय जनता और गणतंत्र के राष्ट्रपति सहित उनके प्रतिनिधि प्रभुता के सभी काय करेंगे।

(8) कामनवल्थ संपर्क को जारी रखने की वास्तविक इच्छा के साथ यह सुझाव तैयार किये गये हैं और यह भी ध्यान रखा गया है कि इस समय क्या व्यावहारिक और पर्याप्त रहेगा। निस्संदेह यह संबंध कोई स्थिर व्यवस्था नहीं है आपसी बातचीत से इन संबंधों में परिवतन संभव है।

(अगर आवश्यक समझें तो ऊपर का अनुच्छेद काट दें।)

उसी तारीख के एक और तार में नेहरूजी ने कृष्ण मेनन को निर्देश दिया कि वे ऐटली से इस विषय में अनौपचारिक बातचीत करें। उन्होंने संकेत भी दिया हम मामूली परिवतनों पर विचार करने को तैयार हैं लेकिन कोई बड़ा परिवतन करना बहुत ही कठिन होगा।

दिसंबर 1948 में कांग्रेस के जयपुर अधिवेशन में एक प्रस्ताव पारित हुआ जिसमें कामनवल्थ से भारत के 'युक्त संबंध' का समथन किया गया था।

भारत की कामनवल्थ सदस्यता पर निणय करने के विशेष उद्देश्य से अप्रैल 1949 में कामनवल्थ प्रधानमंत्रियों की कांफ्रेंस हुई। कांफ्रेंस के शुरू होने से पहले ही नरेश के 'कामनवल्थ-अध्यक्ष' के पदनाम का सभी ने समथन किया। अंत में बुकक्रॉड कृष्ण मेनन की नरेश की परिभाषा कामनवैल्थ प्रधानमंत्रियों की बैठक में स्वीकृत की गयी। परिभाषा थी 'कामनवल्थ के स्वाधीन सदस्य राष्ट्रों के स्वतंत्र संपर्क के प्रतीक और फलस्वरूप कामनवल्थ अध्यक्ष।' इस परिभाषा के गढ़ने का श्रेय कई व्यक्तियों ने लेना चाहा जिनमें विदेश मंत्रालय के महासचिव गिरिजाशंकर वाजपेयी भी थे। इस पर मुझे यह उक्ति याद आयी 'सफलता का सेहरा हर कोई अपने माथे पर बाँधना चाहता है और असफलता का दोष दूसरों के मत्थे मढ़ता है। इस सिलसिले में उल्लेख कर देना ठीक रहेगा

कि किंग जाज पष्ठम प्राइवेट ग्रुपनगू में कॉमनवैल्थ में अपनी स्थिति 'फनस्वरूप' बनाकर खुद भी हुसा करत थे और दूसरा का भी हँसात थे।

संविधान सभा में दो दिन तक बहस चली और उसके बाद 17 मई 1949 को स्वतन्त्र गणतन्त्र के रूप में कामनवैल्थ में बने रहने के निर्णय को अनुमोदन मिल गया। विपक्ष में एक ही मत पडा। 21 मई 1949 को अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी न देहरादून म इसी तरह का प्रस्ताव पारित किया जिसमें 230 मौजूद व्यक्तियों में से 6 ने विपक्ष में मत डाला।

यह स्वीकार करना होगा कि अपने उच्चायुक्त के कार्यकाल के दो कठिन वर्षों (1947 49) में कृष्णमेनन न राजनीतिक समस्याओं को हल कराने के लिए बहुत अच्छा काम किया और इसे भारतीय और ब्रिटिश नेताओं ने स्वीकारा भी। लेकिन प्रशासन क क्षेत्र में उन्होंने इंडिया हाउस में तहलका सा मचा दिया। स्कटन पर स्कैंडल जुडत गये और कृष्ण मेनन उत्पीडन उन्माद स ग्रस्त होते गये। उन्होंने पलायन के रूप में नींद की तगडी गोलियाँ लेना शुरू कर दिया। ऐसा विशेष रूप से उस समय हुआ, जब भारत की संसद में उनके कुछ मूर्खतापूर्ण समझौतों की धज्जियाँ उडायी जा रही थी। 1950 तक आते आते कृष्ण मेनन मानसिक और शारीरिक रूप से एकदम खल्लास हो चुके थे। इस विषय में और अगले अध्याय में।

31

वी के कृष्ण मेनन—2

1949 के उत्तरार्द्ध में संसद में रोज़ आवाज़ मचने लगा और माग ज़ोर पकड़ती गयी तो प्रधानमन्त्री ने विदेश मन्त्रालय के महासचिव एन आर पिल्ले को 1950 में गुप्त रूप से जांच और फिर रिपोर्ट पेश करने के लिए लन्दन भेजा। पहले भेजे एस दत्त की तरह पिल्ले गये और लौट आये। उन्होंने लिखित में रिपोर्ट देने से इंकार कर दिया। लेकिन उन्होंने प्रधानमन्त्री को बताया कि कृष्ण मेनन द्वारा किये गये विभिन्न समझौतों के समय तगड़ी रकमों का आदान प्रदान हुआ है। वे यह नहीं कह सकते कि यह सब कृष्ण मेनन की जेब में गया लेकिन पूरी सम्भावना यही है कि यह रकम इंडिया लीग ने ली है जिस संगठन का हिसाब किताब कृष्ण मेनन ने किसी को भी देने से इंकार कर दिया है। पिल्लै ने कहा कि कृष्णमेनन द्वारा वेतन न लेने से सन्देह और पक्का हो गया है। लंदन में लोग पूछने लगे 'महंगे कपड़ों से बड़ी बड़ी अलमारियों को भरने के लिए अचानक उनके पास कहां से पैसा आ गया?' सरकार से सत्कार भत्ते के रूप में मिलने वाली भारी रकम का हिसाब किताब देने से उनके इंकार करने पर बात और उलझ गयी। सभी जानते थे कि कृष्ण मेनन इन्डिया हाउस की सस्ती कैंटीन के अलावा कहीं और किसी का सत्कार कभी नहीं करते। पिल्लै ने प्रधानमंत्री को बताया कि अलग अलग समझौतों से जुड़े स्कैंडल जनलेखा समिति और संसद के सामने हैं और सरकार को उनसे अच्छे से अच्छे तरीकों से निपटना पड़ेगा। अंत में पिल्ले ने कहा कि कृष्ण मेनन के मामले में लिया गया फैसला राजनीतिक है। प्रधानमंत्री संकेत नहीं समझ पाये और वे मामले को लटकाये रखने की नीति पर चलते रहे।

संसद में कृष्ण मेनन की बखिया बराबर उधेड़ी जा रही थी। इस बीच राजकुमारी अमृतकौर समेत लंदन से लौटने वाले लोगों ने रिपोर्ट दी कि इंडिया हाउस में काम बिल्कुल ठप्प हो गया है। कृष्ण मेनन नशे की तेज-से-तेज गोलियां

लन्दन में कृष्ण मेनन को उबारने की कोशिश कर रहे हैं और कुछ मैक्स-स्कैंडल भी होने लगे हैं। अक्तूबर 1951 में प्रधानमंत्री ने मुझसे कृष्ण मेनन का सम्मान और हाल में मिली रिपोर्टों की जांच करने के लिए लंदन जाने को कहा। उन्हें पता था कि मेरे कृष्ण मेनन से ठीक संबंध हैं और जो भी रिपोर्ट मैं दूंगा तो वह वस्तुगत होगी। मैं कम महंगे इंडिया क्लब में ठहरा, जहां से इंडिया हाउस पैदल चलकर पहुंचा जा सकता था।

इंडिया हाउस में पहुंचकर सबसे पहले मेरी निगाह एक कूट तार पर पड़ी, जो मेरे दिल्ली से चलने के एक सप्ताह पहले कामनवेल्थ संबंधों के राज्य सचिव लार्ड होम के नाम भेजा गया था और जिसमें प्रधानमंत्री का संदेश था। वह तार कृष्ण मेनन के डेस्क पर अभी तक बिना देखे पड़ा था। कृष्ण मेनन तो गोलियों के नशे में इतने चूर थे कि अपनी आंखें भी मुश्किल से खोल पाते थे। इसलिए मैं वह तार लेकर प्रथम सचिव पी एन हक्सर के पास पहुंचा और मैंने उनसे पूछा कि ऐसा क्यों हुआ। उन्होंने बताया कि कूट-तार की अग्रिम प्रतियां उच्चायुक्त को भेजी जाती हैं और उनकी स्वीकृति के बाद ही अन्य प्रतियों को वितरित किया जा सकता है। इसलिए किसी का भी इस विशेष तार की तरफ ध्यान नहीं गया। मैंने कहा कि वह समझ लें कि उन्हें उच्चायुक्त की स्वीकृति मिल गयी है और अब इसे कामनवेल्थ संबंधों के कार्यालय में तुरंत भेज दें। इसके बाद मैं कृष्ण मेनन के पास पहुंचा और उन्हें झिंझोड़कर चेतन करते हुए कहा कि मैं उनसे तभी मिलूंगा, जब वे होश में होंगे। अगर उन्होंने नशे में ही रहने की ठानी तो मैं अगली उड़ान से ही दिल्ली चला जाऊंगा। शाम को कृष्ण मेनन इंडिया क्लब में मेरे कमरे में मुझसे मिलने आये और उस समय वे काफी हद तक होश में थे। मैंने उनसे कहा कि मैं बात न फैलने देने की कोशिश में हूं और मैं उनसे और उनके साथ के कुछ और लोगों से भी बातचीत करूंगा जो वास्तव में उनसे सहानुभूति रखते हैं। साथ ही उनके ब्रिटिश मनश्चिकित्सक से भी भेंट करूंगा। लेकिन मैंने उन्हें साफ-साफ बता दिया कि मैं उनके डाक्टर से तभी मिलूंगा जब वे स्वयं उससे मेरा परिचय करायेंगे हालांकि माउंटबेटन ने डाक्टर से मेरी मुलाकात कराने को कहा था।

मैं सबसे पहले डॉ० हार्ड से मिला जो कृष्ण मेनन के पुराने दोस्त और समर्थक थे। उन्होंने मुझे बताया कि कृष्ण मेनन बीमार हैं एक हद तक पागल हो गये हैं। वे ल्यूमिनोल और दूसरी नशे की गोलियां मामूली सी बात होने पर ही लेने लगते हैं। उन्होंने साथ ही यह भी कहा कि उन्हें अभी भी प्रधानमंत्री उच्चायुक्त बनाये हुए हैं यही देखकर आश्चर्य होता है।

माउंटबेटन ने कहा कि ऐटली और लेबर सरकार के सभी प्रमुख मंत्रियों का ख्याल है कि कृष्णमेनन को एक वर्ष पहले ही बदल देना चाहिए था। माउंटबेटन की भी यही राय थी।

पी एन हक्सर उस समय अपेक्षाकृत जूनियर सरकारी अधिकारी थे लेकिन उन्होंने खुलकर कृष्ण मेनन के हटाने की आवश्यकता पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि कृष्ण मेनन को तो कुछ समय पहले ही बदल देना चाहिए था। मेरे आग्रह पर उन्होंने स्थिति के बारे में अपना जायजा एक नोट के रूप में लिखकर दिया लेकिन उस पर हस्ताक्षर नहीं किये। यह नोट मैं प्रधानमंत्री को दिखाना चाहता था।

मैं ब्रिटिश डॉक्टर से मिला और उसने मुझे बताया कि कृष्ण मेनन को बिजली के झटके दिये जा रहे हैं और यही इलाज उनके स्टाफ की एक महिला-सदस्य

का चल रहा है। उन्होंने कहा कि कृष्ण मेनन की हालत ऐसी है कि उन्हें किसी दफ्तर म होने के बजाय नर्सिगहोम म होना चाहिए क्योंकि दफ्तर म गभीर काय होते है। उन्होने यह भी कहा कि कृष्ण मेनन मानसिक रोगी हैं और उन्ह तीव्र उत्पीडन उन्माद का रोग है। लेकिन असली तकलीफ उनकी यह है कि उनम कामभावना सामान्य से अधिक है लेकिन सभोग की क्षमता कतई नही। इससे उनम मानसिक विकार पदा हो गय है और यही कारण उनकी विचित्र हरकता के पीछे हैं। उनका अस्वाभाविक व्यवहार और आक्रामक प्रवत्ति इसी की उपज हैं। उन्होन अपने लैटरहैड पर इसी आशय का एक नोट लिखकर दिया ताकि मैं उसे चुपचाप प्रधानमत्री को दिखा सकू। लेकिन इस पर उन्होंने अपने हस्ताक्षर नही किये।

एक दिन शाम को कृष्ण मेनन इडिया क्लब म मेरे कमरे मे क्लेमिन्सन को लेकर आये और उसे मेरे पास छोड गये। क्लेमिन्सन उन दुस्साहसियो में से था जो कृष्ण मेनन के बहुत से सौदा म साझीदार रहा था। कष्ण मेनन इसलिए उसे मेरे पास छोड गये थे ताकि वह उन स्थितियो को मुझे समझा सके, जिनम वे सौदे हुए थे और उन्ह उचित बता सके। क्लेमिन्सन ने अपनी बात शुरू करते हुए कल रात अपने फ्लट मे घटी घटना मुझे सुनायी। कष्ण मेनन अपनी एक भारतीय निजी-सचिव के साथ आधी रात को आये, जिसका बिजली के झटको का इलाज चल रहा है। वह बडे जोशो-खरोश मे थी और उसने सारे कपडे उतार नगा होकर कामोत्तेजक डास करना शुरू कर दिया। उसने कहा कि कष्ण मेनन हर जगह उसे लिय फिरते हैं और वह लडकी उनके इश्क म बुरी तरह फँस गयी है। चूंकि कष्ण मेनन शारीरिक रूप से उसे तप्त करन मे असमथ हैं इसलिए वह मानसिक रोगी बन गयी है। उसने बताया कि लडकी ने दफ्तर मे भी बावेला मचाया है। इसके बाद वह इधर उधर की और बातें करता रहा और अत में कष्ण मनन के सौदा के बारे में कुछ भी कहे बिना चला गया।

कष्ण मेनन ने स्वय मुझसे कई बार बातचीत की। यह बातें ज्यादातर उन्ही सौदा के इद गिद घूमी, जो उन्होंन कुछ गलत किस्म के बिचौलियो के जरिए किये थे और जिनस सरकार को भारी नुकसान उठाना पडा था। उन्होंने अधिकाश सिविल अधिकारियो की शिकायत लगायी और वे दिल्ली के कुछ मन्त्रियो के खिलाफ भी बोले। अतिम बातचीत में मुझे लगा कि वे या तो बिल्कुल भोले हैं या पागल हो गय है। उन्होने कहा कि सरकार को समझना चाहिए कि लदन म उच्चायुक्त के कार्यालय का दर्जा केवल प्रधानमत्री और राष्ट्रपति के कार्यालय के बाद का है और एक आदेश के जरिए उन्हे तब तक के लिए उप प्रधानमत्री बना देना चाहिए, जब तक वे लदन में उच्चायुक्त रह। वे इस तरह बातें कर रहे थ कि जैसे उन्ह जीवन भर उप प्रधानमत्री के पद के साथ उच्चायुक्त ही बने रहना है। कष्ण मेनन इतने आत्मकेंद्रित व्यक्ति थे कि सामान्य स्थितियो तक म वे अगर पेरू में भारतीय राजदूत होते तो अपने का उप प्रधानमत्री की पदवी स विभूषित करने का इसी तरह का केस बना डालत।

दिल्ली लौटने पर मैंने लदन म हुई बातचीत का सक्षिप्त विवरण प्रधानमत्री को दिया और उनसे कहा कि कष्ण मेनन को तुरत बदल देना चाहिए। मैंने सलाह दी कि उन्हें गुरू म छुट्टी पर चले जान और नर्सिगहोम मे इलाज और आराम के लिए दाखिल हो जान को कहा जाये। उन्ह प्रधानमत्री स्वय पत्र लिख और कहें कि चुनावो के बाद मई 1952 म नयी सरकार के मन्त्रिमडल म उन्ह शामिल कर

लिया जायेगा। नेहरूजी ने मेरे सुझाव मान लिये और कृष्ण मेनन को इसी आशय का पत्र लिख दिया। कृष्ण मेनन को लिखे पत्र पर अपने हस्ताक्षर करने के बाद नेहरूजी ने आधी रात के करीब मुझे बुलाया। वे जानते थे कि मैं इस समय भी काम कर रहा होऊँगा। मैंने पत्र पढ़ा, जिसमें मेरे सभी सुझाव शामिल थे। उन्होंने देखा कि पत्र समय मुझे कुछ परेशानी हो रही है। उन्होंने मुझसे कहा, 'यह सारी मेरी ही गलती है। यह कारवाई मुझे एक वर्ष पहले ही करनी चाहिए थी।" मैंने कहा "आप कृष्ण मेनन को मुझसे ज्यादा जानते हैं।" उनका उत्तर था "निश्चय ही इतना ज्यादा नहीं। अगर तुम उसके मेरे साथ बिताये समय का हिसाब लगाओ तो वह कुछ घंटों से अधिक नहीं निकलेगा। तुम निश्चय ही उसे मुझ से ज्यादा जानते हो क्योंकि मैंने देखा है कि जब कभी भी वह दिल्ली में होता है, वह अपना ज्यादा समय तुम्हारे साथ, कभी तुम्हारे अध्ययन-कक्ष में और कभी तुम्हारे शयन कक्ष में, गुजारता है। लंदन में भी मैंने देखा था कि उसने बहुत सारा समय तुम्हारे साथ गुजारा था।" इसके बाद नेहरूजी जल्दी ही आम चुनावों के कामों में उलझ गये और कृष्ण मेनन को अपनी जगह पर बने रहने का थोड़ा समय और मिल गया। 13 जून 1952 को बी जी खेर ने लंदन में कृष्ण मेनन से उच्चायुक्त का कार्यभार सम्हाल लिया। कृष्ण मेनन लंदन में ही बने रहे और उन्होंने इलाज कराने से इंकार कर दिया। इस पर नेहरूजी ने मई 1952 में उन्हें मंत्रिमंडल में शामिल करने के लिए कोई कदम नहीं उठाया।

उच्चायुक्त के अपने कार्यकाल में कृष्ण मेनन ने हेरोल्ड लास्की के, जो यहूदी थे प्रभाव में आकर निजी रूप से इस बात का समर्थन किया था कि भारत को इस्राइल से राजनयिक संबंध कायम करने चाहिए। नेहरूजी भी इसके पक्ष में थे, क्योंकि इस्राइल को पहले मान्यता दे देने पर उनके खयाल से राजनयिक संबंध कायम करना उचित था। फिर इस्राइल राष्ट्र-संघ का सदस्य तो बन ही चुका था। उनका यह भी विचार था (जो उनकी खुशफहमी थी) कि तब हम अरब राष्ट्रों से उनके संबंधों के मामले में इस्राइल को प्रभावित कर सकेंगे। इस फैसले को लेने में अड़चन डाली मौलाना आज़ाद ने। समय बीतने पर भारत की नीति धीरे धीरे अरब राष्ट्रों के पक्ष में झुकती चली गयी। फिर यह तर्क दिया गया कि उस स्थिति में भारत अरब देशों को प्रभावित कर सकता है। इसमें कोई शक नहीं कि भारत का हित अरब देशों का पक्ष लेने में था, लेकिन गुट निरपेक्षता के एक बुनियादी पहलू के यह खिलाफ जाता था। वह पहलू था हर समस्या का उसके गुण-दोष के आधार पर आंकना।" कृष्ण मेनन न केवल अरबों के पक्ष में आ गये बल्कि अपने गुरु लास्की की मृत्यु के बाद इस पर उतर आये कि काहिरा में भाषण देते समय उन्होंने अरब देशों का आह्वान किया कि वे एक हो जायें और समय आने पर इस्राइल को समुद्र में डुबो दें। अंत में कटु आनन्द लेते हुए कहा, 'लेकिन इससे तो समुद्र ही गंदा हो जायेगा।"

1952 में कृष्ण मेनन को राष्ट्र-संघ की महासभा को जाने वाले भारतीय प्रतिनिधि-मंडल में शामिल किया गया जिसका नेतृत्व विजयलक्ष्मी पंडित कर रही थी। तब कृष्ण मेनन ने अपना ध्यान कोरिया-संकट पर केंद्रित किया।

1953 में विजय लक्ष्मी पंडित के राष्ट्र-संघ की महासभा के अध्यक्ष बन जाने पर मेनन ने भारतीय प्रतिनिधि मंडल का नेतृत्व सम्हाल लिया। उन्होंने कोरिया संकट के मामले में उपयोगी काम किया। युद्ध विराम के बाद भारत कोरिया में राष्ट्र-संघ-कमीशन का अध्यक्ष बन गया और जनरल थिमय्या ने इसकी बागडोर

सम्हाली।

1653 म ही कृष्ण मेनन मद्रास स राज्यसभा के सदस्य चुने गये।

भारत-चीन सबधो को बिगाडने के बीज राजदूत के एम पणिक्कर न खब अच्छी तरह बोय थे। उन्होने तिब्बत पर चीन के आधिराज्य को भारत द्वारा मान्यता देने की हिमायत की। यह वर्षों से जाना माना तथ्य था, इसलिए इस पर क्या आपत्ति हो सकती थी, लेकिन पणिक्कर की निगाह ने इस तथ्य को देखने से इकार कर दिया कि इस लबी अवधि के दौरान तिब्बत लगभग पूर्ण रूप स स्वायत्त राज्य रहा था। नेहरूजी इसके साथ ही मकमाहन रेखा को चीन द्वारा मान्यता दने क प्रश्न को भी उठाना चाहत थे। पणिक्कर ने यह प्रश्न न उठाने की सलाह दी। उनका खयाल था कि इससे मामले म विलब हो जायगा। लेकिन पणिक्कर के दिमाग म यह नही आया कि अब वे शक्तिशाली देश चीन से बातचीत कर रह है और इस कारण तिब्बत की स्वायत्तता समाप्त हो जायगी। पणिक्कर का खयाल था कि चीनी एकदम पलट जायगे और कहने लगेंगे कि मकमोहन रेखा साम्राज्यवादियो की बनायी रेखा है और फिर चीन सीमा-समस्याओ पर समान स्तर पर बातचीत करना चाहेगा। उन्होने घोषणा की कि अगर हमने धय स काम लिया तो मकमोहन रेखा का कोई न कोई सतोषजनक हल अवश्य निकल आयगा। खेद है कि नेहरूजी ने इस मौके पर हथियार डाल दिय। यही स तुष्टीकरण का दौर शुरू हो गया।

पणिक्कर को यह अधिकार देते हुए एक तार भेजा गया कि व चीन की सरकार को भारत द्वारा तिब्बत पर चीनी आधिराज्य की मान्यता से औपचारिक रूप से अवगत करादें। पणिक्कर न आधिराज्य के स्थान पर 'प्रभुत्व' शब्द डाल दिया। बाद म जब उनसे पूछताछ की गयी तो उन्होंने कूट-तार के प्रेषण म हुई गलती का जाना-पहचाना बहाना किया। इस सन्दभ म मुझे युद्ध के दिनो की एक घटना याद आती है। जब ईडन काहिरा जा रहे थे तो चर्चिल ने उनस कहा कि अगर हो सके तो वे उनके पुत्र रेन्डौल्फ स भेट कर लें जो उस समय इस्लामिया मे था। ईडन और रेन्डौल्फ ने काहिरा म कुछ समय एक साथ बिताया। काहिरा से ईडन ने चर्चिल को सक्षिप्त-सा कूट-तार भेजा "हैव सीन रेन्डौल्फ हू हैज जस्ट एगाईन्ड। ही सैन्डस हिज लव। ही इज लुकिंग फिट एड वैल एड हैज द लाइट आफ बैटल इन हिज आई।" प्रेषण म गलती या लदन मे फॉरेन आफिस वालो म से किसी की शरारत स जो तार चर्चिल को दिया गया उसम बटल क ए की जगह ओ हो गया था (यानी 'बैटल' का 'बाटल' हो गया था)। जब चर्चिल ने तार देखा तो वह कुछ क्षणो के लिए ईडन और रेन्डौल्फ दोनो से नाराज हुए।

लेकिन पणिक्कर की गलती 'बाटल' की गलती से ज्यादा गभीर थी और नेहरूजी को चीन-सरकार से यह बात स्पष्ट करने म जरा भी देर नही लगानी चाहिए थी। जरूरी होने पर उन्हे पणिक्कर को ही निकाल देना चाहिए था।

जब चीन न तिब्बत पर अधिकार कर लिया तो भारत के पास इस अपरिहार्य स्थिति को स्वीकार करने के अलावा कोई चारा नही था। तिब्बत की स्वायत्तता चुटकी बजते ही गायब हो गयी। नेहरूजी की आँखें बहुत देर बाद खुलीं। तिब्बत की स्वायत्तता के प्रश्न पर भारत अपने मत पर स्थिर रहते हुए भी विकल्प खुले रख सकता था। इसके बजाय पीकिंग म 31 दिसम्बर 1953 को नयी दिल्ली और तिब्बत के सबधो के विषय पर चीन और भारत की बातचीत शुरू हुई और 29 अप्रल 1954 को समझौता हो गया। इस पर भारत की तरफ स राजदूत राघवन

और चीन की तरफ से उप विदेश मन्त्री चाग हान फू के हस्ताक्षर हुए। समझौते की प्रस्तावना मे लिखा था कि यह समझौता कौन कौन-से विशेष सिद्धातो पर आधारित है। इन सिद्धाता को बाद मे उस सयुक्त विज्ञप्ति म भी शामिल कर लिया गया, जो चाऊ एन-लाई के दिल्ली के चार दिन के दौरे की समाप्ति पर 28 जून 1954 को जारी की गयी थी। बाद म यही सिद्धात 'पचशील' कहलाये। पचशील म निम्नलिखित सिद्धात शामिल थे

(1) एक दूसरे की सीमाओ की अखडता और प्रभुत्व के प्रति पारस्परिक सम्मान।

(2) अनाक्रामकता।

(3) एक-दूसरे के आतरिक मामलो मे हस्तक्षेप नही।

(4) समानता और पारस्परिक लाभ।

(5) शातिपूर्ण सह-अस्तित्व।

जब ससद म तिब्बत-समझौते की आलोचना हुई तो नेहरूजी ने बडा आश्चर्य जनक दावा किया। दावा यह था कि विदेशी मामलो के क्षेत्र मे, जितना श्रेय उन्हे तिब्बत पर भारत चीन के समझौते का मिलना चाहिए, उतना किसी और मामले का नही। नेहरूजी से हलका कोई और व्यक्ति यह दावा करके बच नही सकता था।

लदन मे हुई कामनवल्थ प्रधानमत्रियो की अगली कार्फ्रेंस म नेहरूजी ने तिब्बत-समझौते और चाऊ एन लाई तथा अपनी सयुक्त विज्ञप्ति के बारे म विस्तार से बताया और दावा किया कि अगर विश्वास झुठला भी दिया गया तो गलती निश्चय ही चीन की मानी जायगी। हम जानते हैं कि तब से अब तक सभी वादो का अतिक्रमण हुआ है और चीन को गलत ठहराने का परिणाम क्या निकला है? लद्दाख क्षेत्र म (जिसम से चीन ने गैरकानूनी रूप से चोरी छुपे अक्साई चिन रोड का निर्माण किया) भारतीय प्रदेश का हजारो मील का क्षेत्र चीन के कब्जे म है। नेहरूजी चाणक्य की कुछ बातो के बडे प्रशसक थे, जिसके सामने मकियावली भी फीका पड जाता है। नेहरूजी को चाणक्य के इस गुण ने सबसे अधिक प्रभावित किया था कि वह अपने विरोधियो को गलत ठहराने मे पटु था और बिना युद्ध का सहारा लिये सभी कुछ इच्छित प्राप्त कर लेता था। लेकिन नेहरूजी ने बडे आराम से यह तथ्य भुला दिया कि चाणक्य ऐसे साधनो का भी उपयोग करने म नही हिचकता था जो उनके लिए अरुचिकर होते। चाणक्य को साधन और साध्य के प्रश्न ने कभी नही सताया। नेहरूजी सम्राट अशोक के भी प्रशसक थे। कलिंग म बडे स्तर पर रक्तपात को देखकर अशोक म उत्पन्न पश्चात्ताप और फलस्वरूप कलिंग-युद्ध की समाप्ति की घोषणा की घटनाओ से वे सर्वाधिक प्रभावित थे। लेकिन उस समय तक अशोक वे सभी काय पूरे कर चुका था जो वह करना चाहता था और बस विजित प्रदेशो का एकीकरण शेष रहा था। कश्मीर म हमारी सेनाओ की स्थिति मजबूत और दुश्मन को धकेलने के लिए उनके तयार होते ही नेहरूजी ने कश्मीर म युद्ध विराम का आदेश दे दिया। तब उनके दिमाग म अशोक और कलिंग युद्ध था। नेहरूजी ने यह फसला बिना सोचे विचारे अचानक ले लिया था और यह उनकी बडी भारी भूल थी। इस पर सशस्त्र सेनाओ ने भी अपनी नाराजगी जाहिर की थी। नेहरूजी अनुकरण करते थे और दूसरो से सीखते भी थे। दूसरों की धारणाएँ अपनाने और उल्लेखनीय तर्जो मे उन्हे अपना बनाने की उनम अपरिमित क्षमता

थी। मूल रूप से गांधी की चेतना मौलिक थी जबकि नेहरूजी की चेतना दूसरी कोटि की। नेहरूजी में भावनाएँ ही भावनाएँ थीं, बुद्धि कम थी। यह तथ्य उनकी पुस्तकों में भी देखा जा सकता है।

मई 1954 में जेनेवा में हुई इण्डोचाइना कान्फ्रेंस में कृष्ण मेनन बिना निमंत्रण के पहुँच गये थे। उन्होंने चाऊ एन-लाई समेत सभी प्रतिनिधि-मंडलों के नेताओं की सहायता के लिए अपने को पेश किया। उनका प्रभाव विभिन्न मतों को निकट लाने में सहायक सिद्ध हुआ। ऐन मौके पर उन्होंने सही सूत्र निकाल दिखाये। जेनेवा कान्फ्रेंस की सफलता में कृष्ण मेनन का महत्वपूर्ण योग रहा। अंत में भारत को इन्दोचाइना के तीन राज्यों के नियंत्रण-कमीशन का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। ईडन मैकमिलन और अमरीकी प्रवक्ता केबट लाज ने कोरिया संकट को हल करने और जेनेवा में इन्डोचाइना कान्फ्रेंस को सफल बनाने में भारत और व्यक्तिगत रूप से मेनन के योगदान की भूरि भूरि प्रशंसा की।

1954 में नेहरूजी कृष्ण मेनन को मंत्रिमंडल में लेना चाहते थे लेकिन मौलाना आज़ाद ने इस पर आपत्ति की। उन पर लगे बहुत-से आरोप इस आपत्ति का कारण बताये गये। मौलाना ने नेहरूजी से साफ-साफ कह दिया कि वे कृष्ण मेनन के साथ मंत्रिमंडल में नहीं रहेंगे। दो केन्द्रीय मंत्री सी डी देशमुख और टी टी कृष्णमाचारी भी, कृष्ण मेनन को मंत्रिमंडल में शामिल करने के पक्ष में नहीं थे। लेकिन उनकी आपत्ति पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया, क्योंकि वे दोनों राजनीति के अखाड़े के सीखिया पहलवान थे। लेकिन मौलाना का रुख देखकर नेहरूजी को भारी सदमा पहुँचा। इतने लंबे समय के संबंधों के दौरान नेहरूजी ने हमेशा मौलाना के प्रति आदर और स्नेह का भाव रखा और गांधीजी तक के सामने उन्होंने मौलाना का पक्ष लिया। अपनी इस भावना की अभिव्यक्ति नेहरूजी ने जनता के सामने यह घोषित करके की कि वे सरकार से गंभीरता से त्याग-पत्र देने की सोच रहे हैं। लेकिन मौलाना पर कोई असर न हुआ। कृष्ण मेनन को मंत्रिमंडल में प्रवेश करने के लिए डेढ़ वर्ष और प्रतीक्षा करनी पड़ी।

1954 की गर्मियों में जबसे कृष्ण मेनन की भेंट चाऊ एन लाई से हुई वे तब से चीन की विदेश मंत्री की भूमिका निभाने का प्रयत्न करते रहे। राष्ट्रपति नासिर के सामने में भी 1956 में स्वेज़ संकट से पहले और बाद में उनका यही रवैया रहा और फलस्वरूप मिस्र के विदेश मंत्री मुहम्मद फाजी से उनकी झड़प हो गयी। 1953 के बाद के बाद से कृष्ण मेनन राष्ट्र-संघ के महा सचिव डाग हैमरशोल्ड के विरुद्ध भी अपना अशोभनीय अभियान चलाते रहे। कृष्ण मेनन उन्हें इसलिए दूसरों की दृष्टि में गिराना चाहते थे ताकि अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में वही अकेले शांति कराने वाले रह जायें। हैमरशोल्ड के मन में भी कृष्ण मेनन के प्रति खुला तिरस्कार था लेकिन राष्ट्र-संघ के शांति प्रयासों में बड़े स्तर पर योग देने के कारण नेहरूजी और भारत के प्रति उनके मन में अगाध सम्मान था। वे कहा करते थे "भारत के लिए ईश्वर का धन्यवाद।"

32

राष्ट्र-सघ मे हगरी पर कृष्ण मेनन का वोट

सोवियत यूनियन सयुक्त राज्य अमरीका ग्रेट ब्रिटेन फ्रास आस्ट्रेलिया कनाडा भारत न्यूजीलैंड, दक्षिण अफ्रीका, चेकोस्लोवाकिया युगोस्लाविया बाईलोरशिया और यूक्रेन द्वारा हस्ताक्षरित हगरी सधिपत्र के अनुच्छेद 2 म उल्लेख था कि हगरी क्षेत्राधिकार के अधीन सभी व्यक्तियो के लिए—चाहे उनकी जाति लिंग भाषा और धर्म कोई भी हो—मानवीय अधिकारो और मौलिक स्वतन्त्रताओ के उपयोग की व्यवस्था का दायित्व हगरी सरकार पर होगा जिनमे अभिव्यक्ति समाचारपत्र और प्रकाशन, धर्म-पूजा राजनीतिक मत रखने और जनसभा करने की स्वतन्त्रताए शामिल है।

हगरी की राष्ट्रीय क्राति की चिगारी 23 24 अक्तूबर 1956 की रात को भडक उठी।

यहाँ यह भी उल्लेख कर दिया जाय कि स्वेज सकट के समय अंग्रेज फ्रासीसियों का मिस्र पर आक्रमण 31 अक्तूबर 1956 को हुआ था। मिस्र पर अग्रेज फ्रासीसी आक्रमण की निन्दा करने म भारत ने कोई देरी नही दिखायी।

सोवियत यूनियन को हगरी को क्राति दबाने का अच्छा मौका हाथ लगा और उसने 4 नवबर 1956 को टैंकों और इफेन्ट्री के साथ जबदस्त हमला कर दिया। 1 00 000 से भी अधिक हगरी वासी शरणार्थियो के रूप म देश छोडकर आस्ट्रिया भाग गये। इस तरह के भी समाचार थे कि हगरी के हजारो युवा लोगो को साईबेरिया भेज दिया गया।

5 नवबर को कृष्ण मेनन न्यूयार्क पधारे। 9 नवबर तक हगरी की घटनाओ पर भारत चुप्पी साधे रहा। भारत और विदेशो म बहुत-से लोगो को यह चुप्पी विचित्र प्रतीत हुई।

9 नवबर को राष्ट्र-सघ की महासभा की दूसरी आपाती बैठक म हगरी पर

पाँच राष्ट्रो का प्रस्ताव मतदान के लिए आया, जिसे इटली, आयरिश गणतंत्र पाकिस्तान क्यूबा और पीरू ने संयुक्त रूप से प्रस्तुत किया था। इस प्रस्ताव में सोवियत यूनियन से आग्रह किया गया था कि वह अविलंब हंगरी से अपनी सेनाएँ हटा ले और राष्ट्रसंघ के तत्वाधान में हंगरी में स्वतंत्र चुनाव कराये जायें। प्रस्ताव के पक्ष में अड़तालीस और विपक्ष में ग्यारह वोट पड़े तथा सोलह देशों ने मतदान में भाग नहीं लिया। भारत ने इस प्रस्ताव के विपक्ष में वोट दिया और विपक्ष में डालने वालों में गैर-साम्यवादी देशों में वही अकेला था। जिन सोलह देशों ने मतदान में भाग नहीं लिया उनमें से तेरह अफ्रीकी-एशियाई गुट के थे। आस्ट्रिया फिनलैंड और हैटी भी इनके साथ थे।

विदेशी मामलों के क्षेत्र में भारत सरकार की किसी और कार्रवाई को लेकर संसद में और अन्य मंचों पर इतनी गरमागरमी कभी नहीं हुई जितनी कि राष्ट्र संघ महासभा में कृष्ण मेनन के वोट को लेकर हुई। सारे समाचारपत्र खड्गहस्त थे। बड़े-बड़े सभी नेताओं ने माँग की कि कृष्ण मेनन को वापस बुलाया जाये और उसे राजनीति के क्षेत्र से बहिष्कृत कर दिया जाये।

1967 में कनाडा के लेखक माइकेल ब्रेचर के सामने कृष्ण मेनन ने जो डींग मारी थी कि हंगरी के प्रश्न पर उन्हें कोई निर्देश नहीं दिया गया था और वे निर्णय लेने में स्वतंत्र थे एकदम गलत है। कृष्ण मेनन ने खुद तार भेजकर निर्देश माँगा था। जब तार आया तो उस समय नेहरूजी जयपुर में थे। मैंने उन्हें टेलीफोन किया और कृष्ण मेनन के तार का विषय कह सुनाया। नेहरूजी ने मुझसे कृष्ण मेनन को इस निर्देश का एक अत्यावश्यक तार भेजने को कहा कि वे पाँच राष्ट्र वाले प्रस्ताव पर मतदान न करें। मैंने नेहरूजी के नाम से यह तार भेज दिया।

माइकेल ब्रेचर से कृष्ण मेनन की स्वीकारोक्ति यह थी कि भारतीय प्रतिनिधि मंडल में से कुछ ने मतदान न करने की सलाह उन्हें दी थी लेकिन उन्होंने उनसे कहा, हमारी या तो किसी विषय में दृढ़ धारणा हो या कतई न हो। किसकी धारणा? यह धारणा निश्चय ही नेहरूजी की नहीं थी। और न ही समूचे मंत्रिमंडल की थी।

कृष्ण मेनन के न्यूयार्क से लौटने के तुरंत बाद मैंने वोट विपक्ष में देने के बारे में उनसे पूछताछ की जो निर्देशों की अवहेलना थी। उन्होंने मुझे बताया कि निर्देशों वाला तार उन्हें जरा देर से मिला था। मैंने मुस्कराते हुए उनसे कहा कि मैं अभी न्यूयार्क में भारत के स्थायी प्रतिनिधि को लिखकर पूछता हूँ कि निर्देशों का तार वहाँ किस तारीख को कब पहुँचा था और राष्ट्र-संघ में प्रस्ताव पर वोट किस समय दिये गये थे। कृष्ण मेनन विचलित नहीं हुए। उन्होंने कहा 'बुजुर्गवार उस पुरानी बात को क्यों कुरेदना चाहते हो, जो कभी की दब चुकी है?' मैंने वमन से या कहें मूखना से, मामले को वहीं-का-वहीं छोड़ दिया।

नेहरूजी के लिए यह मामला कुछ इस तरह का रूप ले गया कि या तो अपने अधीनस्थ को मँझधार में छोड़ दो या उसकी हरकत को अपनी आत्मरक्षा के लिए कुछ सीमा तक समर्थन दो। नेहरूजी ने समर्थन देने का विकल्प चुना। इस विषय में संसद में उन्होंने जो भाषण दिया उससे अधिकांश लोग आश्वस्त नहीं हुए। इस सारे दुखद कांड में केवल एक ही व्यक्ति था जिसकी कोई 'धारणा' थी और वह था कृष्ण मेनन। उनकी इस धारणा की खातिर देश और नेहरूजी को बहुत भारी नैतिक मूल्य चुकाना पड़ा। भारत के बारे में अन्य देशों की मान्यता में

दरार आ गयी और गुट निरपेक्षता की नीति का रूप बिगड कर सामने आ गया।

कृष्ण मेनन ने इस विषय में माइकेल ब्रेचर को फिर बहकाया कि नेहरूजी ने हगरी के प्रश्न पर ससद में उनका तगडा समर्थन किया था। इस पर मुझे डिजरायली के प्रधानमन्त्रित्व के कार्यकाल का एक प्रसग याद आता है।

रूसी अफगानिस्तान के अमीर को फाँसने की कोशिश में बहुत अरसे से लगे हुए थे। अमीर की पूर्ण सहमति से रूसियो ने काबुल में एक मिशन भेजा। उनकी इस सफलता पर लार्ड लिटन को ईर्ष्या हुई, जो उस समय भारत के वायसराय थे। लार्ड लिटन डिजरायली के पुराने राजनीतिक मित्र बुलवर के पुत्र थे। डिजरायली भी रूसी मिशन को वापस भिजवाने के लिए, मैत्रीपूर्ण बातचीत के जरिए काफी प्रयत्न कर चुके थे। उनकी सलाह के बावजूद लार्ड लिटन के दिमाग में न जाने क्या आया कि उन्होने भी एक ब्रिटिश मिशन काबुल भेज दिया। अमीर ने लिटन के दल को अफगान सीमा के प्रवेश-द्वार पर ही रोक दिया। उस अचानक सामने आन पडी स्थिति में डिजरायली के सामने दो ही विकल्प रह गये—या तो वह एक छोटे-से राजा के सामने सिर नीचा करके पीछे हट जाय या खतरनाक युद्ध छेड दे। इस मामले में ग्लैडस्टोन डिजरायली के विरुद्ध जनमत को जगाने में सफल हुआ और उससे चिढकर डिजरायली ने कहा, 'जब कभी कोई वायसराय या कमाडर इन चीफ आज्ञा की अवज्ञा करे तो उसे कम से कम अपनी सफलता के बारे में तो निश्चिन्त होना ही चाहिए।' क्या डिजरायली को लार्ड लिटन को नकार देना और इस तरह एक अधीनस्थ की बलि देकर अपनी सरकार को दोष रहित सिद्ध करना चाहिए था? लेकिन यह डिजरायली के सिद्धातो के प्रतिकूल था। उसने लॉर्ड लिटन का समर्थन किया युद्ध का आदेश दिया और जनरल राबर्ट्स ने अमीर की सेनाओ को हराया। रूसियो और ग्लैडस्टोन ने जो बावेला खडा किया था वह यू चुटकी बजाते ही हवा में उड गया। चलती का नाम गाडी होता है। लेकिन नेहरूजी को उस एक वोट को अपने माथे लेकर जीना पडा और वे अपनी बाकी की जिन्दगी में इसी वोट के समर्थन में बोलते रहे।

33

वी के कृष्ण मेनन—3

1955 के उत्तरार्द्ध में भारत ब्रिटिश सैनिक वायुयानों के बजाय सोवियत यूनियन से कुछ सैनिक वायुयान खरीदने के प्रश्न पर विचार कर रहा था। कृष्ण मेनन को इसकी सूघ लग गयी। उन्होंने मुझसे कहा कि रक्षा-सामग्री के लिए हम अपने को सोवियत यूनियन पर निर्भर रहने की स्थिति में नहीं रखना चाहिए क्योंकि वह देश अपनी नीतियों में अचानक परिवर्तन करते देखा गया है और इस तरह के परिवर्तन हमें किसी दिन मझधार में छोड़ सकते हैं। उन्होंने इस विषय में प्रधान मंत्री से बात नहीं की। लेकिन राष्ट्र संघ से लौटते हुए लंदन में कुछ समय रुकने के अवसर से लाभ उठाकर उन्होंने एंथनी ईडन से बात की और ब्रिटिश प्रधानमंत्री को भारत का इरादा बताया। ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने नेहरूजी को तार से संदेश भेजा जिसमें भारतीय रक्षा प्रणाली में सोवियत प्रभाव के घुसने के बारे में आशंका ज़ाहिर की थी। उन्होंने यह उम्मीद भी की थी इस तरह के सुझाव का परित्याग कर दिया जायगा। भारत ने मामले को आगे नहीं बढ़ाया और उसके बजाय ब्रिटिश युद्ध विमानों का आर्डर भेज दिया।

1955 की गर्मियों में नेहरूजी ने मुझ से अलग से कहा कि मैं महालेखा नियंत्ता और परीक्षक ए के चन्दा और रक्षा-सचिव एम के वल्लाडी से उन अनेक घोटालों के अंतिम निपटान के बारे में बातचीत करूं जिनमें कृष्ण मेनन फंसे हुए थे। उन दोनों से मेरे अच्छे संबंध थे लेकिन दोनों ही कृष्ण मेनन के जानी दुश्मन थे। मुख्य घोटाले निम्न थे

जीप ठेका—कश्मीर युद्ध में थल सेना को जीपों की सख्त ज़रूरत थी लेकिन वे मिल नहीं रही थीं। कृष्ण मेनन ने पाटर नामक एक दुस्साहसी बिचौलिए से सौदा किया उसकी अपनी छोटी सी फर्म थी और उसमें केवल ±0 पौंड की पूंजी लगी थी। पाटर को तगड़ी रकमें पेशगी दी गयी और उसने पुरानी जीपों

की मरम्मत वग़ैरह करा के भारत को पेल दीं। जब जीपें यहाँ आयीं तो थलसेना के विशेषज्ञों ने उन्हें सेवा के अयोग्य घोषित करके रद्द कर दिया। कृष्ण मेनन से कहा गया कि पाटर को और भुगतान न होने दें। सरकार को इस सौदे में 1 36 052 पौंड यानी 18 लाख रुपये का घाटा हुआ, और फिर भी पॉटर के दावे बरक़रार रहे।

गोलाबारूद और हथगोलों की प्राप्ति—इस बार फिर इसी तरह के दिवालिया और दुस्साहसी बिचौलिया के माफ़त सौदे हुए। इनमें मुख्य व्यक्ति वनमिसन था जो पहले भी किसी अपराध में फँस चुका था। इसमें पाटर भी शामिल कर लिया गया, शायद इसलिए कि जीप-ठेके में से उसके दावों का कुछ भुगतान हो सके। कृष्ण मेनन ने अंधाधुंध अतिरिक्त भुगतानों की मंजूरी दी जो बट्टे खाते चले गये और इनकी वजह से भारत सरकार को 5 00 000 पौंड यानी लगभग 72 लाख रुपये का घाटा उठाना पड़ा।

इन दोनों सौदों में समझौते करते वक़्त और बाद में ठेकों की शर्तों को बनाने और उन्हें लागू करते समय कार्यविधि संबंधी और तकनीकी अनियमितताएं बरती गयी थीं और फ़ैसले भी गलत लिये गये थे।

मेगे थियेटर के अधिग्रहण में अग्रिम भुगतान—इसमें बड़ी अक्षम्य मूर्खता हुई, मेनन ने और कोई नहीं की हालांकि लोगों ने इसे उतना भारी गबन कहा था। उन्होंने एक ऐसी प्राइवेट कंपनी को 17 000 पौंड, यानी 2,28 0 0 रुपये का भुगतान किया जो दिसंबर 1949 में ही 1 000 पौंड की मामूली पूंजी से शुरू की गयी थी और जिसकी चुकता पूंजी थी 2 पौंड। जालसाज वनमिसन इस सौदे में भी शामिल था। अंत में सरकार को पूरी रकम बट्टे खाते डालना पड़ी। मैंने कृष्ण मेनन से इनके बारे में बड़ी बारीकी से पूछताछ की और उन परिस्थितियों के बारे में पूछा जिनमें यह सौदा हुआ था। मैंने उन्हें याद दिलाया कि उस समय कश्मीर में कोई कारवाई नहीं चल रही थी। कृष्ण मेनन बेचैन दीख रहे थे और मेरे सवालों का जवाब देने से कतरा रहे थे। फिर कहने लगे छोड़ो भी बुज़ुर्गवार चाय का कप मँगवाओ।' जब वह चाय पी रहे थे तभी कोई कमरे में आ गया और कृष्ण मेनन ने राहत की साँस ली और वहाँ से चल दिये।

इसके अलावा आवास भवन का पट्टे पर लेने और कारों की अदला बदली के आरोप भी थे लेकिन यह मामले अपेक्षाकृत मामूली थे।

रक्षा-सचिव वल्लोडी से मेरी बातचीत हुई। मैंने उनसे कहा कि मैं पहले बड़ी मुश्किल महालेखा-परीक्षक चंदा से निपटने की सोच रहा हूँ। वैल्लोडी ने मुझे आश्वासन दिया कि इस मामले में चंदा साहब जो बात मान लेंगे वे भी उससे सहमत हो जायेंगे।

चंदा साहब के साथ कई बैठकें हुईं। मैंने उन्हें बताया कि कृष्ण मेनन के इन घोटालों के मामले को मैं खत्म देखना चाहता हूँ और इस संबंध में उनके सुझावों का स्वागत है। उन्होंने मुझसे पूछा आप कृष्ण मेनन को बचाने के लिए अपनी गर्दन क्या फँसाना चाहते हैं? मैंने उनसे कहा कि कृष्ण मेनन के बजाय मेरी दिलचस्पी इसमें है कि सरकार अपने दामन को इन मामलों में पाक साफ़ दिखा सके।

हमारी अंतिम बैठक में महालेखा-परीक्षक ने निम्न सुझाव दिये
इन दो बड़े ठेकों के मामले में सरकार संतोषजनक उत्तर जुटा दे कि आंतरिक सुरक्षा और रक्षा-नीति के कारण अत्यावश्यक होने पर यह सामग्री

रक्षा-अधिकारियों को मंगानी पड़ी और यह सामग्री पुराने स्रोतों से प्राप्त नहीं हो सकी। उस सूरत में सामग्री मँगाने के लिए अप्रचलित तरीकों से काम लेना पड़ा। और इसमें बड़े खतरे उठाये गये। इस आशय का स्पष्ट बयान सरकार जनलेखा कमेटी के सामने दे दे। साथ ही उस तथ्य का भी उल्लेख कर दिया जाये कि मन्त्रिमंडल की एक अनौपचारिक कमेटी ने—जिसमें प्रधानमंत्री, रक्षा मंत्री एन. गोपालस्वामी आयंगर और वित्त मंत्री सी. डी. देशमुख थे—इन सौदों की छानबीन की है और कृष्ण मेनन से भी बारीकी से पूछताछ की है और वह कमेटी इस नतीजे पर पहुँची है कि संबंधित लोगों की नेकनीयती के विरुद्ध कोई स्पष्ट सबूत नहीं मिला है। इस बात का भी उल्लेख कर देना चाहिए कि भविष्य में विदेशों से साज सामान मँगाने के बारे में उचित निर्देश दे दिये गये हैं ताकि इस तरह की अनियमितताएं फिर से न हो सकें।

इस तरह के बयान का सुझाव ग्रेट ब्रिटेन की इस संसदीय-परंपरा पर आधारित है जिसे हमने भी अपना लिया है कि अगर सरकार जनलेखा कमेटी की सिफारिशों पर कारवाई करने में अपने को असमर्थ पाये तो वह अतिरिक्त जानकारी जुटा कर उस कमेटी के सामने फिर से मामले को पेश करे ताकि जनलेखा-कमेटी अपनी सिफारिशों पर फिर से विचार कर सके।

लगता यह है कि जनलेखा कमेटी द्वारा मामले की छानबीन के लिए एक या एक से अधिक जज बिठाने की सिफारिश से सरकार द्वारा मान लिये जाने पर भी कोई ठोस नतीजा सामने नहीं आयेगा। जज किसी विदेशी राष्ट्रिक को अपने सामने गवाही देने के लिए नहीं बुला सकते। इस गंभीर कठिनाई के कारण इसमें शक है कि कानूनी छानबीन से कोई सही नतीजे निकल सकते हैं। इससे पहले से ही उलझा हुआ मामला और उलझ सकता है।

मामले को अच्छी तरह देखने के बाद मेरी सलाह यह है कि रक्षा मन्त्रालय वित्त मन्त्रालय की सहमति से जनलेखा कमेटी के सामने ऊपर बताये आधार पर पूरा विवरण भेजे और हानियों, अतिरिक्त लागतों और दूसरी अनियमितताओं पर लेखापरीक्षा आपत्तियों के गंभीर अभियोग को स्वीकारे। साथ ही उन स्थितियों का भी उल्लेख कर दिया जाय जिसमें यह खतरे उठाये गये थे और हानि की संभावना देख ली गयी थी। चूंकि आपराधिक प्रमाद या उपापराध का कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है और त्रुटि सुधार के लिए कदम उठा लिये गये हैं ताकि भविष्य में इस तरह के नुकसान न उठाने पड़ें इसलिए जनलेखा-कमेटी से अपने निष्कर्षों पर फिर से विचार करने के लिए कहा जाय। बचाव की और कोई तरकीब काम नहीं करेगी और स्थिति से निपटने का इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं। अगर इन्हीं सुझावों पर चला गया तो जनलेखा-कमेटी अपने निष्कर्षों पर फिर से विचार कर सकती है।

मैंने कहा कि मामले को फिर से जन लेखा-कमेटी के पास ले जाने से व्यर्थ की देर लगेगी। बेहतर यही रहेगा कि सरकार संसद के दोनों सदनों में इसी आशय का बयान दे दे जो उन्होंने सुझाया था। इस बयान का मसौदा रक्षा-सचिव वैल्लोडी तैयार करें और वित्त मंत्री सदन में यह बयान दें। महालेखा-परीक्षक

मेरे इस सुझाव म सहमत हो गय। तब मैंने उनस पूछा "अगर कृष्ण मेनन इस हल स सतुष्ट न हो तो क्या उन्ह जनलेखा-कमेटी के सामने खुद हाजिर होने और अपने को सही ठहराने का अवसर दिया जा सकता है? उन्ह उन मामलो से सबधित सभी दस्तावेज उपलब्ध कराये जाने चाहिए जो जनलेखा-कमेटी के सामने हैं ताकि उन्ह यह शिकायत न रह कि जनलेखा कमेटी से तथ्य छुपाये गये हैं।" वे इस पर भी राजी हो गये। बाद म रक्षा-सचिव ने भी मेरे यह दोनो सुझाव मान लिये।

मैंने कृष्ण मेनन को बताया कि मेरी महालेखा-परीक्षक और रक्षा सचिव स क्या-क्या बातें हुई है। कृष्ण मेनन जानत थे कि व उनके जानी दुश्मन हैं। मैंने कृष्ण मेनन से कहा कि उन्ह तो उनकी इस मदद के लिए उनका अहसान मानना चाहिए। लेकिन यहाँ गलती मेरी हुई क्योकि कृष्ण मेनन पर कृतज्ञता का दोषी होने का आरोप कभी नहीं लगाया जा सका। मैंने कृष्ण मेनन के सामने दोनो विकल्प रख दिये। मैं उनसे साफ कह दिया कि इनके अलावा तीसरा रास्ता कोई नही है और इसमे भी वे स्वतत्र है कि उन्ह कौन सा विकल्प चुनना है। उन्होने कहा कि बयान देने का जो सुझाव दिया गया है वह उन्ह पूरी तरह से दोपमुक्त नहीं करता। मैंने उनसे कहा कि उनकी आलोचना हलके शब्दो म की गयी है और अगर पूरी तरह स दोपमुक्त होना चाहते है तो वे जनलेखा कमेटी के सामने जा सकते है और अपनी बात के लिए लड सकते है बशर्ते उनके पास इसके लिए ठोस आधार हो। मैंने उन्हे सलाह दी कि वे कुछ दिन इस पर अच्छी तरह से सोच-विचार कर ले और फिर कोई फैसला करें। उसी रात व दो बजे मेरे कमरे म ये और बत्ती जलाकर उन्होने मुझे जगाया। वे भूत की तरह लग रहे थे और उनके सिर के बाल खडे थे। रोती आवाज म उन्होने मुझसे पूछा "बुजुर्गवार तुम क्या सलाह देते हो? मुझे गुस्सा आया और मैंने कहा मेरी सलाह यह है कि तुम यहाँ स चले जाओ और जाकर सो जाओ।' लेकिन वे फिर भी जिद करते रहे। मैंने उनसे कहा 'क्या तुम यह चाहते हो कि तुम्हारे द्वारा लिये जाने वाला निर्णय मैं लू? मैं निर्णय न लूगा। लेकिन ससद म दिये जाने वाले बयान पर सहमति जताना तुम्हारे अपने हित म है। कोशिश करूँगा कि तुम्हारा लगोटिया यार' देशमुख यह बयान दे। अगर तुम इस बात से सहमत नहीं हुए तो और ज्यादा परेशानियो म फँस जाओगे। 1950 मे तुमने जो गेटी थियेटर का सौदा किया था उसे क्या तुम उचित ठहरा सकते हो? तुम्हारे गले म तो कभी का फासी का फदा होना चाहिए था।" सुनकर वे कुछ देर चुपचाप बैठे रहे और फिर कहने लगे 'ठीक है तुम प्रधानमत्री स कह देना कि मैं बयान दिये जाने वाली बात से सहमत हूँ।"

मैंने प्रधानमत्री को पूरी स्थिति समझा दी। वे पूरी तरह से सहमत हो गये। फिर उन्होने कहा लेकिन बयान देशमुख क्या दे? यह बयान मैं क्या न दू?' मैंने उत्तर दिया, जी हा आप भी दे सकते हैं। लेकिन देशमुख कृष्ण मेनन के ससद म कटु आलोचक माने जाते रहे हैं और उनके बयान देने से और अधिक अच्छा प्रभाव पडेगा। फिर देशमुख मौलाना के भी नजदीक हैं और वित्त मत्री के रूप म यह वक्तव्य देने के लिए उनसे अधिक और कोई उपयुक्त व्यक्ति नहीं है। इसके लिए आपका देशमुख से बात करना जरूरी नही है। मैं कोशिश करूँगा कि देशमुख राजी हो जायें।' प्रधानमत्री मान गये।

बहरहाल न महालेखा-परीक्षक के सुझावो के अनुसार बयान का मसौदा तैयार

करने म अधिक समय नहा लगाया। बयान का मसौदा मिलत ही मैं उसे महालेखा परीक्षक के पास ल गया जा पहल ही मुझसे निजी रूप से इसे देखकर सुधारने का वादा कर चुके थ। उन्होने स्पष्ट कर दिया था कि सरकारी तौर पर उनका यह काम नहीं है कि वे कृष्ण मनन या सरकार को बचाने का रास्ता सुझाय। महा लेखा परीक्षक ने उस मसौदे म अपने हाथ स कुछ शब्द बदले। इस सशोधित मसौदे को मैं विदेश मत्रालय क महासचिव एन आर पिल्ल के पास ले गया जो देशमुख के अच्छे मित्र थे और मैंने उन्हे पूरी स्थिति से अवगत करा दिया। मर आग्रह पर वे उसे देशमुख क पास ल गये और उन्होने उनस बात की। उन्होन देशमुख को यह भी बता दिया कि इस बारे म मैं भी एक दो दिन बाद उनसे मिलूगा। जब मैं देशमुख से मिला तो उन्होने कोइ एतराज़ नहीं किया और मुझे प्रधानमत्री स यह कहने की मजूरी द दी कि वे स्वय यह बयान देंगे।

इस तरह अतत वह बयान दोनो सदनो म दिया गया। जब मौलाना ने यह सुना कि इसके पीछे मेरा हाथ है तो व बहुत नाराज हुए। कुछ समय पहले मौलाना न शत रखी थी कि अगर दीवान चमनलाल को मत्रि परिषद म शामिल कर लिया जाये तो व मत्रिमडल म कृष्ण मनन के शामिल किये जान पर भी राजी हो जायेंगे। मौलाना की इस शत पर नेहरूजी सक्त म आ गय। उन्होने विदेश मत्रालय के एक सचिव से कहा कि वे मौलाना क पास वह फाइल भेज दें जिसम तुर्की और अर्जेंटाइना म राजदूत के अपने कायकाल म खाद्यान्नो के सदिग्ध सौदो म चमनलाल का हाथ होने क ब्यौरे है। मौलाना खामोश हो गये।

अब मौलाना के पास मत्रिमडल म कृष्ण मनन का प्रवेश रोकने का और कोई बहाना नही रह गया था। 3 फरवरी 1956 को कृष्ण मेनन को बिना विभाग क मत्री-पद की शपथ दिलायी गयी। व राष्ट्र सघ म भारतीय प्रतिनिधि मडल का भी नेतृत्व करते रहे और मत्री बनने के बाद और अकड म आ गये।

1956 57 के आम चुनावो म कृष्ण मनन क लिए चुनाव क्षेत्र तय करने का सवाल उठा। कुछ वामपथियो न उत्तरी बम्बई का सुझाव दिया। कृष्ण मनन न मेरी सलाह मागी। मैंने उनसे कहा जब तक प्रधानमत्री बागडोर सभाल हुए हैं तुम उत्तरी बम्बइ से चुनाव जीतते रहोग। लेकिन उनके बाद नही जीत सकोग, क्योकि तुम्हारा असली चुनाव क्षेत्र जवाहरलाल नेहरू हैं। अगर मैं तुम्हारी जगह होता तो केरल चला जाता और कालीकट स खडा होता। तुम्हारी जडें वहा हो सकती हैं महाराष्ट्र म नही। कृष्ण मनन न आसान रास्ता पकडा और वे उत्तरी बम्बई म खडे हो गय। मेरी भविष्यवाणी सच्ची निकली। नेहरूजी की मृत्यु के बाद कृष्ण मेनन को उत्तरी बम्बई के लिए काग्रेस का टिकट तक न मिल सका। वे उत्तरी बम्बई म स्वतन्त्र उम्मीदवार के रूप म खडे हुए और दोनो बार ऐसे व्यक्तियो स उन्होने मात खायी जिनका काग्रेस तक म कोई रुतबा नही था।

स्वेज और हगरी के सकटो पर कृष्ण मेनन के रुख स कुढे बैठे पश्चिमी राष्ट्र उन्ह नीचा दिखाने की फिराक म थ। उनकी शह मिलने पर पाकिस्तान के विदेश मत्री ने कश्मीर समस्या पर 2 जनवरी 1957 को सुरक्षा परिषद म बहस के लिए पत्र भेजा। यह बहस 23 जनवरी को शुरू हुई। इसम कृष्ण मेनन ने लगातार तेईस घटे लबा भाषण दिया और देने के तुरत बाद गिरकर बेहोश हो गय। व उस दौरान नींद की तेज़ गोलियो के असर म थे। हस्बेमामूल वे अपने साथ सरकारी खर्चे पर प्रेस ट्रस्ट आफ इडिया के दिल्ली-ब्यूरो के अध्यक्ष को न्यूयार्क ल गय थे। तार वगैरह और दूसरे खच अलग स। सुरक्षा परिषद के सदस्यो को वह भाषण

सहना पडा और मॉस्को, लदन, परिस, न्यूयार्क और दुनिया की बाकी राजधानियो के समाचारपत्रा म इस भाषण को दो चार वाक्यो म देकर ही छुट्टी कर दी गयी थी। लेकिन भारत के समाचारपत्रा म यह सुर्खियो के साथ पूरा-का-पूरा छपा। बकवास सुनने का मज़ा हम भारतीयो को जितना अधिक पसद है, उतना शायद दुनिया मे किसी और जाति को नहीं। कृष्ण मेनन को लगा कि वे अब तो 'कश्मीर के नायक' बन गये हैं बावजूद इसके कि उनका भाषण भारत के पक्ष मे एक वोट तक नहीं दिला सका। भारत और उन्ह—दोना का सोवियत वीटो ने उबारा।

11 मार्च 1957 को कृष्ण मेनन उत्तरी बम्बई के चुनाव-क्षेत्र से लोकसभा के लिए चुन लिये गये। उन्हे अपने प्रतिद्वन्द्वी से केवल 7,741 वोट अधिक मिले थे। चुनाव के बाद मैंने प्रधानमंत्री को सुझाव दिया कि कृष्ण मेनन को रक्षा मन्त्रालय दे दिया जाये। उम्मीद यह थी कि इस तरह विदेशी मामला म से धीरे धीरे उनका पत्ता साफ हो जायगा लेकिन मेरी उम्मीदें पूरी नहीं हुई।

'कश्मीर के नायक' का चरित्र ओढ लेने और चुनाव म जीत जाने के कुछ समय बाद से कृष्ण मेनन अपना आपा खोने लगे। उन्होने कईयो को साफ साफ शब्दो म कह दिया कि नेहरूजी के बाद उनका स्थान स्वाभाविक रूप से वही लेंगे। ऐसी बातें सुनकर काग्रेस के अनेक बडे नेता नाराज़ हो गये। रक्षा-मन्त्रालय म वरिष्ठ सिविल अधिकारियों और सैनिक अफसरो के सामने वे मन्त्रिमडल के अपने मुख्य सहयोगियो की आलोचना करते। उनकी आलोचना के लक्ष्य होते थे गोविन्दवल्लभ पत, मोरारजी देसाई और टी टी कृष्णमाचारी। वे अक्सर पतजी को "बिल्ला भालू" कहा करते थे। वे लोगो पर गदे जुमले खुले तौर पर उछालते थे और उन्हे दोस्त बनाने का ढग कभी नहीं आया।

कृष्ण मेनन ने मुझे बताया कि प्रधानमंत्री की तरह वे भी जहा जाते है भारी भीड जुड जाती है। मैंने उनसे कहा कि एक व्यक्ति और हुआ है जो नेहरूजी से ज्यादा भीडें जुटा लेता था। लेकिन वह भी ज्यादा दूर नहीं चला और कुछ अरसे म ही उप-मंत्री बनकर एक तरफ बैठ गया जहा किसी का ध्यान ही नहीं जाता। उन्होने मुझसे पूछा 'वह कौन था?'' मैंने कहा 'इडियन नेशनल आर्मी का शाहनवाज़ खां।' मैंने उन्हें याद दिलाया कि ड्यूक आफ वेलिंग्टन का क्या हश्र हुआ था। उन्होंने जीवित रहते अपनी आँखो से जनता द्वारा अपने घर पर पथराव होते देखा। मैंने उन्हें बताया कि नेहरूजी की तरह पूरे जीवन भर लोकप्रिय बने रहना हरेक के बस की बात नहीं। और फिर हुआ यह कि कृष्ण मेनन के सरकार से बाहर निकलने के बाद उत्तरी भारत म कई जगहो पर जनता ने उन पर पत्थर फेंके।

1957 म रक्षा मन्त्रालय और विदेश-मन्त्रालय म उच्च स्तरो पर पता लग गया था कि चीन ने लद्दाख म अक्साई चिन सडक तैयार कर ली है। लेकिन ससद और जनता को जानबूझकर अधकार म रखा गया।

मैंने सोचा था कि लन्दन म इडिया हाउस म चोट खाकर कृष्ण मेनन ने सबक सीख लिया होगा। लेकिन नहीं। उन्होने रक्षा मन्त्रालय और रक्षा-सेनाओ का बंटाधार कर दिया। उन्होने वहाँ भी पिट्ठू पाले। इसका सबसे अच्छा नमूना था एस कौल थे जिन्हें फील्ड-कमाण्डर का कोई अनुभव ही नहीं था। थल-सेना-ध्यक्ष थिमय्या द्वारा दी गयी तीन अफसरो की सूची म से उन्होंने तीसरी पोजी शन से उठाकर कौल को क्वार्टरमास्टर जनरल बना दिया और कई उल्लेखनीय अफसरो के सिर पर ला बिठाया। इस तरह रक्षा मंत्री के रूप म अपने विवेक के

अधिकार का यह प्रयोग उ हाने थल सेना के जाने माने कायर के पक्ष म किया। इसका जोरदार सबूत बाद म मिल गया जबकि डीग-हाकू कौल को मार्चे पर चीनियो का मामना करने को भेजा गया। उनके हाथ-पाँव ठड पड गये और बीमारी का बहाना बना वे हवाई जहाज स दिल्ली उड आये और बिस्तर जा पकडा। राष्ट्रपति राधाकृष्णन चाहते थे कि एक पूर चिकित्सक दल स कौल की बीमारी की जाच करायी जाये और अगर जरूरी हो ता उनकी असलियत पर म परदा हटाया जाये। लेकिन उस समय दिल्ली म जो भगदड मची हुई थी उसम कौल डाक्टरी जाँच से बच गये। लेकिन बाद म थल सना से बडी बदनामी के साथ उनकी छुट्टी हुई।

रक्षा मत्रालय जिन दिनो रक्षा उत्पादन की गति तज करने की योजना तयार कर रहा था तभी कृष्ण मेनन मद्रास से एक आदमी को दिल्ली लाय। वह कभी स्काउट आन्दोलन म उनके साथ रह चुका था। इस आदमी का कोइ ठौर ठिकाना नही था। लेकिन शीघ्र ही वह अतर्राष्ट्रीय स्तर का यात्री बन गया। वसे सरकार म उस आदमी की कोई हैसियत नही थी लेकिन कृष्ण मेनन की छत्रछाया म वह आवडी म टक उत्पादन और कानपुर म वायुयान उत्पादन म सहयोगी ब्रिटिश फर्मों शक्तिमान ट्रको के उत्पादन म सहयोगी जमन फम निस्सान हलके टको के उत्पादन म सहयोगी जापानी फम और अन्य विदेशी फर्मों के साथ समझौतो म शामिल हुआ। वह आदमी कृष्ण मेनन को आर्थिक सहायता दिया करता था। अब वह फिर मद्रास म है और उसके पास खूब माल है। वह कई बडी कपनियो का डायरेक्टर भी है।

34

वी के कृष्ण मेनन—4

अकस्मात् चिन सड़क के बन जाने और उत्तर तथा उत्तरपूर्वी क्षेत्र में चीनियों की खतरनाक घुसपैठ की खबर जब समाचारपत्रों में छपी तो सरकार को संसद और समाचारपत्रों में कड़ी से कड़ी आलोचना का सामना करना पड़ा। तब तक कृष्ण मेनन नजरों से गिर चुके थे। अप्रैल 1960 में चाऊ एन-लाई भारत आये और उनका बड़ा ठंडा स्वागत हुआ। उस समय कृष्ण मेनन ने प्रधानमंत्री को चीन से राजनीतिक समझौता करने की सलाह दी। सुझाव यह था कि भारत चीन को अक्साई चिन का उभाड़-क्षेत्र पट्टे पर दे दे और बदले में चीन भारत को तिब्बत क्षेत्र की वह तंग पट्टी पट्टे पर दे दे जो सिक्किम और भूटान के बीच भारत के इलाके में घुसी हुई है। कृष्ण मेनन का तर्क था कि जब समझौते का नवीकरण किया जायेगा तो भारत का हाथ सौदेबाजी में ऊँचा रहेगा। सारा सुझाव अस्पष्ट था। पट्टे की अवधि क्या हो इसका कोई जिक्र नहीं था। नवीकरण के समय भारत चीन की सापेक्षिक स्थिति क्या होगी, कुछ पता नहीं। गोविन्दवल्लभ पंत और टी टी कृष्णमाचारी ने इस प्रस्ताव के सिर से ही पाँव उखाड़कर सही काम किया। दक्षिण भारत के उस पत्रकार ने फिर लिखा कि इस प्रस्ताव के आने पर पंतजी ने त्यागपत्र देने की धमकी दी थी जो कृष्ण मेनन के बीमार दिमाग की उपज के अलावा कुछ नहीं था। नेहरूजी के लिए पंतजी इतने राम भक्त थे कि वे नेहरूजी को किसी तरह की भी चोट नहीं पहुँचा सकते थे। पंतजी ने प्रधानमंत्री से सिर्फ यह कहा था कि कृष्णमेनन के प्रस्ताव को मान लिया गया तो जनता भड़क उठेगी। असलियत यह है कि उस समय नेहरूजी का कृष्ण मेनन पर से विश्वास ही उठ गया था और मेनन को चाऊ एन लाई के साथ हुई बातचीत में शामिल ही नहीं किया गया था।

1960 62 का समय वह दौर था, जिसमें कृष्ण मेनन ने फिर नशे की तरह

गोलिया का हाथ थाम लिया था। एक बार तो वे राष्ट्र संघ म मर्यादा की सभी सीमाएँ पार कर गये और अपने भाषण म गाली-गलौज से भरी भाषा का इस्तेमाल किया। नेहरूजी ने तुरत तार भेजा याद रखो कि दुनिया राष्ट्र संघ स बडी है।' राष्ट्र-संघ महासभा के प्रकोष्ठ म कृष्ण मेनन न वह तार पढ़ा और घबरा गये। वे लडखडाते हुए बाहर निकले और पेशाबघर जाते हुए लाउंज म से गुजरे और रास्ते म ही महिलाओं के सामने पतलून के बटन खोलने लगे। सभी सकते म आ गये। तभी उन्होंने प्रेस ट्रस्ट आफ इंडिया के एक का हाथ पकडा जो हर समय उनकी मदद के लिए साथ लगा रहता था और चीख चीखकर कहने लगे 'यह तार मथाई ने तयार किया होगा। प्रधानमंत्री कभी इतनी सख्त भाषा का इस्तेमाल नहीं करते। इस घटना के कुछ अरसे बाद ही राधाकृष्णन ने नेहरूजी से आग्रह किया कि वे आगे से राष्ट्र-संघ म मेनन को न भेजें क्योंकि वह बीमार आदमी है। राधाकृष्णन हमेशा से कृष्ण मेनन को बीमार दिमाग का आदमी मानते थे। कृष्ण मेनन ने राष्ट्र-संघ म और विदेश म अन्य स्थानों के लोगों और समाचार पत्रों से जो उपलब्धियाँ अर्जित कीं उनम स कुछेक का मुलाहिज़ा फरमाइये—'अव्यावहारिक कूटनीतिज्ञ बात करने के अयोग्य मेनन सर्वाधिक घृणास्पद राजनयिक अंतर्राष्ट्रीय मच्छर मनहूस महामना भारत का रासपूटीन, जहरीला नाग हिंदू विशिंस्की चाय पर पला नेहरू।" कृष्ण मेनन के दिमाग के बारे म पश्चिमी समाचारपत्रों ने लिखा– विभिन्न दृष्टिकोणों का विचित्र मिश्रण, जिसम गाधी से ज्यादा मार्क्स हिंदुत्व से ज्यादा ब्लूम्सबरी के बौद्धिकों का-सा अनेकवाद बीसवीं सदी के यथार्थवाद से ज्यादा उन्नीसवीं सदी का उग्रवाद है—और यह सभी असहिष्णुता और असह्य दंभ से जुडे हुए हैं।' कुछ की दृष्टि म जो चाय कृष्ण मेनन अपने भीतर उडलते थ उसम विद्वेष घुला होता था।

1961 दिसंबर म गोआ म पुलिस कारवाई बडी हद तक राजनीतिक कारणों से की गयी थी और निगाह आने वाले चुनावों पर थी। गोआ पर कब्जा करने का फसला छह महीने पहले ले लिया गया था। कृष्ण मेनन ने इसकी ज़मीन तयार करने के लिए खुफिया विभाग का एक वरिष्ठ अधिकारी आदमी लगा दिया था। वह वारदात भडकाने म तो उस्ताद था ही नयी-नयी वारदातों की खोज भी कर डालता था। गोआ म पुर्तगालियों की बढ़ती हुई फौजी ताकत और पाकिस्तानी फौजों के हवाई और समुद्री रास्ते से भविष्य में पहुँचने की खबरें खूब प्रचारित की गयीं। वास्तव म थल-सेना लगाने की तो जरूरत ही नहीं थी। केंद्रीय रिजर्व पुलिस ही इस काम को पूरा कर सकती थी। गोआ पर किये गये आक्रमण से नेहरूजी की नैतिक प्रतिष्ठा म कोई वृद्धि नहीं हुई। हालाँकि राष्ट्रपति कनेडी नेहरूजी के प्रशंसक थे और गोआ पर भारत के दावे के समर्थक थे, लेकिन उन्ह भी कहना पडा मंदिर का पुजारी चकले म पकडा गया।'

1962 के आम चुनावों म कृष्ण मेनन ने उत्तरी बम्बई क्षेत्र से कांग्रेस के टिकट पर फिर चुनाव लडा। उनका प्रतिद्वंद्वी एक स्वतंत्र उम्मीदवार था–दुर्जेय आचार्य जे बी कृपालानी। खबरें इस तरह की मिल रही थीं कि कृष्ण मेनन की जीत बहुत कठिन है। लेकिन दुर्भाग्य से नेहरूजी न यह महसूस किया कि आचार्य कृपालानी उन्हें चुनौती दे रहे हैं। नेहरूजी ने उत्तर बम्बई को अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया। वे चाहते थे कि कृष्ण मेनन वहाँ से बहुत ज्यादा वोटों से जीतें और यह बात उन्होंने एस के पाटिल से कह भी दी। चुनाव अभियान मे नेहरूजी ने चाहे पूना ग्वालियर, नयी दिल्ली जबलपुर मदुरै या किसी और जगह भाषण

न्दिया, जिन्न कृष्ण मनन के चुनाव का ही किया। बहुत से लोग कृष्ण मेनन मे नहरूजी की न्लिचस्पी को मजाक म लेने लगे। अत म कृष्ण मेनन जीत। आचाय कृपालानी को 1 51 437 और उन्ह 2,96,804 वोट पडे। लेकिन इस जीत का नतीजा निकला शून्य, क्योंकि सात महीने बाद ही कृष्ण मनन को सरकार से बाहर निकलना पडा।

सितबर 1962 म पूर्वी क्षेत्र मे चीनियो के मुख्य हमले शुरू हो गय और 20 अक्तूबर का उनका पूरा आक्रमण हुआ। हमारी सनाओ की नफरी उनके मुकाबले कम थी और हमारे पास उनसे कम हथियार और सामग्री थी। चीनियो ने इस विश्वास को झुठला दिया कि हिमालय दुलघ्य है।

काग्रेस ससदीय कायकारी दल के अधिकाश सदस्यो ने कृष्ण मेनन को हटाने की माग की। प्रधानमत्री कुछ दर तक अडे रहे। 31 अक्तूबर को नेहरूजी ने रक्षा विभाग सभाल लिया और कृष्ण मेनन को रक्षा उत्पादन-मत्री बना दिया। तभी कष्ण मनन ने तजपुर में अपने जीवन का सबसे अधिक मूखतापूण और आत्मघाती वक्तव्य दिया। उन्होंने कहा कि कोई परिवतन नहीं हुआ है। व अभी भी रक्षा मत्रालय म आसीन हैं। बस इसी से उनकी किस्मत पर मुहर लग गयी। टी टी कष्णमाचारी समेत मत्रिमडल के वरिष्ठ सदस्यो ने कष्ण मेनन को निकालने की माँग उठायी। राष्ट्रपति राधाकष्णन ने प्रधानमत्री को सलाह दी कि वे मत्रिमडल म से कष्ण मेनन को निकाल दें। यह धमकी भी आयी कि अगर प्रधानमत्री मेनन को बर्खास्त करने के लिए तैयार नही हुए तो ससद के अधिकाश काग्रेसी सदस्य पार्टी की साधारण बैठक मे भाग नही लेंगे। नहरूजी जान गये कि समय चुक गया है। वे अब इस निरथक मत से चिपके नही रह सकते थे कि कष्ण मेनन पर किया जाने वाला हमला उन पर किया गया हमला है। इदिरा ने भी अपनी लगी लगायी। उमने लालबहादुर स मशविरा किया और काग्रेस-अध्यक्ष यू एन ढेबर और कामराज समेत कुछ बडे नेताओ को कष्ण मेनन का निकालने के लिए उकसाया। कामराज अंग्रेजी अच्छी तरह नही बोल सकत थे और कभी बोलत भी थ तो अटक-अटककर कुछ शब्द ही बोल पाते थे। प्रधानमत्री से उनकी भेंट एक ही सूत्र-वाक्य से शुरू हुई, 'कष्ण मेनन को हटाओ। नेहरूजी ने कष्ण मनन को बचाने की कोशिश की और कामराज को पूरी स्थिति समझायी। लेकिन भेंट के अत में भी कामराज ने वही सूत्र दोहराया कष्ण मेनन को हटाओ।'

और 7 नवबर 1962 को वही कष्ण मेनन हट गये जिन्होने भारत के सम्मान को चोट पहुँचायी जो भारतीय सेना के निरादर का कारण बने और जिन्होंने दोनो हाथो से अपकीर्ति अर्जित की।

नेहरूजी न कष्ण मेनन को योजना-आयोग का सदस्य बनाकर रोकने की कोशिश की लकिन महान्यायवादी न निणय दिया कि एसा तब तक नहीं किया जा सकता जब तक कष्ण मनन लोकसभा से त्यागपत्र न दे दें क्योंकि योजना-आयोग के सदस्य तकनीकी दृष्टि से सरकारी कमचारी होते हैं।

सरकार से निष्कासन के बाद कृष्ण मेनन ने सुप्रीम कोट मे कानूनी प्रैक्टिस शुरू करने की कोशिश की और इसका खूब प्रचार किया। लेकिन वकीलो ने इस पर नाराजगी जाहिर की। शुरू म उन्हें कुछ केस मिले भी लेकिन उन्होंने उनका अध्ययन ही नही किया। एक से ज्यादा अवसरों पर न्यायधीशो को उन्ह स्मरण कराना पडा कि वे किसी राजनीतिक मच से नही बोल रहे है। धीरे धीरे केस

आन ही बद हो गये।

बहुत से लोगा का खयाल है कि कृष्ण मेनन उद्योगो म सरकारी क्षेत्र के समथक थे। इस बारे म भी उनकी दष्टि बडी लचीली थी। 1947 म उन्होने मुझे बताया कि भारत जैसे अविकसित देश म रक्षा उद्योगो को छोडकर बाकी क्षेत्रो म सरकारी उद्योग शुरू करना बहुत गलत होगा। उन्होंने कहा था कि बडे स्तर पर औद्योगिक विकास के लिए टाटा, बिडला और दूसरे उद्योगपतियो को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए और इसके लिए सरकार को उनकी पूरी सहायता करनी चाहिए। सरकार मजदूरो की समस्याओ को अपने हाथ म ले ले। इस मामले मे निजी उद्योग प्रगति की रफ्तार को बढाने का काम करेगा।

एक दिन एक लबा तार मिला, जिसके ऊपर लिखा था— केवल उनके लिए—अत्यावश्यक—परम गोपनीय। तार कूट भाषा म था। साइफर ब्यूरो वालो ने इसे साधारण भाषा म बदला और मुझे दे दिया। यह दस फुलस्केप पष्ठो म टाइप किया हुआ था और बम्बई से प्रधानमत्री के नाम कृष्ण मेनन ने भेजा था। इसे कूटभाषा मे बम्बई सरकार के सचिवालय ने तयार किया था और विदेश-मत्रालय म इसे साधारण भाषा मे बदला गया। इसमे विदेशी मामला स सबधित कुछ ऐसी समस्याओ पर कृष्ण मेनन के अस्फुट विचार थे जिनकी अत्यावश्यकता कही प्रकट नही होती थी। कूट भाषा म इसे लिखने और फिर कूट भाषा से साधारण भाषा म ढालने मे लगे समय तथा अपनी लबाई के कारण इसने मुझ तक पहुचने मे पाँच दिन लगाये। साइफर ब्यूरोवालो ने इसको तार से भेजने का व्यय पाँच हजार रुपय कूता। मैंने इस तथ्य की ओर प्रधानमत्री का ध्यान दिलाया। जब कृष्ण मेनन बम्बई से लौटे तो मैंने उनसे पूछा कि उन्होने वह तार क्यो भेजा था और फिर मैंने उन्हे उसम लगी लागत बतायी। मैंने कहा कि व यही बातें डाक से भेज सकत थे और मुझे वह पत्र अगल दिन मिल जाता। उनका उत्तर था तार का प्रधानमत्री के दिमाग पर ज्यादा असर होता है। मैंने उनसे कहा कि मैंने प्रधानमत्री को तार की खर्चीली निरथकता के बारे म बता दिया है। कृष्ण मेनन को बचत का जरा भी खयाल नही था।

रक्षा मत्री बनने पर भी कृष्ण मेनन विदेश मत्रालय म उस बडे कक्ष पर कब्जा जमाये रहे जिसके साथ उपकक्ष के रूप म प्रिसेंज रूम जुडा हुआ था। एक दिन मैं उस विशाल कक्ष म पहुँचा। कृष्ण मेनन दो दिनो के लिए कश्मीर गये हुए थ और कुछ दिनो बाद लौटने वाले थे। मैंने देखा कि उनके जाने के दो दिन बाद तक पाच टन का एयरकडीशनर खाली ही चलता रहा है। मैंने पूछताछ की तो पता चला कि ऐसा उनका आदेश था। मैंने विदेश मत्रालय के प्रशासन विभाग वालो को बुलाकर एयरकडीशनर बद करने कमरे स सारा फर्नीचर और टेलीफोनो को हटाने और उस कक्ष को मत्रिमडल के बठक कक्ष के रूप म फिर से फर्नीचर स सजाने को कहा। सबधित अधिकारी ने कुछ आनाकानी की। उन्हें डर था कि कही वह सकट म न पड जाय। मैंने उससे कहा कि ऐसा कोई सकट उस पर नही आनेवाला है। वह कह सकता है कि यह आदेश मैंने दिये थे। मैंने कृष्ण मेनन को इस आशय का एक नोट भी लिख दिया और उसम ऐसा करने के कारण भी दे दिये। मैंने प्रधानमत्री को भी सूचित कर दिया। उन्होने मेरी कारवाई का पूरा अनुमोदन किया। कश्मीर मे वापसी पर कृष्ण मेनन ने जब मेरा नोट पढा तो वे परेशान हो उठे। वे मेरे पास आकर पूछने लगे कि मैंने जो कुछ किया है, वह उलटा जा सकता है। उन्होने कारण यह दिया कि विदेश मत्रालय म उनका

कार्यालय न होने से लोग समझेंगे कि विदेशी मामलों में उनका कोई दखल नहीं रहा। मैंने कहा 'जो होना चाहिए वही हुआ है।'

बिना विभाग के मंत्री-पद पर कृष्ण मेनन के आते ही, जीप घोटाले में हाथ रंगने वाले व्यक्ति पॉटर ने अदालत में जाने की धमकी दी। दरअसल उसने कृष्ण मेनन को कानूनी कारवाई का नोटिस भेजा था। कृष्ण मेनन झूठा बहाना बनाकर हवाई जहाज से लंदन पहुँच गये। वहाँ उन्होंने उच्चायुक्त के रूप में पहले के पाँच वर्षों का इकट्ठा हो गया कर मुक्त वेतन लिया। यह रकम लगभग 15 000 पौंड बैठी। इसमें से एक बड़ा हिस्सा पॉटर को चुप रहने के लिए दिया गया।

जब कृष्ण मेनन बिना विभाग के मंत्री बने तो प्रधानमंत्री चाहते थे कि कृष्ण मेनन प्रधानमंत्री निवास छोड़कर अपने अलग बँगले में जाकर रहें। इसके बारे में उनसे बात करने के लिए मुझसे कहा गया कि मैं उनसे नरमी से कहूँ। उन्होंने कहा कि कृष्ण मेनन के लिए यही ठीक भी होगा क्योंकि 'जब मैं काम में व्यस्त होता हूँ तो वह अक्सर कमरे में घुस आता है। मुझे उससे परेशानी होने लगी है। जब भी वह मेरे अध्ययन-कक्ष में आता है, अपने साथ तनाव भीतर ले आता है।' बिना प्रधानमंत्री का नाम बीच में लाये मैंने कृष्ण मेनन से इस विषय में बात की। वे आनाकानी करने लगे। अंत में बोले, 'बुजुर्गवार प्रधानमंत्री निवास के नजदीक ही जगह दिलवाना। मैं यह नहीं चाहता कि लोग समझें कि मैं अब प्रधानमंत्री के निकट संपर्क में नहीं रहा।' उन्हें प्रधानमंत्री निवास से कुछ गज दूर पर ही स्टाफ-बँगला दे दिया गया।

जब कभी भी कृष्ण मेनन विदेश विशेषकर अमरीका जाते थे तो वे ब्रिटिश डाक्टर का प्रमाणपत्र साथ रखते थे कि यह व्यक्ति संभोग करने में असमर्थ है। एक बार न्यूयार्क में वे एक खूबसूरत स्पेनिश औरत के चक्कर में फँस गये। वे उसे लेकर रेस्तराओं और नाइट क्लबों के चक्कर लगाया करते थे। अंत में उसने समाचारपत्रों में यह छपवाने की धमकी दी कि कृष्ण मेनन के उसके साथ निकट के संबंध हैं। कृष्ण मेनन को काटो तो खून नहीं। उन्होंने राष्ट्र-संघ के एक कर्मचारी की सेवाएं प्राप्त की जो भारतीय था और जिसे राष्ट्रसंघ में नौकरी पर लगवाने में उन्होंने मदद दी थी। उस आदमी ने उस स्पेनिश औरत से बात की और उसे ब्रिटिश डाक्टर का प्रमाणपत्र दिखाया। लेकिन वह टस से मस न हुई। कहने लगी "ठीक है वह प्रमाणपत्र भी समाचारपत्र में छपवा दें।" अंत में कृष्ण मेनन को काफी बड़ी रकम देकर उसे चुप कराना पड़ा।

कृष्ण मेनन से कुल मिलाकर मेरी तीन झड़पें हुई। पहली झड़प प्रधानमंत्री निवास में मेरे अध्ययन-कक्ष में तब हुई जब वे मुझसे मिलने आये थे। वे मेरे पास बैठकर गप्पें मारने लगे। उस समय वे मंत्रिमंडल में मंत्री थे। गप्पों के दौरान उन्होंने कहा, "तुम्हें पता है कि प्रधानमंत्री को लेडी माउंटबेटन ने रख रखा था।" मैं भड़क उठा और मैंने कहा "अगर तुम यह कहते कि प्रधानमंत्री ने लेडी माउंटबेटन को रख रखा था तो मेरा ध्यान इस तरफ जाता ही नहीं। लेकिन तुमने उस आदमी पर भी फब्ती उछालकर अपनी अकृतज्ञता जतायी है, जिसकी मेहरबानी तुम पर न होती तो तुम आज नाली में होते।" अंत में मैंने उनसे कमरे से बाहर निकल जाने को कहा। वे सहमे-से गये और चुपचाप बाहर निकल गये।

दूसरी झड़प लंदन में 10 डाउनिंग स्ट्रीट के मंत्रिमंडल-कक्ष में हुई जहाँ उस समय कामनवल्थ प्रधानमंत्रियों की कांफ्रेंस चल रही थी। नेहरूजी और श्रीमती

पडित मेज के गिर्द बैठे थे। एन आर पिल्ल, कृष्ण मेनन और मैं इसी क्रम से पीछे बठे थे। मेरी बगल म कनाडा के विदेश मत्रालय के स्थायी सचिव थे। नेहरूजी बोल रह थे। कृष्ण मेनन मेरी तरफ झुके और कनाडावासी को सुनाने के लिए बोले 'कितनी कमजोरी से बोल रहे हैं मैं कब तक इन्हे पाठ पढ़ाता रहूँगा ?" मैंने भी कनाडावासी को सुनाने के लिए उनसे कहा, 'शट अप !"

तीसरी झडप प्रधानमत्री-सचिवालय म मेरे दफ्तर म मेरे त्यागपत्र देने के एक हफ्ता बाद हुई। मैंने सुना था कि कृष्ण मेनन ने मेरे त्यागपत्र देने के बारे म कुछ कटु बातें कही हैं। मैंने उन्हे फोन किया और कहा कि मैं आफिस में उनसे मिलना चाहता हूँ। उन्होने कहा बुजुर्गवार, मैं खुद ही तुमसे मिलने आ रहा हूँ। मैंने कहा कि नहीं मैं स्वय उनसे उनके दफ्तर म ही मिलूगा। लेकिन वे अपनी ज़िद पर अडे रहे और मेरे दफ्तर मे आ गये। मैंने उनसे कहा, 'मैं तुमसे तुम्हारे दफ्तर मे ही बात करना चाहता था क्योंकि मैं जो अब तुमको सुनाने वाला हू वह सुखद नहो है। तुम एक अहसान फरामोश आदमी हो। प्रधानमत्री समत हरेक तुम्हारे लिए सुविधा का साधन है। मैं और लोगो की तरह अपना त्यागपत्र वापस लेने वालो म से नही हूँ और न ही मैं सरकार म वापस आने वाला हू। लेकिन याद रखो कि मैं भीतर के बजाय बाहर से तुमको ज्यादा नुकसान पहुँचा सकता हू। मैं कभी भी तुम्हारा घोडे का-सा मुह नही देखना चाहता।' कृष्ण मेनन दहल मे गये थे। वे मुह ही मुह मे बडबडाये किसी ने मुझसे आज तक इस तरह बात नही की। मैंने कहा मैं किसी' नही हूँ। वे लडखडाते हुए मेरे कमरे से निकल गये। इसके बाद मैं उनसे कभी नही मिला हालांकि उन्होने दो बार मुझसे मिलने की कोशिश की।

कृष्ण मेनन म मजाक समझने की तमीज नहीं थी। वे पहली बार कश्मीर प्रधानमत्री के साथ गये थे। तब मेनन मत्री नहीं थे। प्रधानमत्री, कृष्णमेनन और मैं चश्माशाही के गेस्ट हाउस के पोर्टिको पर बठे थे। धूप भरी सुबह थी। नेहरूजी कुछ शरारत के मूड म थे। वे कृष्ण मेनन की तरफ मुडे और कहने लगे तुम मलयालियों को सभ्यता सिखाने के लिए कश्मीर भेजना चाहिए।' सुनते ही कृष्ण मेनन का चेहरा लाल हो गया और कुछ कहने के लिए उनके होठ हिले। मैंने प्रधानमत्री को सुनाते हुए कृष्ण मेनन से कहा आप प्रधानमत्री से यह क्यो नही पूछते कि श्रीनगर घाटी के बीच मे ऊची पहाडी की चोटी पर क्या है ? शकराचार्य का मदिर। कश्मीरियो को सभ्यता सिखाने के लिए शकराचार्य को इतनी दूर पैदल चलकर आना पडा था।" कृष्ण मेनन की जसे जान म जान आयी और जीत से उनका चेहरा खिल उठा। कृष्ण मेनन फिर कभी अपने जीवन म श्रीनगर की शकराचार्य पहाडी को न भूल सके।

एक दिन सुबह मैं प्रधानमत्री के साथ नाश्ता कर रहा था क्योंकि इदिरा दिल्ली से बाहर थी। तभी कृष्ण मेनन भीतर घुसे। मैंने उनके लिए चाय मगवायी। काफी के बाद प्रधानमत्री ने सिगरेट सुलगायी। कृष्ण मेनन सिगरेट-दावन से खेलते हुए ब्रिटिश सिगरेट के ब्राडो के बारे म बोलने लगे। मुझे तब आश्चर्य हुआ जब वे अलग-अलग ब्राडो के स्वाद भी गिनाने लगे। मैंने उनसे पूछा, क्या आपने कभी सिगरेट पी है ?' कृष्ण मेनन की जसे किसी ने फूक निकाल ली हो और वे परेशान-से हो उठे। प्रधानमत्री खिलखिलाकर हस पडे और सिगरेट का धुआं उपर की बजाय नीचे जाने लगा। जब हम खाने के कमरे से बाहर निकले आये तो कृष्ण मेनन ने मुझसे कहा तुम्हें यह बात प्रधानमत्री के सामने नहीं

कहनी चाहिए थी।" मैंने उत्तर दिया, 'आप एसी बातो के बारे म क्यो बोलते हैं, जिनका क ख-ग भी आपको नही पता ?"

सरकार से निकल जाने के बाद भी कृष्ण मेनन के पाँव का चक्कर न थमा। वह हवाई जहाजो की प्रथम श्रेणी मे यात्रा करत थे और लदन न्यूयाक और दूसरी जगहो के सबस अधिक महँगे होटलो म ठहरत थे। अफवाह उडने लगीं। लोग पूछने लग, "इतना पैसा इसके पास कहाँ से आता है ?"

कृष्ण मेनन जीवन भर चर्चा का विषय बने रहे और अगर चर्चा बद भी हुई तो उन्होंने अपने-आप चर्चा छिडवा दी। उनके मरने पर भी चर्चा चली। लोग पूछने लगे कि वे अपने पीछे एक लाख रुपये नकद, महँगे यूरोपीय वस्त्रो से ठसाठस भरी अलमारियाँ और 500 ब्रिटिश तथा फ्रेंच बिना पहनी कमीजें छोड गये हैं। लेकिन मौत बहुत-सी बातों को खामोश कर देती है।

तब राष्ट्र-सघ और अन्य स्थानों पर पश्चिमी देशो की कटु आलोचना के शिखर पर थे कृष्ण मेनन। फ्रास के राजदूत ने एक लतीफा कृष्ण मेनन के बारे मे गढा और चारो तरफ फैला दिया। इसमे दुघटना और सकट का अतर सम झाया गया था। अगर कृष्ण मेनन किसी कुएँ म गिर पडे तो यह हुई दुघटना और अगर कुएँ से बाहर निकल आय तो यह सकट कहा जायगा।" वस लतीफा राजदूत की मौलिकता पर सदेह पैदा करता है। यह तो प्रथम महायुद्ध के बाद वार्सेलीज म वुडरो विल्सन स तग आकर क्लीमेंस्यू के मुह से निकली उक्ति का चरवा भर है।

35

क्या नेहरूजी दंभी थे ?

27 मई 1964 को नेहरूजी की मृत्यु के कुछ समय बाद चीन के प्रधानमंत्री चाऊ एन लाई ने पीकिंग में आये लंका के शिष्टमंडल से कृपापूर्वक फरमाया "मैं ख्रुश्चेव से मिला, च्यांगकाई शेक से मिला, अमरीकी जनरलों से मिला, लेकिन नेहरू से अधिक दंभी व्यक्ति मैंने कोई दूसरा नहीं पाया। मुझे यह कहते हुए खेद है, लेकिन सचाई यही है।'

दिल्ली स्थित एक उच्चायुक्त ने भी मुझसे एक बार कहा था कि उनके ख्याल से नेहरूजी दंभी व्यक्ति हैं, जबकि यह राजदूत खुद अहंकारी था और अपने को रोड्स विश्वविद्यालय का विद्वान जताने की डींग हाँकने का कोई मौका हाथ से नहीं जाने देता था। उसके एक साथी कामनवेल्थ उच्चायुक्त इस राजदूत को असहनीय दंभी आदमी कहकर उससे नफरत करते थे।

बांडुंग में एशियाई-अफ्रीकी देशों की कांफ्रेंस (18-24 अप्रैल 1955) के अवसर पर श्रीलंका के प्रधानमंत्री सर जान कोटलवाला ने इस तथ्य की ओर सबका ध्यान आकर्षित करते हुए कहा कि "हंगरी, बुल्गारिया, रूमानिया, अल्बानिया, चेकोस्लोवाकिया, लेटिविया, लिथूनिया, इस्टोनिया और पोलैंड जैसे साम्यवादी प्रभावग्रस्त उपग्रह देश अफ्रीका या एशिया के उपनिवेशों की तरह ही हैं।" चाऊ एन लाई तथा अन्य नेताओं ने महसूस किया कि सर जान कांफ्रेंस का भट्टा बिठाने पर तुले हुए हैं। बाद में नेहरूजी उनके पास गये और जरा गर्मी से पूछने लगे "आपने ऐसा क्यों किया, सर जान? आपने बोलने से पहले अपना भाषण मुझे क्यों नहीं दिखाया?" नेहरूजी का व्यवहार कुछ इस तरह का था कि जैसे वे कांग्रेस-अध्यक्ष हों और कार्यकारिणी कमेटी के किसी सदस्य से बात कर रहे हों। सर जान भी भड़क उठे, "क्यों दिखाता? क्या बोलने से पहले आपने मुझे अपना भाषण दिखाया था?"

मर जान कोटलवाला ने अपनी पुस्तक 'एन एशियन प्राइम मिनिस्टम स्टोरी' म लिखा है, "शक नहीं कि नेहरूजी की वह टिप्पणी अच्छे मत-य से कही गयी थी। नेहरूजी और मैं बहुत अच्छे दोस्त थे। मेरे दिल म उनके लिए सबसे अधिक सम्मान था, खास तौर पर इस वजह स कि वे जो भी कहने या करत थे अनिप्त होकर कहते या करते थे। यह घटना वह निश्चय ही शीघ्र भूल गये होंगे, जिस तरह मैं भूल गया।"

नेहरूजी इतने सुसस्कृत व्यक्ति थे कि उनके दभी होने की गुजाइश ही नही थी। कभी कभी वे जल्दबाजी से काम लेते थे। उनम धीरज नही था। जिस व्यक्ति न अपना लाकजीवन चाटो से शुरू किया हो उसी की तरह उनमे मामूली खामियाँ थी। मुझे इस पर जरा भी ताज्जुब नही होता कि कही व अपने परिवार के किसी सदस्य के विवाह पर अचानक घोडा पर चढने का बढ जाते, फिर वापस बुलाने पर शर्मीले लडके की तरह नजर आते।

नेहरूजी के मूल्याकन का अधिकार उस चाऊ एन-लाई को नही है, जिसन अपने अहकार म अपने देश को भारत पर आक्रमण करने दिया और तरह भलाई का बदला बुराई से चुकाया।

36

नेहरूजी और सेवा-वर्ग

नेहरूजी न 2 सितबर 1946 को जब सरकार की बागडोर सभाली थी तो उनके मन मे पहले से ही उस इडियन सिविल सर्विस और दूसरी तथाकथित उच्च सेवा' के अधिकारियो के प्रति पूर्वाग्रह था जिनके कारण भारत म अग्रज़ा की साम्राज्यशाही का इस्पाती ढाचा खडा था। उस समय और उसके बाद भी कुछ समय तक विदेशी मामला के विभाग म उच्च पदो पर अँग्रेज अधिकारी रहे थ लेकिन इससे भी बात बनती नही थी। कामनवैल्थ सबधा का विभाग नहरूजी के अधीन था और उसम औसत योग्यता क भारतीय अधिकारी थे।

मद्रास केडर क एक वरिष्ठ आई सी एस अफसर एस वी राममूर्ति ब्रिटिश सरकार के अधीन प्रातीय गवनर रह थे, उनके साथ नेहरूजी को जो अनुभव हुआ वह सुखद नही था। उन्ह नेहरूजी न रिफ्यूजी रिलीफ एड रिहैबलिटेशन बोड का अध्यक्ष बनाने क खयाल से अपन पास बुलाया। नहरूजी इस काम के लिए किसी ऐसे व्यक्ति को चाहते थे जो शरणार्थियो के भारी सख्या मे भारत आने के मामले से भावनात्मक रूप से न जुडा हुआ हो। उन्होने राममूर्ति को सारी समस्या समझायी। सामन बडी भारी मानवीय समस्या थी लेकिन राममूर्ति न इस समस्या को चुनौती और उसके भावी आयामो पर विचार विमश करने के बजाय अपनी स्थिति वतन और परिलब्धियो पूवता, अधिपत्र म अपन स्थान वरने की श्रणी रैक्व मलून जस उपलाभो के बारे म मूखतापूण प्रश्न उठान शुरू कर दिय। नहरूजी न उनस अपनी भेंट वहीं समाप्त कर दी और उस ऊची बला से छुटकारा पाया।

विभाजन के बाद के समय म सिद्ध हुआ कि अधिकाश आई सी एस अफसर और दूसरी सेवाओ के अधिकारी सकीर्ण साप्रदायिकता स मुक्त हैं और उन्होने उस अत्यन्त कठिन स्थिति म भी बडी ईमानदारी और विवेक से काम किया।

इसका नेहरूजी पर अच्छा प्रभाव पडा। इसके बाद मे तो सरकारी अधिकारियो के लिए कोई दिक्कत ही नही रही।

1953 के आसपास मैंने प्रधानमत्री के सामने तीन मसले पेश किये (1) भारतीय आई सी एस अफसरो मे सबधित ली कमीशन के अनुच्छेद हटाना, (2) सिविल और सैनिक भारतीय अफसरो की पेंशन पौंडो मे उल्लिखित करने की प्रणाली की समाप्ति, तथा (3) तीनो सेनाओ के अध्यक्षो की कमाडर इन चीफ की उपाधि हटाना।

ली कमीशन ने भारतीय अफसरो को यह सुविधा दी थी कि वे अपनी पत्नी और आश्रित बच्चो के साथ भारत से इग्लैंड और इग्लड से भारत आ जा सकते हैं तथा वहाँ कुछ महीनो के लिए सरकारी खर्च पर रह सकते हैं और उस अवधि के लिए अपना वेतन पौंडो म ले सकते हैं। ऐसा वे अपने कायकाल मे केवल पाँच बार कर सकते हैं। प्रधानमत्री ने गृह-मत्री कैलाशनाथ काटजू और मत्रिमडल-सचिव वाई एन सुकथाकर को इस विषय म लिखा। यह मामला उन्होने मत्रिमडल म भी रखा, जिसने गृह-मत्रालय को इस विषय मे अपने मत और निणय के बारे म औपचारिक प्रस्ताव प्रस्तुत करने को कहा। गृह मत्रालय और मत्रिमडल-सचिवालय को बार बार रिमाइडर भेजने के बावजूद पाँच वर्षों तक इस विषय म कुछ नही हुआ।

फिर अचानक ली कमीशन वाले अनुच्छेदो को समाप्त करने के विषय पर गृह-मत्रालय ने एक अभिपत्र मत्रिमडल को भेज दिया। मत्रिमडल-सचिव सुकथाकर और उनकी पत्नी इग्लड मे तीन महीने की छुट्टी मनाकर लौटे और उन्होने ली कमीशन द्वारा प्रदत्त अतिम हकदारी का लाभ उठा लिया तो अभिपत्र भजने का काम तुरत हो गया! सरकारी अफसरो की विलब करने की तिकडम और गृह-मत्री की अयोग्यता का यह विशिष्ट उदाहरण था।

स्टर्लिंग पेंशन की समाप्ति भी इसी समय हुई। सभी जनतान्त्रिक देशो म राज्याध्यक्ष ही सेना के तीनो अगो का कमाडर इन चीफ होता है। सेना मे उच्चतम स्थिति पर होने वाले सैनिक अफसर को चीफ आफ स्टाफ का पद दिया जाता है। उसके कोई कमान काय नही होते, प्रादेशिक कमाडर यह काय करते हैं। जब यह परिवतन किया गया तो सबसे अधिक विरोध करने वालो म जनरल करिअप्पा थे जो यह समझते थे कि लार्ड किचनर के कधो का बोझ उनके कधो पर आ पडा है। थल-सेना के कुछ उच्च अफसरो ने तो आपसी बातचीत मे यह तक कह डाला थल-सेना किसी धोतीप्रसाद को कमाडर इन चीफ के रूप मे स्वीकार नही करेगी।' (सकेत राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद की तरफ था।) जनरल करिअप्पा के सेवा निवृत्त होने के बाद यह परिवतन किया गया।

बांग्लादेश के युद्ध के दौरान थल सेनाध्यक्ष जनरल मानेक शा ने मेजर-जनरल फरमान अली को भेजे सदेश मे 'मेरी कमान के अधीन सेनाएँ' शब्दो का प्रयोग किया था। मानेक शा के अधीन कोई कमान नही थी। कमान, जनरल-आफिसर कमान्डिग इन-चीफ, पूर्वी कमान के हाथो मे थी। बात मामूली है लेकिन बडी अहम।

1950 म प्रधानमत्री को और मुझे नये राजनयिक पासपोर्ट जारी किये जाने के मौके पर मैंने मुख्य परिपत्र अधिकारी से कहा कि वह पासपोर्ट किन किन देशो म वैध है लिखने के बजाय दुनिया के सभी देशो म वैध लिख दें। उसने प्रतिरोध किया कि इस तरह की बात पहले कभी नही हुई। मैंने उससे कहा,

'इससे पहले तुम्हारा कोई प्रधानमंत्री भी तो नहीं हुआ। पूर्व-उदाहरण की माँग करके लीक मत पीटो नया उदाहरण पैदा कर लो। मुझे सभी जरूरी वीजाओं के साथ पासपोर्ट हफ्ते भर के अंदर मिल जाना चाहिए।' उसने पूछा, 'मान लो, विदेशों की सरकार आपत्ति करें तो?' मैंने कहा, 'वे कोई आपत्ति नहीं करेंगी। जो कह रहा हूँ करो।' वह अपने बाॅस विदेश-सचिव के पास पूछने चला गया, जिसमें इतनी समझ थी कि उसने पासपोर्ट मेरे कहे मुताबिक जारी करने को कह दिया।

मैं यहाँ एक व्यक्ति को छोड़कर और लोगों के बारे में कुछ नहीं कहना चाहता। वे व्यक्ति थे गिरिजाशंकर बाजपेयी अंग्रेज़ों के ज़माने में भी खूब फले फूले। वे अपने कैरियर के ज़रा ज़्यादा ही शुरू में वायसराय की कार्यकारी कौंसिल के सदस्य बन गये थे। 'भारत छोड़ो आन्दोलन' से पहले उन्हें सरकार ने वाशिंगटन में हिंदुस्तान का एजेंट जनरल बनाकर भेजा था। उनका मुख्य काम राष्ट्रीय आन्दोलन, गांधी और नेहरू के विरुद्ध प्रचार करना था। व्यक्तिगत बातचीत में बाजपेयी नेहरूजी को 'भारतीय राजनीति का हैमलेट' कहकर आनन्दित हुआ करते थे। बाजपेयी अपने व्यवहार, भाषा और उच्चारण में आडम्बरी थे। एक मरतबा न्यूयार्क में किसी समारोह में पहुँचने में उन्हें देर हो गयी। उन्होंने शोफर को आदेश दिया कि ट्रैफिक के नियमों की परवाह न करके, बचाते हुए गाड़ी दौड़ाओ। शीघ्र ही पुलिस वाले ने कार रोक ली। बाजपेयीजी बड़े गुस्से में पुलिस वाले पर दहाड़े, 'जानते हो, मैं कौन हूँ?' और फिर अपने प्रश्न का उत्तर स्वयं ही देते हुए बोले, 'बाजपाई हूँ।' पुलिस वाला भी ज़रा हरी तबियत का आदमी था बोला, "अगर तुम ट्रैफिक के नियमों का पालन नहीं करोगे तो जल्दी ही मिसपाई (कीमे का टिकरा) बन जाओगे।" न्यूयार्क में एक बड़ा समारोह था। प्रवेश द्वार पर खड़े व्यक्ति ने उनके आगमन की घोषणा की 'सर बाज एंड लेडी पाई।' सर बाज का गुस्से में मुँह फूल गया और वे उद्घोषक के साथ बड़ी बुरी तरह से बहस करते हुए भीतर प्रविष्ट हुए।

अंतरिम सरकार बनने के तुरंत बाद बाजपेयीजी को वाशिंगटन से बुला लिया गया। चूंकि उस समय विदेशी मामलों के विभाग में सभी अफसर अंग्रेज थे इसलिए बाजपेयी को महासचिव बना दिया गया। विदेशी राजदूतों से भेंट करने के रूटीन काम से नेहरूजी को राहत देने के लिए ऐसा किया गया था। वैसे कई पहलुओं से बाजपेयी अच्छे महा-सचिव थे। लेकिन कश्मीर समस्या के मामले में उन्होंने बंटाधार कर दिया। उन्हें पता ही नहीं था कि भारत का हित किस बात में है। राष्ट्र-संघ के प्रतिनिधियों ने उन्हें उलझाकर रख दिया। बुनियादी मुद्दों पर अडिग रहकर और राष्ट्र संघ में पाकिस्तानी हमले की हमारी मूल शिकायत का उत्तर माँगने के बजाय उन्होंने बहुत-से समझौते कर डाले और सारी समस्या को इतना उलझा दिया कि वह अभी तक हमारे सिर पर सवार है।

1948 में कामनवेल्थ प्रधानमंत्रियों की कान्फ्रेंस में जब हम लंदन गये तो हमें क्लेरिजिज होटल में ब्रिटिश सरकार के मेहमान के रूप में ठहराया गया। होटल का मैनेजर मेरे पास आया और उसने मुझसे कहा कि हिज़ मजेस्टी की सरकार से उन्हें आदेश मिले हैं कि कमी होने के बावजूद हम हमारे कहने पर सभी कुछ दिया जाय। मैंने उनसे पूछा कि सबसे ज्यादा कमी किस चीज की है। उसने कहा कि अंडों की और यह भी बताया कि होटल में रहने वालों को मक्खन और चीनी भी सीमित मात्रा में दी जाती है। मैंने उनसे कहा, 'भारतीय प्रतिनिधि

आपके साथ आपकी कमियो म हिस्सा बँटायेंगे। हमे अडे न भेजे जायें और हम किसी खास चीज की जरूरत नही।" वह बहुत खुश हुआ और प्रभावित होकर उसने कहा कि होटल म ठहरे हुए किसी प्रतिनिधि ने उससे ऐसी बात नही कही। फिर बोला "मैं जानता हूँ, आप गाधी के देश से आ रहे हैं।" मैंने इसकी चर्चा प्रधानमत्री से की जिन्होने मेरी बात की पूरी तरह से ताईद की। मुझे पता था कि वे ऐसा ही करेंगे। लेकिन वाजपेयीजी की शिकायतो का ताता बँध गया और इसके लिए उन्होने मुझे कभी मुआफ नही किया। इग्लड मे उस समय हालत इतनी खराब थी कि जब हम कुछ दिनो के लिए डबलिन जाने लगे तो लेडी माउटबेटन ने बहुत सारे पौंड मेरी जेब म ठूसते हुए कहा, 'मैक, लबे अरसे से अच्छा गोश्त खाने को नही मिला। मेरे लिए डबलिन से कुछ गोश्त ले आना।" लन्दन वापस आने पर मैंने उन्हें 50 किलो कम हड्डियो का ताजा गोश्त कई दजन अडे और बाकी बचा पैसा सौंप दिया। इसे पाकर उनकी खुशी और जोश इस तरह का था कि जैसे किसी अधभूखे युद्धबन्दी को भरपेट खाना मिल गया हो।

यहाँ बात जरा मैं विषय से हट कर करने जा रहा हूँ। अगाथा हैरिसन मुझे मजदूरों की एक नयी बस्ती मे ले गयीं, जहा मकान प्रि फेब्रीकेटिड थे। मैं वहाँ पति, पत्नी और एक बच्चे वाले छोटे से परिवार से मिला। पति कारखाने गया हुआ था। अगाथा की अनुमति से मैंने उस युवा औरत से जीने की दिक्कतो चीजो की कमियों वगैरह के बारे म कुछ प्रश्न किये। झटपट उत्तर मिला 'जी हाँ, हम दिक्कतें भी हैं और हम चीजें भी बहुत परेशानी से मिलती हैं। लेकिन मेरे बच्चे को भी उतना ही दूध मिलता है जितना किसी ड्यूक के बच्चे को। हम सब मिल-जुलकर अपनी दिक्कतो को बाँटते हैं। मुझे कोई शिकायत नही।' युद्ध के दौरान और उसके बाद भी राशन-व्यवस्था बडे सुचारु रूप से चली और काले धध की घटनाए बहुत कम हुइ। लदन से हम पेरिस गये और मुझे वहाँ की हालत देखने का भी मौका मिला। लदन से एकदम उलट हालत थी। भारत के लिए पेरिस से चलते समय मैंने अपने आप से कहा, 'अँग्रेज जाति महान है।'

1949 म हम पहली बार सयुक्त राज्य अमरीका गये और हमने लदन से पेरिस तक की यात्रा सक्रड काऊ' नामक वायुयान म की, जो राष्ट्रपति ट्रूमैन का निजी यान था। हम बीच म न्यूफाउडलैड म रुके, जहाँ अमरीकी एयर-बेस कमाडर ने हमारी आवभगत की। नेहरूजी और इन्दिरा आगे और मैं तथा वाजपेयीजी पीछे वायुयान से उतरे। जब नेहरूजी और इन्दिरा कमाडर के साथ उसकी गाडी म बैठकर चले गये तो वायुसेना का एक कैप्टेन वाजपेयीजी के पास पहुँचकर बेवकूफी मे पूछने लगा "अँग्रेजी आती है?' वाजपेयीजी का चेहरा गुस्से म लाल हो गया और उन्होने चिढकर कहा, 'क्या चाहते हो तुम?" मैंने बीच म आते हुए कप्तन से कहा 'ये आक्सफोर्ड म पढे हैं और ऐसी शुद्ध अँग्रेजी बोलते हैं जो कुछ ही अमरीकियो को आती होगी।' कैप्टेन ने वाजपेयीजी से अफसोस जाहिर किया जो तब तक कुछ सभल चुके थे। इसके दो दिन बाद तक वाजपेयीजी उस कप्तेन को कोसते रहे और उन्होने मुझसे अनगिनत बार कहा होगा 'उस हरामी की सुनो! पूछता था कि मुझे अँग्रेजी आती है या नही। मैं कई भाषाएँ जानता हूँ—इगलिश फ्रैंच, फारसी संस्कृत उर्दू और हिन्दी। अगर इस फेहरिस्त म वाजपेयी यिद्दिश भाषा भी जोड देते तो मुझे कोई एतराज नहीं होता।

अमरीका म औपचारिक समारोहो के लिए वाजपेयीजी न एक काली अचकन

37

नेहरूजी और स्त्रियाँ

नहरूजी ने अपने को एक बार काफिर कहा था। सदाचार के मामले म वे पूरी तरह से निरपक्ष थे। नेहरू परिवार म चाहे वह पुरुष हो या स्त्री ऐसा कोई व्यक्ति मैंने नही देखा जो एक पुरुष एक स्त्री' क समीकरण पर विश्वास रखता हो।

नेपोलियन की बहुत-सी प्रेमिकाएँ थी लेकिन राज्य के मामलो म उनमे स काई भी उस प्रभावित नही कर सकी। एक बार उसने कहा था स्त्रियाँ खाली दिमाग आदमी को व्यस्त बना देती हैं और उनस योद्धा को विश्राम मिलता है। यही बात नेहरूजी पर भी समान रूप से लागू की जा सकती है।

मृदुला साराभाई

भारतीय स्त्रिया म आमतौर पर न मिलने वाले खुलपन के साथ जी जान से जिस महिला न नहरूजी का पीछा किया, व थी मदुला साराभाई जो गुजरात के एक सम्पन्न परिवार की उत्तराधिकारिणी थीं। वे काग्रेस की निष्ठावान और अथक परिश्रमी कार्यकर्त्ता थी। 1946 तक आते-आते उनम नहरूजी की दिल चस्पी खत्म हो गयी। उनम लावण्य नही था और वे अपन को इस तरह के बहूदा कपडो म मनवूस रखती थी कि बचा खुचा रूप भी बिगड जाता था। 1946 मे जब नहरूजी काग्रेस-अध्यक्ष बन तो व चाहते थ कि कार्यकारिणी कमेटी म कुछ समाजवादी शामिल किय जायें और उनम से कम-स कम दो को महासचिव बनाया जाय। लकिन उन लोगो न शामिल होन स इकार कर दिया इसलिए नेहरूजी ने मदुला साराभाइ और बी बी कसकर को महा-सचिव बना दिया। मृदुलाजी इगलिश बहुत कम जानती थी इसलिए उन्होने एक से अधिक छद्म लेखक नौकरी पर रख लिय जो उनके लिए लिखें। कभी कभी वे राजनीतिक मसलो पर नेहरूजी को स्वय भी अँग्रेजी म लिखा करती थी। अँग्रेजी में लिखे उनके पत्रो को

कोई विरला ही समझ सकता था।

1947 में मृदुला साराभाई को विभाजन के दौरान उड़ा ली गयी औरतों को बरामद करने के काम पर लगाया गया। इसके लिए उन्होंने जी-जान से दिन रात काम किया और बहुत-सी औरतों को निकाला। उन्होंने कई बार असीम साहस का परिचय दिया, लेकिन यह साहस उसी तरह का था जैसे अरने सूअर में होता है। बस भी उससे ज्यादा अक्ल उनमें थी भी नहीं। ऐसे बहुत से केस सामने आये जिनमें मृदुला साराभाई ने शरणार्थी औरतों को मारा-पीटा भी विशेषकर उड़ा ली गयी औरतों को। 1947 में और उसके बाद भी बहुत से लोगों का खयाल रहा कि यह धाकड़ औरत ग़लत जगह आ गयी है इसे तो मिलिट्री पुलिस में होना चाहिए था। मानवीय समस्याओं को हल करने में जिस मानवीय संवेदना की आवश्यकता होती है उसका उनमें कतई अभाव था।

55 वर्ष के बूढ़े क्वारे बूटासिंह नामक एक सिख किसान ने, 1947 के शुरू में जैनब नाम की एक सत्रह साल की लड़की को बचाया था। वह अपने उड़ानेवाले से अपनी जान छुड़ाना चाह रही थी। बूटासिंह ने 1500 रुपये देकर उसे छुड़ा लिया। उसने उससे शादी कर ली और ग्यारह महीने में ही जैनब ने एक बच्ची को जन्म दिया। बड़े खुश खुश जी रहे थे वे। बूटासिंह के एक भतीजे की निगाह उसकी ज़मीन पर थी, उसने जलकर थाने में खबर कर दी कि जैनब उनके गाँव में है। अंत में यह खबर मृदुला तक पहुँच गयी। पुलिस को साथ ले वे अपने गिरोह के साथ वहाँ जा धमकीं और जैनब की मरजी के खिलाफ जबरन उसे कैंप में ले आयीं। वहाँ उसे छह महीने रखा और अंत में उसे उसके रिश्तेदारों के पास पाकिस्तान भेज दिया। किस तरह परेशान फटेहाल बूटासिंह अपनी बीवी को पाने के लिए दर-दर भटका, किस तरह वह जैनब के लिए मुसलमान बना किस तरह वह अपनी बेटी तनवीर को लेकर चोरी-छुपे पाकिस्तान पहुँचा वहाँ कैसे वह अपनी प्यारी जैनब से मिला किस तरह जैनब के रिश्तेदारों ने जैनब से उसका जबरन परित्याग कराया किस तरह बूटासिंह ने आत्महत्या की और किस तरह वहाँ के मुसलमानों ने उसे श्रद्धा से दफनाया, किस तरह उसकी बेटी तनवीर को लाहौर में उसके सौतेले मा बाप ने पाला और फिर उसकी किसी इंजीनियर से शादी कर दी—इस दुःख भरी कहानी को भारत और पाकिस्तान में लाखों लोगों ने जाना-सुना। बूटासिंह विभाजन रेखा के दोनों तरफ रहने वाले पंजाबियों के लिए वहशी झगड़ों और आशा की उस नन्ही किरन का प्रतीक बन गया जो इंसान में खुशी की निरंतर तलाश जगाती है और जो तलाश अंत में एक-दूसरे को अलग रखनेवाली नफरत पर काबू पा लेती है।

1953 में और उसके बाद भी मृदुला पर कश्मीर के मामले में राष्ट्र विरोधी गतिविधियों का आरोप लगा और भारत सरकार ने गृह मंत्री गोविन्दवल्लभ पंत की सलाह पर उन्हें गिरफ्तार किया और जेल में डाल दिया। मेरे खयाल से वे राष्ट्र विरोधी गतिविधियों की दोषी नहीं थीं बल्कि ऐसी मूर्खता की दोषी थीं जो अडियलपन और दृष्टिकोण के अभाव से पैदा होती है।

मृदुलाजी से मेरी दो बार झड़प हुई। पहली 1946 में, शिमला में रिट्रीट के स्थान पर। उन दिनों ब्रिटिश केबिनेट मिशन वहाँ आया हुआ था। पठानों की वेशभूषा में वे मेरे कमरे में धड़ाक से घुसीं और मुझे हुक्म देने लगीं। मैं उनसे पहले कभी नहीं मिला था। मैंने उनसे पूछा "कौन हैं आप?" उन्होंने उत्तर दिया "मृदुला साराभाई।" मैंने कहा "कभी नहीं सुना यह नाम। अगर आपने

आगे से ऐसी हरकत की तो मुझसे बुरा कोई नही होगा। अब आप जा सकती हैं।' उन्होंने मेरी तरफ खुदक से देखा और चली गयी।

दूसरी झड़प तब हुई जब मैंने यह सुना कि जब प्रधानमन्त्री दौरे पर जाते हैं तो वे मुख्य मन्त्रियों और मुख्य सचिवों को फोन पर निर्देश देने लगती है कि सुरक्षा का बदोबस्त कैसा हो खाना किस तरह का होना चाहिए, वगैरह-वगैरह। मैंने सभी मुख्य मन्त्रियों और सचिवों को सर्कुलर भिजवा दिया कि मृदुला साराभाई के इस तरह के हस्तक्षेपों को कोई मजूरी नही दी गयी है और भविष्य में उनके निर्देशों पर कोई ध्यान न दिया जाय। मैं मृदुलाजी को भी यह सूचना देने से बाज न आया कि मैंने इस विषय में क्या किया है। इसके बाद से वे सावधान हो गयी।

जब कभी भी मुझे मृदुलाजी का ख्याल आता है तो साथ ही पश्चिमी जर्मनी के भूतपूर्व चासलर आदेनौयर की यह उक्ति भी स्मरण हो आती है, 'ईश्वर ने स्त्रियों को अक्ल तो कम दी लेकिन मूर्खता कम देने में भूल कर गया।

पदमजा नायडू

17 नवबर 1900 को जन्मी पदमजा नायडू सरोजिनी नायडू की दो लड़कियों में से बड़ी लड़की थी। चेहरे पर खडिता नायिका का सा भाव लिये उनके नैन नक्श हुस्नशिना से मिलते-जुलते थे और तिस पर वे अजता गुफाओं की श्यामवर्णी राजकुमारी का सा शृगार प्रसाधन किया करती थी। उन्हें अपने बारे में भारी गलतफहमियां थी जिन्हें देखकर दया उपजती थी। उन्होंने अपने को आश्वस्त कर लिया था कि अगर कोई पुरुष एक बार उनके सपर्क में आ गया तो फिर वह उनसे प्रेम किये बिना नही रह सकता। लड़कपन में ही वे इस कल्पना से आनदित होती रही थी कि नवाब सालारजग उनसे प्यार करता है। अगर वह किसी और औरत की तरफ निगाह करते हुए देख लिया जाता तो पदमजा स्वाग बिखेरने लगती। अत में जहाँ तक नवाब का सबध था, वे अपने इस दिवा-स्वप्न से मुक्ति पा गयी।

पदमजा से मेरी पहली मुलाकात फरवरी 1946 में इलाहाबाद में हुई। उन्होंने यह दस्तूर बना लिया था कि दिल्ली हो या इलाहाबाद नेहरूजी की गृहस्थी में ही रहना है। वे हमेशा नेहरूजी के पास वाला कमरा अपने लिए रखने की जिद करती थी। लटकने की हद तक अपने भारी वक्षों को वे इस अदाज से अपनी चोली में जमाती थी कि उनका वक्ष माईवेस्ट (हालीवुड की पुरानी अभिनेत्री जो अश्लील सकेतों में द्विअर्थी शब्द बोलती थी) के वक्ष जैसा लगता था। वे हमेशा नीची काट के ब्लाउज पहनती थी और पुरुषों के सामने कधे से इस तरह अपनी साड़ी सरकाकर नीचे गिरा देती थी कि वक्ष नगे हो जायें और थलथल करके हिलने लगें। जब भी वे अपने कमरे में होती थी तो कमरा पाउडरों और इत्रों की खुशबुओं से भरा रहता था। मेरी निगाह में वे खूबसूरत नही थी लेकिन नजर अपनी-अपनी पसद अपनी अपनी।

अक्सर नवबर के पहले हफ्ते में ही वे हैदराबाद से नेहरूजी की (14 नवबर) इन्दिरा की (19 नवबर) और अपनी (17 नवबर) सालगिरह मनाने के लिए नेहरू निवास में पधार जाती थी। इन्दिरा को पदमजा का बार-बार आना और इतनी देर तक ठहरना नापसद था लेकिन वह इस बारे में कुछ नही कर सकती थी।

एक दिन इन्दिरा ने मुझसे कहा कि उस गणतन्त्र दिवस पर राजपथ और

बारिश से बचने के लिए छाता खोलकर घर से निकलता है ?' मैंने इंदिरा को सलाह दी अगर इसके बाद से कोई तुम्हें आत्महत्या करने का इरादा जताये तो तुम उसे वैसा करने के लिए प्रोत्साहित करना।"

दिल्ली म अपने प्रवास के दौरान लेडी माउटबेटन पदमजा स मिलना चाहती थी। उन्होंने पद्मजा को सदेश भेजा कि वे वस्टन कोट मे उनसे मिलने आयेंगी। लेकिन पदमजा बन्दिमागी मूड म थी उन्होंने उनसे मिलने से इंकार कर दिया।

लेडी माउटबटन के चले जाने के बाद पद्मजा की तबीयत जब जरा सभली और उनकी हालत सामान्य हो गयी तो मैं वैस्टन कोट म उनसे मिलने गया। उन्होंने मुझसे बहुत-सी बातें की। फिर दुखी स्वर म कहा जवाहर एक स्त्री से बँधने वाला आदमी नहीं। मेरा स्वगत कथन था यह पता लगाने म बडा लबा समय लगाया।' उन्हे यह ज्ञान ही नहीं था कि मैदान कब छोड देना चाहिए। एक वष बाद नेहरूजी के शयनकक्ष म लेडी माउटबेटन के दो फोटोग्राफ देखकर पदमजा अपना फोटो भी वहा रखने की इच्छा मन म न दबा सकी। इसलिए उन्होंने अपनी (आवक्ष) छोटी सी, लेकिन मारू पटिंग नेहरूजी के शयनकक्ष मे फायर-प्लेस के ऊपर ऐसे मुकाम पर रखवा दी जहाँ नेहरूजी विस्तर पर लटे-लेटे उसे देख सकें। पदमजा के दिल्ली से जाने के तुरत बाद ही नेहरूजी ने वह चित्र वहा से हटवाकर गोदाम म रखवा दिया।

गोविन्दवल्लभ पत ने गृहमन्त्री बनते ही पदमजा को पश्चिमी बगाल का गवनर बनाकर भेजना चाहा। वे स्वय उन्हे अच्छी तरह लब अरसे से जानते थे। उन्होंने मुख्यमत्री बी सी राय से सलाह ली, जो स्वय काफी अरसे तक पदमजा के व्यक्तिगत मित्र रह चुके थे। राय ने इस नियुक्ति का स्वागत बडे उत्साह स किया। पतजी न राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद से भी अनौपचारिक बात की और उन्होंने भी इस प्रस्ताव का स्वागत किया। तब कहीं जाकर पतजी ने इसकी चर्चा नेहरूजी से की। नेहरूजी की छोटी बहन कृष्णा हठीसिंग ने मुझे एक विचित्र पत्र लिखा जिसम उन्होंने पूछा था क्या यह उनकी सेवाओं का फल देने के लिए किया गया है ? मैं उत्तर देना चाहता था कि इस मामले मे पहल पतजी ने की थी और उन्होंने प्रधानमत्री से बाद म पूछा था। लकिन तभी मुझे नेहरूजी की वह चेतावनी याद आ गयी कि मैं कृष्णा हठीसिंग से जहाँ तक हो सके पत्र-व्यवहार न करूँ।

पदमजा अच्छी गवनर सिद्ध हुइ। राय के बाद उनका पद सभालने वाले पी सी सेन से उनकी खूब बनी। वे दस वष से जरा ज्यादा समय तक पश्चिमी बगाल की गवनर रहीं। पक्के लाट साहब की तरह की हरकतों मे वे बडा सुख लेती थी। वे पूरी तरह से गैर साम्प्रदायिक थी और उस समस्या प्रधान राज्य म समस्याओं को हल करने मे अपने दृष्टिकोण के कारण वे काफी सहयोग दे सकीं। नेहरूजी की मृत्यु के कुछ समय बाद उन्होंने गवनर-पद स सन्यास ले लिया।

श्रद्धा माता (कल्पित नाम)

1948 मे सर्दियो के शुरू मे श्रद्धा माता नाम की एक युवा सन्यासिनी बनारस से दिल्ली आयी। व संस्कृत की विद्वान थी और वद पुराण उन्हें कंठस्थ थे। जनता उनके प्रवचनों को सुनने के लिए भारी सख्या म जुडती थी। उनके श्रोताओं मे लोकसभा के सदस्य भी होते थे। एक दिन नेहरूजी के पुराने मवक

एम ने उपाध्याय श्रद्धामाता का हिन्दी म लिखा पत्र नेहरूजी के नाम लेकर आये और साथ ही उन्होंने उनकी तारीफ के पुल भी बाधे। नेहरूजी ने प्रधानमन्त्री-निवास म भेंट का समय दे दिया। जब वे भेंट के बाद जाने लगी तो मैंने देखा कि वे युवा हैं सुघड हैं और सुदर हैं। उनसे मुलाकातो की सख्या बढती गयी विशेष कर रात के समय, जब नेहरूजी अपना काम खत्म कर लेते थे। नेहरूजी के लखनऊ की एक यात्रा के दौरान श्रद्धामाता वहाँ भी प्रकट हो गयी। हम्वेमामूल उपाध्यायजी वहा भी उनका एक पत्र नेहरूजी के नाम लाये थे। नेहरूजी ने पत्र का उत्तर भिजवा दिया। वे आधी रात को नेहरूजी के पास मिलने पहुँच गयी। पद्मजा को दौरा पड गया।

मुझे इस मामले म उपाध्याय की दिलचस्पी अच्छा नही लगी और मैंने उनसे यह कह भी दिया। मैंने श्रद्धामाता के बारे मे उन्हें अपनी आशकाएँ बतायी। लेकिन उस जन्म-जात मूख ने मुझसे अटूट श्रद्धा के साथ कहा कि वे तो देवी है।

अचानक श्रद्धामाता लुप्त हो गयी। नवबर 1949 म बगलौर के एक कान्वेंट से एक सभ्य-सौम्य व्यक्ति पत्रो का एक बन्डल लेकर दिल्ली आया। उसने कहा कि कुछ महीने पहले उत्तरी भारत की एक युवा महिला कान्वेंट म आयी थी और वहाँ उसने एक लडके को जन्म दिया था। उस महिला ने अपना नाम और अता-पता बताने से इकार कर दिया था। चलने लायक होते ही वह कान्वेंट स चली गयी और बच्चे को पीछे छोड गयी। लेकिन वह अपनी एक पोटली ले जाना भूल गयी, जिसम और चीजो के अलावा हिंदी म लिखे बहुत से पत्र मिले। मदर सुपीरियर विदेशी थीं। उन्होंने पत्रो की पडताल करायी और उन्हें बताया गया कि यह प्रधानमत्री को लिखे गये है। वह व्यक्ति पत्रों का जो बडल लाया था, उसने वह हमे दे दिया। लेकिन उसने अपना नाम या मदर सुपीरियर का नाम या कान्वेंट का नाम और पता बताने से इकार कर दिया। नेहरूजी को तथ्या से अवगत कराया गया। उन्होंने वे पत्र फाड दिये। उस समय उनके चेहरे पर कोई भाव नही था। उन्होंने उस समय या बाद म भी उस बच्चे म कोई दिलचस्पी नही दिखायी। इसी सन्दभ मे मुझे सुभाषचद्र बोस का रुख याद आया। जब बोस को पता चला कि एक आस्ट्रियाई लडकी को उनसे गभ रह गया है तो उन्होने उससे गभपात कराने को कहा। वह लडकी द्वितीय युद्ध के समय जमनी म उनके दफ्तर म काम करती थी। लेकिन गभपात असभव था क्योंकि भ्रूण बहुत परिपक्व हो चुका था। उस समय बोस विवाह करने की स्थिति म नहीं थे। उनकी दिलचस्पी अपने राजनीतिक भविष्य म अधिक थी। बोस चुपचाप एक पनडुब्बी म बठे और जमनी से जापान के लिए रवाना हो गये। यह प्रसग ए सी एन नम्बियार ने मुझे सुनाया था जो उस समय बोस के साथ थे।

अपने यौन सबधो और उससे जुडे परिणामो को स्वीकार कर और उनसे उत्पन्न दायित्वों को पूर्ण रूप से अपने सिर लेकर, कोई भी राजनीतिज्ञ अपने भावी राजनीतिक जीवन की बलि नही चढायेगा।

श्रद्धामाता उत्तर भारत म लौट आयी और उन्होंने अपना भगवा चोला उतार फेंका। आखिरी खबर यह मिली थी कि वे जयपुर मे है और बाल्ब बाल होठो पर लिपिस्टिक और पूरे ताने-बाने के साथ मस्त पर हैं। इसके बाद उन्होंने नेहरूजी से कभी भेंट नहीं की।

मैंने चोरी छिपे उस लडके के बारे म कई बार पूछताछ करवायी लेकिन उसका कोई अता-पता नहीं चला। ऐसे मामलो म कान्वेंट की परपरा रही है कि

वे चुप रहते हैं और गोपनीयता स काम लेत हैं। अगर मैं उस लडके को खोजने म सफल हो जाता तो मैं उसे गोद ले लेता। वह कथालिक ईसाई के रूप म बडा हो गया होगा और उसे पता न होगा कि उसका पिता कौन था। वसे यह उसक लिए अच्छा ही था।

जब कभी भी मुझे उस लडके का खयाल आता है तो नपोलियन के उस लडके का भी ध्यान आ जाता है जो काउ टेस मेरी वालेस्का से पदा हुआ था। नेपोलियन को उसके बारे म एल्बा म उस समय पता चला था जब अंग्रेजो की अनुमति से मेरी वाल स्का अपने छोटे लडके को लेकर उससे मिलने गयी थी। जब वे द्वीप पर स मुख्यभूमि पर लौटन लगे तो नेपोलियन ने लडके का गोद मे उठाया, चूमा और धीरे से नीचे उतार दिया। फिर उसने लडके को एक तलवार भेंट करते हुए कहा बटे यह वह तलवार है जिससे छब्बीस वष की उम्र म मैंने इटली पर विजय प्राप्त की थी।" मेरी वालेस्का ने नेपोलियन को तलवार वापस लेने के लिए कहा और बोली 'नेपोलियन! तलवार के अलावा भी अपना नाम पैदा करन के बहुत स तरीके हैं।' उसकी यह इच्छा अत मे पूरी हुई। उसके बेटे एलग्जाड्रे फ्लोरियन जोसेफ कोलो ना वाले स्का (1810 1868) को फ्रास का काउट बनाया गया और वह फ्लोरेंस, नेपल्स और लदन म फ्रास का राजदूत रहा। 1855 म वह फ्रास का विदेश मत्री नियुक्त हुआ और अगले ही वष पेरिस काग्रेस मे उसने फ्रास के पूर्णाधिकारी दूत के पद पर काय किया। 1860 म विदेश कार्यालय छोडते ही वह राज्य मत्री बना दिया गया और इस पद पर वह 1863 तक रहा। 1855 से 1865 तक सीनेटर रहने के बाद उसन 1865 म कोर आफ लेजिसलतीफ म प्रवेश किया और उसे चबर का प्रेजीडेंट बना दिया गया। उसका तगडा विरोध हुआ तो दो वष बाद उस वापस सीनेट म भेज दिया गया। 27 अक्तूबर 1868 को उसकी मत्यु हो गयी।

अगर नेहरूजी का वह पुत्र अनात नही रहता और उसम प्रतिभा और क्षमता होती तो क्या ऐसी कोई बात उसके साथ घटित नही हो सकती थी? इतिहास म कुछ महान व्यक्ति जारज रहे हैं। इसके सबसे बडे उदाहरण क फ्यूशियस और लियोनार्दो दा विंची म दखने को मिलता है। आधुनिक काल मे रम्से मक्डोनाल्ड और जब विली ब्राट इसके उदाहरण हैं।

काउ टेस एडविना माउटबेटन

1947 के बाद स नेहरूजी क जीवन म जो स्त्रियाँ आयीं, उनम लेडी माउटबेटन सबस प्रमुख और सबसे ऊच आसन पर आसीन थी। वह बहुत ही महान महिला थी जिनम करुणा और सजीवता कूट-कूटकर भरी थी। विभाजन के दिनो म उ होंने अनगिनत शरणार्थियो और विस्थापित मुसलमानो को राहत और तसल्ली देने में कोई कसर बाकी न रखी। उ होने युनाइटिड कौंसिल फार रिलीफ एड वल्फेयर का गठन किया और दिल्ली म सभी समाज कल्याण सगठनो को एकजुट किया तथा इस तरह उनमें जरूरी ताल मेल पदा किया। उनका अधिक समय अस्पतालो और गदे शरणार्थी-क पो के दौरो पर ही लग जाता था। वे गदी से गदी बस्तियो में जाने से नही घबराती थी। गाधीजी उनके इस अनथक काम से इतने खुश हुए कि उ हे क पा की देवी की सज्ञा दे डाली।

भारत स माउटबेटन दपति की रवानगी से पहल लेडी माउटबेटन न मुझस वादा ले लिया था कि मैं उ हे नियमित रूप से पत्र लिखूंगा। वास्तव में मुझे यह

नाम करना ही नहीं पडा, क्योकि नेहरूजी स्वय अपने हाथ से उनके पत्रों का उत्तर लिखने लगे। उनके पत्रा पर सख्या पडी होती थी ताकि अगर कोई पत्र इधर उधर हो जाये तो उसे ढूढा जा सके।

अपने कार्यालय में मैंने बडी सावधानी से चुनकर, डाक के काम पर एक गोपनीय काय करने वाला सहायक लगाया था। शुरू में वे सारे पत्र मैं स्वय खोलता था, जिन पर व्यक्तिगत, गुप्त और गोपनीय लिखा होता था। लेकिन ऐसे पत्र इतनी बडी सख्या में आने लगे कि मुझे लगा कि मैं इन्हे अकेला नहीं सम्हाल पाऊँगा। मैंने गोपनीय काय करने वाले सहायक से वे सभी पत्र खोलने को कह दिया। सिर्फ जिस पत्र पर 'उसके लिए' लिखा हो, वे मुझे दिये जाते थे ताकि उन्हे बिना खोले मैं नेहरूजी के सामने रख सकू। शुरू में 'उसके लिए' लिखे लिफाफे इंदिरा, नेहरूजी की दो बहनो और लेडी माउटबेटन के आते थे। बाद में इसका पता कई लोगो को लग गया और वे भी लिफाफो पर यही शब्द लिखने लगे। इस तरह के अनधिकृत व्यक्तियो के लिफाफे मुझे खोलने पडते थे।

एक दिन गोपनीय काय करने वाले सहायक ने लेडी माउटबेटन का लिफाफा खोल लिया। वह घबराया हुआ उसे लेकर मेरे पास आया। मैंने कहा कि फिक्र मत करो लेकिन भविष्य में अधिक सावधानी बरतना। मैंने उस लिफाफे के साथ एक स्लिप लगाकर उसे नेहरूजी के पास भेज दिया। स्लिप पर मैंने लिख दिया था कि किन परिस्थितियो मे वह लिफाफा खुल गया था और आगे से इस तरह की गलती न दोहराने के आदेश दे दिये गये हैं। उचित था कि नेहरूजी नाराज हुए। लेकिन आज तक मेरी समझ में यह नहीं आया कि लेडी माउटबेटन जैसी उम्र की महिला किस तरह किशोर लडकियो की-सी बातें लिख डालती थी। इस घटना के बाद लेडी माउटबेटन नेहरूजी के नाम के पत्र बद लिफाफे मे रखकर उसके ऊपर एक और लिफाफा चढा देती थी और उस ऊपरी लिफाफे पर मेरा नाम लिख देती थी।

शायद लडकपन से ही लेडी माउटबेटन की त्वचा चीमड-सी हो गयी थी। लेडी माउटबेटन और नेहरूजी के साथ राष्ट्रपति भवन के स्वीमिंग पूल पर मुझे कई बार जाने का मौका मिला और वहाँ मैंने उन्हे नहाने की पोशाक मे देखा। उनकी देह मे कोई आकषण नहीं था लेकिन उनका चेहरा सुदर था।

लेडी माउटबेटन सेंट जोन्स एम्बुलेंस ब्रिगेड की सुपरिंटेंडेंट-इन चीफ थी और इस रूप मे जब व पूर्वी और दक्षिण पूर्वी एशिया के दौरो पर आती थी तो जाते और आते समय कई दिनो के लिए नयी दिल्ली मे जरूर रुका करती थी।

एक बात मेरी निगाह से कभी नहीं चूकी कि जब नेहरूजी लेडी माउटबेटन की बगल मे खडे होते थे तो उनके चेहरे पर विजय-गर्व का भाव होता था।

✦ ✦ ✦

जब एम के वल्लोडी हैदराबाद के भारतीय सघ मे विलय के बाद, वहाँ के मुख्य मत्री बने तो कुछ अच्छे मतव्य के लोग नेहरूजी के पास आये और नेहरूजी से कहा कि वे अपने प्रभाव से निजाम और नीलोफर का बहुत दिनो से लटका आर्थिक समझौता करा दें। नीलोफर निजाम के दूसरे बेटे की तुर्की बीवी थी और उससे अलग हो गयी थी। नेहरूजी ने वल्लोडी को लिखा कि वे जो भी उचित हो, निजाम से वहाँ कराने की कोशिश करें। निजाम अपने दोनो बेटों से नाराज था फिर भी

उसने उचित समझौता कर दिया। बस इसी में हैदराबाद में बातें चल निकलीं और ऐसी अफवाह दिल्ली तक पहुँच गयी कि नेहरूजी नीलोफर में दिलचस्पी ले रहे हैं। इसी समय टाटा की किसी कंपनी के दस्तावेज़ डायरेक्टर ने नेहरूजी से कहा कि उनकी मेहरबानी पर नीलोफर स्वयं आभार दर्शाने के लिए दिल्ली आने को उत्सुक हैं। वे साहब तो इस हद तक आगे बढ़ गये कि उन्होंने नीलोफर को प्रधानमंत्री निवास में ठहराने की पेशकश कर डाली। नेहरूजी ने उसमें कहा कि नीलोफर यहाँ आना चाहे तो उसका स्वागत है। बाद में नेहरूजी ने इंदिरा को नीलोफर का इरादा बताया और कहा कि वह प्रधानमंत्री निवास में ही मेहमान बनकर रुकेगी। पिछली सभी बातों की जानकारी होने के नाते इंदिरा चिंतित हो उठी और उसने मुझसे कुछ करने को कहा। मैंने इस तरह के मामले में हस्तक्षेप करने की असमर्थता जतायी। लेकिन उसने कहा कि ऐसा करना उसके पिताजी के हित में होगा। मैंने टाटा डायरेक्टर को बुलाया और कहा कि नीलोफर का यहाँ आना प्रधानमंत्री के लिए हानिकर होगा। साथ ही मैंने यह भी कह दिया कि जब प्रधानमंत्री ने उसके लिए इतना कुछ कर दिया है तो उसका यहाँ स्वयं आना अनुचित है। वह अपना यहाँ आना रद्द कर दे। प्रधानमंत्री तीन हफ्ते बाद जब लंदन जायेंगे तो रास्ते में पेरिस में वह उनसे मिल सकती है। मैंने आरली हवाई-अड्डे पर उसे देखा और वह मेरी कल्पना से भी ज्यादा सुंदर निकली।

कभी-कभी नेहरूजी को स्वयं अपने से और उनके तथाकथित मित्रों से बचाना पड़ता था। टाटा-डायरेक्टर की हरकतें देखकर मुझे वाल्तेयर की उक्ति याद आती थी 'हे भगवान, मुझे मेरे मित्रों से बचाओ। अपने दुश्मनों से तो मैं अपने आप निपट लूँगा।'

◆ ◆ ◆

जिस अंतिम महिला ने नेहरूजी को फाँसने की कोशिश की वह उत्तरी भारत के किसी राज-परिवार की थी। उसका विवाह पंद्रह वर्ष की आयु में हो गया था और जब तक उसे यह पता चलता है कि विवाह किसलिए होता है उसके चार बच्चे हो चुके थे और उस समय उसकी आयु थी केवल बाईस वर्ष। इसके बाद उसकी आँखें खुलीं और उसने देखा कि उसका पति किन बातों में मशगूल रहता है और उसने कितनी औरतें रखैल रख रखी हैं। पति-पत्नी के संबंधों में तनाव आ गया, लेकिन वे अलग नहीं हुए और छल का जीवन जीने लगे।

1960 में लेडी माउंटबेटन की मृत्यु के दो वर्ष बाद राजपरिवार की इस महिला ने यह वहम पाला कि वह नेहरूजी से प्यार करती है। बस वह नेहरूजी से कई बार मिली लेकिन बात ज्यादा आगे नहीं बनी। नेहरूजी की मृत्यु हुई तो वह बड़ी शोकसंतप्त देखी गयी जो अपने-आप में बड़ा मार्मिक दृश्य था।

नेहरूजी की मृत्यु से कुछ वर्षों बाद उस महिला के दढ़ियल पति भी चल बसे। ज्यादा देर लगाये बिना उसने झटपट एक दढ़ियल और ढूँढ़ लिया, लेकिन इस बार का दढ़ियल अपने को 'लेखक' और राजनीतिक चिंतक' कहलवाना पसंद करता है।

रम्से मैकडोनाल्ड स्वयं जारज था और कई इश्क करने और कई नाजायज़ बच्चों को जन्म देने के बावजूद वह ग्रेट ब्रिटेन का प्रधानमंत्री रहा। उसके पुत्र मालकोम मैकडोनाल्ड ने लगभग डींग हाँकते हुए कहा, 'ब्रिटिश राजनीति के

इनि मे म अपन स्वभाव से वह शायद सबसे बडा डान जुआन था। उसके व्यक्तित्व के इस पहलू को नकार कर उसके जीवन का आकलन करना उसी तरह का होगा, जस बीथोवन की महानतम रचनाओ का विश्लेषण करत हुए उसके बहरे-पन का उ लख करना भूल जायें।'

भगवान श्रीकृष्ण के जीवन म सोलह हजार आठ स्त्रियो का स्थान बताया जाता है। इस कारण स न तो उन और न उनकी प्यारी राधा के नाम पर बट्टा लगा है। इसके विपरीत उनकी प्रशसा म गीत गाये गये हैं और उनके प्रेम का आकलन चित्रा, दूसरे कला रूपा और काव्य म हुआ है। यही मूल भारतीय परपरा है। और वस भी हम भारतीय कभी भी मध्य विक्टोरिया-युग की छद्म नतिकता के शिकार नही रहे।

38

नेहरूजी और समाजवादी

जून 1936 मे लखनऊ काग्रेस के बाद जब नेहरूजी काग्रेस के अध्यक्ष बने तो वल्लभभाई पटेल, राजेन्द्रप्रसाद, राजगोपालाचारी, जे बी कृपालानी, जयरामदास दौलतराम जमनालाल बजाज और शकरराववेद ने काग्रेस की कायकारिणी से इस्तीफा दे दिया था और यह तथ्य अब इतिहास का अग बन चुका है। इस्तीफा देने का कारण यह था कि नेहरूजी द्वारा उस समय समाजवाद का प्रचार करना और कायकारिणी के समाजवादी सदस्यो को प्रोत्साहन देना देश के लिए हानिकर था। बाद मे गाधीजी की सलाह पर उन सब ने अपना सयुक्त इस्तीफा वापस ले लिया। यह सद्धातिक सघष बीजरूप म हमेशा मौजूद रहा। समाजवादी भी कुछ इतनी जल्दबाजी म थे कि उससे मामले के सुधरने म कोई सहायता नही मिली। वे यह घोषणा कर रहे थे कि ये पुराने दिग्गज खोखली हो चुकी धारणाओ का प्रतिनिधित्व करते है देश की प्रगति मे बाधा डाल रहे हैं और उन्ह उन पदो से हटा देना चाहिए, जिन पर वे जमे बठे है। समाजवादी भी यही महसूस करते थे कि नेहरूजी उन्हे पर्याप्त समथन नही दे रहे है। राष्ट्रीय आदोलन म वामपथी और प्रतिक्रियावादी सघष के लिए वह समय उचित नही था और इसी कारण दूसरे दशक के अतिम वर्षों म नेहरूजी के दिमाग मे गुट निरपेक्षता की धारणा व्यावहारिक रूप लेने लगी थी।

1946 के शुरू के महीनो म मौलाना आजाद दो झूठ बोलते पकडे गये थे और इसी कारण गाधीजी काग्रेस का अध्यक्ष बदलने के लिए बेचैन थे। उन्ह पता था कि स्वाधीनता मिलने वाली है और इसलिए वे चाहते थे कि उनके उत्तराधिकारी के रूप म नेहरूजी उस पद पर आ जायें। गाधीजी ने आचाय कृपालानी से काग्रेस-अध्यक्ष पद के लिए नेहरूजी का नाम औपचारिक रूप से प्रस्तुत करने को कहा। इस तरह 9 मई 1946 को नेहरूजी तीसरी बार काग्रेस के अध्यक्ष बन

गय। इसके तुरत बाद अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन बम्बई म हुआ और उसम गांधीजी ने नेहरूजी से कह दिया कि वे अपनी मर्जी से कार्यकारिणी समिति बना सकते हैं। उन्होंने वल्लभभाई पटेल राजेन्द्रप्रसाद और दूसरे दिग्गजो को शामिल न करने तक के लिए कह दिया और उन्ह आश्वासन दे दिया कि वे स्वय इस बात का ध्यान रखेंगे कि उनमे स कोई भी गडबड पैदा न कर सके। नेहरूजी न इस बारे म उनकी सलाह नही मानी। लेकिन व यह भी चाहते थे कि कार्यकारिणी समिति म जयप्रकाश नारायण जस प्रमुख समाजवादी भी अच्छी सख्या म शामिल किय जायें। उन्होने समाजवादियो से बात की। जयप्रकाश नारायण उनके प्रवक्ता थे और उनका विश्वास था कि अँग्रेज देश छोडकर जाने वाल नही हैं। इस बात पर भी वे अडे हुए थे कि वे ब्रिटिश साम्राज्यवाद पर अंतिम हमले के लिए देश का तयार करेंगे। समाजवादियो न कार्यकारिणी समिति म शामिल होने से इकार कर दिया। वास्तविकता और अवसर की सही परख की कमी क कारण यहीं स समाजवादियो का वह पार्थक्य शुरू हो गया जो उन्ह अत म पर्दे क पीछे ले गया।

1946 क आखिरी महीना म जब सविधान सभा बनी तो कांग्रेस अध्यक्ष के रूप म नेहरूजी ने बहुत से प्रमुख समाजवादियों को सविधान सभा और बाद म सरकार म लाने की कोशिश की। लकिन जयप्रकाश नारायण और दूसरे समाजवादी इसी सिद्धान्त की रट लगाय रहे कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद पर अंतिम प्रहार करना है। एक महत्वपूर्ण महिला समाजवादी ने नेहरूजी को 'भारतीय केरेन्सकी' की उपाधि दे डाली। यह वह समय था, जब उन महिला का साम्यवादियो से मेल मिलाप चल रहा था लकिन थोडे ही दिन का। जो लोग मौलिक चिंतन करने म असमर्थ होते हैं वह विदेशी स्थितियो को भारतीय साचे म ढाल कर पेश करने की कोशिश करते हैं और इस कोशिश म बडे हास्यास्पद नजर आते हैं।

नेहरूजी को मजबूर होकर उन्ही औजारो से काम लेना पडा जो उनके पास मौजूद थ। लेकिन जयप्रकाश नारायण के लिए उनके दिल म जगह बनी रही। यद्यपि यह बात उन्होंने कभी किसी से कही नही, लेकिन नेहरूजी को उम्मीद थी कि जयप्रकाश नारायण अपन जादुई आकर्षण क कारण उनक बाद प्रधानमंत्री बनेंगे। अगर जयप्रकाश नारायण ने धीरज से काम लिया होता और शुरू म नेहरूजी की सलाह मान ली होती तो नेहरूजी उन्हे तैयार करके, 1962 मे ही सरकार की बागडोर उनके हाथों म सौंप देते।

सरदार पटेल की मत्यु के बाद नेहरूजी न जयप्रकाश नारायण और दूसरे समाजवादियों को फिर लाने की कोशिश की और वह भी सरकार मे। नेहरूजी स जयप्रकाश नारायण की मुलाकात कराने स पहले कमलादेवी चट्टोपाध्याय ने अपन निवास पर डिनर क बाद नौ बजे उन्होंने मुझसे मिलाने की व्यवस्था की। उन्होंने नेहरूजी स विचार विमर्श क लिए चौदह सूत्र तैयार किये थे। इनकी एक प्रति कमलादेवी ने मुझे पहल से भिजवा दी थी क्योकि वे चाहती थी कि जयप्रकाश नेहरूजी क साथ सरकार म मिलकर काम करें। मैंन जब उन चौदह सूत्रो को देखा तो मेरे मुँह स निकल पडा 'ईश्वर ने भी केवल दस सूत्र ही दिये थे।'' मार्क्सवाद का घपला था उन सूत्रो म। मैं उनम अर्थहीन बहस म नहीं पडना चाहता था। मैंने केवल एक सूत्र पकडा—बिना मुआवजे क राष्ट्रीयकरण। मैंने उनस टाटा आयरन एड स्टील कपनी की बात कही। उन्होने तुरन्त उत्तर दिया 'वे लाभांश की शक्ल म शेयरों न अंकित मूल्य से कई-गुना वापस ले चुके हैं।' मैंने उनसे कहा

कि वे अपने मित्र मीनू मसानी से क्या नहीं पूछ लेते कि टाटा आयरन के कितने शेयर गरीब विधवाओं और छोटे आदमियों ने खरीद रखे हैं और शेयरों लगाकर उन्होंने इन शेयरों को किस कीमत पर खरीदा है। मैंने उन्हें बताया कि इस समय टाटा आयरन के साधारण शेयर का मूल्य 75 रुपये है और बाजार में वह 300 रुपये से ऊपर का बिक रहा है। मैंने उनसे पूछा कि बिना मुआवजा दिये इस कंपनी का राष्ट्रीयकरण करने से क्या वे विधवाओं और छोटे लोगों को नुकसान नहीं पहुंचाना चाहते जिनकी संख्या अनगिनत है। इसका उनके पास कोई उत्तर नहीं था। मेरी उनसे दूसरी मुलाकात जरा ठंडे दिल से हुई। मैंने कमलादेवी चट्टोपाध्याय से कह दिया था कि जयप्रकाश नारायण और नेहरूजी की मुलाकात का कोई ठोस परिणाम नहीं निकलने वाला है। और हुआ भी यही। मुझे दुख हुआ क्योंकि मेरी दृष्टि में जयप्रकाश नारायण बहुत गुणी व्यक्ति थे और नेहरूजी के बाद प्रधानमंत्री बनने के सर्वथा योग्य थे। मैं चाहता था कि नेहरूजी के बाद कहीं ऐसा व्यक्ति न आ जाये जो उनके स्तर से बहुत नीचे का हो। लेकिन बाद में लालबहादुर के मामले में बिल्कुल यही हुआ।

इसके बाद से कांग्रेसी समाजवादी, विशेषकर जयप्रकाश नारायण भटकते चले गये। उनकी दिलचस्पी कभी नेपाल के पंचायती राज में तो कभी पाकिस्तान के बुनियादी प्रजातन्त्र में कभी भूदान आन्दोलन में तो कभी दलहीन प्रजातन्त्र में कभी सर्वोदय तो कभी संपूर्ण क्रांति में से होकर बही। और अब की संपूर्ण क्रांति तो किसी के पल्ले ही नहीं पड़ी है। एक बार मैंने विभिन्न 'दानों' की गिनती करने की कोशिश की—भूदान, ग्रामदान, संपत्तिदान, श्रमदान, बुद्धिदान, जीवनदान। मुझे सभी दान नापसंद हैं। मेरा खयाल है कि ये सब गांधीजी के ट्रस्टीशिप के सिद्धांत का ही हिस्सा हैं।

विभाजन का कुप्रभाव दूर हो जाने और वल्लभभाई की मृत्यु के बाद ही नेहरूजी समाजवाद पर गंभीरता से सोच सके। कांग्रेस के अवडी-अधिवेशन में मौलाना आजाद ने समाज के समाजवादी ढांचे से संबंधित प्रस्ताव पेश किया और वह पारित हो गया।

समाजवादियों में कुछ योग्य और अच्छे व्यक्ति थे कुछ लाल बुझक्कड़ (डान क्विकज़ोट) थे और कुछ फालतू की हांकने वाले विदूषक। स्थितियों का गलत जायजा लेने की वजह से वे पर्दे के पीछे चले गये। इस पर अक्सर मुझे बर्नार्ड शा की यह उक्ति याद आती है 'यूरोप में समाजवाद आने की पूरी संभावना है लेकिन समाजवादी उसे नहीं आने देंगे।'

निराशा की मनःस्थिति में जयप्रकाश नारायण ने नेहरूजी को समाजवाद के रास्ते में सबसे बड़ा रोड़ा कह डाला। सबसे बड़े रोड़े के हटने के बाद मैं जयप्रकाश नारायण के मुंह से समाजवाद के बारे में एक बात तक सुनने के लिए तरस गया हूं।

अलग अलग समाजवादियों के लिए नेहरूजी के मन में श्रद्धा और सम्मान रहा है। एक बार आचार्य कृपालानी के और दूसरी बार अशोक मेहता के विरुद्ध लोकसभा के उप-चुनावों में नेहरूजी ने कांग्रेस का उम्मीदवार नहीं खड़ा होने दिया।

पंतजी तब उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री थे। उन्होंने मुझे फोन किया कि क्या पंडितजी मेहरबानी करके उत्तर प्रदेश की विधानसभा के उपचुनाव में फैज़ाबाद के कांग्रेसी प्रत्याशी के लिए भाषण देने आ सकते हैं। फैज़ाबाद का वह कांग्रेस

प्रत्याशी आचार्य नरेन्द्रदेव के विरुद्ध चुनाव लड रहा था। मैंने उनसे कहा कि वे सीधे प्रधानमंत्री से बात कर लें, लेकिन व उनसे सीधे बात नही करना चाहते थे। व चाहने थे कि मैं प्रधानमंत्री को इस काम के लिए राजी कर लू। उन्होंने मुझे अगने दिन शाम का फोन पर इस विषय मे बताने के लिए कहा। मैंने प्रधानमंत्री से जिक्र किया तो वे नाराज हो गये। उन्हाने मुझे पतजी से यह बोलने के लिए कहा कि वे उपचुनावो में भाषण देने नही जाते और फिर कहने लगे, यह भी बता देना कि अपवादस्वरूप फजाबाद आ भी जाऊँ तो उस मूख के लिए भाषण देने के बजाय मैं आचाय नरेन्द्रदेव के पक्ष मे बोलूगा।" मैंने यह सभी बातें तो पतजी से नही कही, लेकिन प्रधानमंत्री का बहाना जरूर बता दिया। पतजी बिना बताये समझ गये। नेहरूजी के मन म आचाय नरेन्द्रदेव के प्रति अगाध श्रद्धा और स्नेह था।

हाल ही म छद्म-समाजवादी जाज फर्नाडीज ने नेहरूजी को पाखडी कहा है। मुझे शक है कि फर्नाडीज ने जिस शब्द का प्रयोग किया है उसका अथ भी उन्हे आता है या नही। ऐसे व्यक्ति के बारे म इस तरह के वक्तव्य देनेवाला लाखो लोगों की निगाह म अपने को दया की हद तक हास्यास्पद बनाने के अलावा कुछ नहीं कर रहा। फिर ऐसे लोग तो नेहरूजी के जूतो के फीते बाँधने के लायक तक नही। अमरीका म भी ऐसे लाल बुझक्कड और छुटभये मिल जाते है, जो अब्राहम लिंकन को साला हरामी कहते फिरते है।

39

नेहरूजी की और बातें

कार्यभार संभालने के प्रारंभिक दौर में नेहरूजी को आधुनिक शासन-कला का ज्ञान नहीं था। यही कारण है कि उन्होंने कश्मीर में जनमत संग्रह कराने के भारत के इरादे की घोषणा कर दी। इस घोषणा से कोई लाभ नहीं हुआ अलबत्ता पाकिस्तान को उंगली पकड़ने का बहाना मिल गया। इसके बाद व वुडरो विल्सन की तरह भारत में फ्रांस और पुर्तगाली उपनिवेशों में बारी-बारी से मत संग्रह की दुहाई देने लगे। यह बिना सोचे-समझे जल्दबाजी में की गयी घोषणाएं थीं। अंग्रेजों को हटाने के लिए तो भारत में कोई मत संग्रह नहीं कराया गया। पीछे की सोचने पर संदेह जागता है कि गोआ में जनमत कराने पर क्या वह भारत के पक्ष में जाता!

स्वतंत्रता-संघर्ष के दौरान भाषायी आधार पर प्रदेश कांग्रेस कमेटियों के गठन की जिम्मेदारी भी काफी हद तक नेहरूजी पर जाती है। उदाहरण ले लीजिए। मद्रास प्रेजीडेंसी में चार प्रदेश कांग्रेस कमेटियां थीं—तमिलनाडु कांग्रेस कमेटी आंध्र प्रदेश कांग्रेस कमेटी कन्नड प्रदेश कांग्रेस कमेटी और मलयाली प्रदेश कांग्रेस कमेटी। इस गठन-योजना में व काफी हद तक सोवियत प्रणाली से प्रभावित हुए थे जिसमें स्वायत्त प्रदेशों और संघीय गणतंत्रों के केंद्र से पृथक होने की व्यवस्था है। लेकिन नेहरूजी यह भूल गये कि अगर कोई सोवियत संघटक ईकाई पृथक होने की कोशिश करती तो उसे बेरहमी से कुचल दिया जाता और वहां के अनगिनत लोगों को साईबेरिया भेज दिया जाता। हम सभी जानते हैं कि चेकोस्लोवाकिया के प्रभुता संपन्न राष्ट्र का क्या हश्र हुआ था। जब वहां विद्रोह भड़का तो सोवियत यूनियन ने समाजवादी देशों के लिए सीमित प्रभुता का नया नियम गढ़कर खड़ा कर दिया और फौजों के साथ हस्तक्षेप कर विद्रोह को क्रूरता से कुचल दिया।

प्रदेश कांग्रेस कमेटियों को भाषायी आधार पर गठित करने का अनिवार्य परिणाम राज्य-पुनर्गठन आयोग मे फलीभूत हुआ। जब आयोग की रिपोर्ट आयी तो नेहरूजी हैदराबाद की पृथक सत्ता रखने के पक्ष मे थे, क्योंकि वे इसे मिली जुली संस्कृति का सबसे बडा केंद्र मानते थे। लेकिन इस मामले मे उनके पास और कोई विकल्प नही था। नेहरूजी उत्तर प्रदेश और बिहार को भी छोटे-छोटे राज्यो मे बाँटना चाहते थे ताकि उनकी व्यवस्था मे आसानी रहे लेकिन गोविंदवल्लभ पंत ने उन्हें ऐसा नही करने दिया। पंतजी का बस एक ही तर्क था, 'गंगा जमना की भूमि को कैसे काटा बाँटा जा सकता है ?"

राज्य-पुनर्गठन आयोग की सिफारिशो पर निर्णय ले लेने के बाद केरल के कुछ लोग नेहरूजी के पास पहुँचे और कहने लगे कि उन्हे अलग राज्य नही चाहिए और वे केरल को तमिलनाडु या मैसूर (बाद मे कर्नाटक) राज्य का ही अंग रखना चाहते हैं। और डूबते को तिनके का सहारा मिला। नेहरूजी ने गंभीरता से कामराज के सामने यह प्रस्ताव रखा, जिन्होंने 'परकालम' (देखेंगे) कह दिया। वस्तुतः उनकी कुछ भी दखल की नीयत नही थी। इसके बाद नेहरूजी ने निजलिंगप्पा से बातचीत की, जिन्होंने अपने साथियो से सलाह लेने की बात कही। दरअसल उनकी भी किसी से सलाह लेने की कोई नीयत नही थी। उन्होंने मुझसे तो यह कहा था, 'हम अपने शरीर मे कैंसर क्यो पाले ?"

जब कभी भी मैं प्रधानमंत्री के साथ लंदन गया तो एन्यूरिन बेवन और उनकी पत्नी जेनी ली ने मुझे अपने फार्म चेशाम पर सप्ताहांत बिताने के लिए आमंत्रित किया। एक मरतबा डिनर के बाद काफी और कान्यक चल रही थी। बेवन नेहरूजी के बडे प्रशंसक थे। बातो बातो मे उन्होंने कहा कि नेहरू इतने सुसंस्कृत व्यक्ति हैं कि कभी कम्युनिस्ट नही बन सकते क्योंकि कम्युनिस्ट होने का आमतौर पर मतलब है, निष्ठुर और उजड्ड होना। उन्होंने यह भी कहा कि नेहरू प्रजातंत्र के ऐसे समर्थक हैं कि उग्र समाजवादी हो ही नही सकते। जेनी ली ने पूछा, "तब आप नेहरूजी को क्या कहेंगे ?" बेवन का उत्तर था, 'नेहरूजी निःसंदेह ब्रिटेन के महान उदारवादियों की सबसे अंतिम कडी है—और इसके अतिरिक्त वे बहुत बडे सवेदनशील व्यक्ति हैं।

नेहरूजी को धर्मों के बँधे-बँधाये रूपो से कुछ लेना देना नही था, बल्कि उन्हे तो उनसे नफरत थी। किंतु वे अधार्मिक व्यक्ति नही थे। वे अपने साथ एक थैले मे 'लाइट आफ एशिया', भगवद्गीता, ईसाई धर्म के चार सिद्धांत, अशोक के फ़रमान और राष्ट्र-संघ का घोषणापत्र रखते थे—सबका लघुतम संस्करण।

चीनी हमले से पहले, जब संकट के बादल छाने लगे थे तो कृष्ण मेनन ने एक बड़ी बेवकूफी की बात कही, "हम पेंटागन (अमरीका का सर्वोच्च सामरिक संगठन) को पोस्टकार्ड तक नही भेजेंगे।" लेकिन 19 नवबर 1962 को नेहरूजी ने हडबडी का तार-संदेश राष्ट्रपति कनेडी के नाम भेजा जिसमे भारत को हवाई रक्षा देने की माँग की थी। इस संदेश की प्रतिलिपि न तो प्रधानमंत्री-सचिवालय की फाइलों मे मिलेगी और न ही विदेश-मंत्रालय की फाइलो मे। यह घर की फाइल मे मिलेगी जो मैंने वर्षों पहले प्रधानमंत्री निवास मे तैयार करनी शुरू कर दी थी। नेहरूजी की माँग पर एक अमरीकी वायुयान वाहिनी बेडा बंगाल की खाड़ी की तरफ रवाना हो गया था। लालबहादुर को नेहरूजी की इस अपील का शायद उस समय पता नहीं था जब वे नये प्रधानमंत्री के रूप मे संसद मे किये गये एक प्रश्न का उत्तर दे रहे थे। प्रश्न सुधीर घोष की पुस्तक 'गांधीज इमिसरी' मे

उल्लिखित एक तथ्य के बारे में किया गया था और शास्त्रीजी ने उसका खंडन किया था। सुधीर घोष ने लिखा था कि नेहरूजी ने वायुयान-वाहित बेडे की मांग की थी और बेडा बंगाल की खाडी में खडा था। तकनीकी दृष्टि से लालबहादुर सही थे, लेकिन वास्तव में वे गलत थे।

अपनी पुस्तक 'एम्बसडम जरनल' में 5 जनवरी 1963 को प्रोफेसर जे के गालब्रथ लिखते हैं

> एम जे देसाई ने मुझे बताया कि भारत चीन के प्रभाव विस्तार को रोकना चाहता है। वह इस मामले में दक्षिण एशिया में राजनीतिक और सैनिक तौर पर अमरीका के साथ सहयोग को तैयार है। यह हमारी सहायता का मुआवजा है और उल्लेखनीय हद तक हमारी प्रगति भी। एक सप्ताह पहले नेहरूजी ने इशारा किया था कि वे इस दिशा में सोच रहे हैं।

एम जे देसाई उस समय विदेश मंत्रालय में महासचिव थे और उन्हीं दिनों वे संयोग से मुझसे मिले। उन्होंने बताया कि गालब्रथ से उनकी क्या बातें हुई थीं। साथ ही उन्होंने यह भी जोड दिया कि प्रधानमंत्री से पूछकर ही उन्होंने यह बातें की थीं। इसके थोडी देर बाद जब मैं प्रधानमंत्री से मिला तो मैंने उनसे इस विषय में पूछा और उन्होंने उन बातों की पुष्टि की जो एम जे देसाई ने मुझे बतायी थीं।

जब गालब्रथ की पुस्तक प्रकाशित हुई तो उपरिलिखित उद्धरण को संसद में कुछ वामपंथी कांग्रेसजनों और दूसरे लोगों ने बडी गर्मागर्मी से झूठा सिद्ध करने का प्रयत्न किया। उन्हें इसका जरा भी ज्ञान नहीं था कि नेहरूजी ने गुट निरपेक्षता को शाश्वत सत्य कभी नहीं माना। चूंकि वही एक इकहरा और सुंदर शब्द था, इसलिए उन्हें भा गया। गुट निरपेक्षता उनके लिए कभी भी इस तरह का अंधविश्वास नहीं था जो मामूली किस्म के 'प्रगतिशील' राजनीतिकों के लिए है।

13 नवंबर 1962 को राजदूत गालब्रथ ने राष्ट्रपति कनेडी को लिखा 'नेहरूजी जीवन भर अमरीका और ब्रिटेन पर आश्रित होने से बचते रहे। अपने गर्व के कारण उन्होंने सहायता मांगने (या सहायता के लिए आभार प्रकट करने) में हिचकिचाहट दिखलायी। लेकिन अब इसी आत्म निर्भरता को बराय नाम रखने के अलावा—राजनैतिक दृष्टि से कहीं अधिक व्यक्तिगत रूप से—उनके लिए और कुछ महत्वपूर्ण नहीं रहा।' गालब्रथ ने काफी हद तक सही कहा है।

नेहरूजी के दो अनुचित वक्तव्यों को मैं आज तक नहीं समझ पाया हूं। 1962 में वाशिंगटन में युवा राष्ट्रपति कनेडी से वार्तालाप समाप्त होने के बाद प्रेस कान्फ्रेंस हुई जिसमें उनसे पूछा गया कि 'राष्ट्रपति से उनकी कैसी पटी।' अमरीकी पत्रकार अपने राष्ट्रपति के बारे में कुछ प्रशंसा के शब्द नेहरूजी के मुंह से सुनना चाहते थे क्योंकि कनेडी स्वयं नेहरूजी के प्रशंसक थे और उन्होंने कांग्रेस के संयुक्त अधिवेशन में अपने उद्घाटन भाषण में अकेले नेहरूजी का नाम बडे आदर से लिया था। लेकिन पटाक से उत्तर आया 'मेरी हर किस्म के लोगों से पट जाती है।' उत्तर बहुत ही खेदजनक था।

दूसरा अनुचित वक्तव्य उन्होंने लोकसभा में उस समय दिया, जब बहुत समय बीतने के बाद संसद को बताया गया था कि चीनियों ने भारतीय क्षेत्र में लद्दाख के इलाके में अकसाई चिन सडक पूरी कर ली है। नेहरूजी ने अपने भाषण में इस क्षेत्र को ऐसा क्षेत्र बताया 'जहां घास की पत्ती तक नहीं उगती।' अरब की मरु

भूमियों व विशाल क्षेत्रों पर भी घास की पत्ती तक नही उगती, लेकिन उनके तले खनिज अपरिमित मात्रा म दवा पडा है। हम अभी तक नही पता कि हिमालय के उजाड और दुर्गम क्षेत्रों की कोख म क्या छिपा हुआ है।

लेकिन नेहरूजी म कभी बदले की भावना नही रही। वे लोगो के पीछे कभी नहीं पडे। मेरे सामने दो ही उदाहरण एसे है जब उन्होंने दो काग्रेसियो की सब के सामने बुरी तरह स खबर ली थी। एक थे पजाब के गोपीचद भागव, जि ह उन्होंने राजनीतिक ईमानदारी से हीन व्यक्ति ' कहा था। दूसरे थे डी पी मिश्र जिनसे बारे म 1951 52 के चुनावो के दौरान जबलपुर की एक सभा म कहा था 'मैं मध्यप्रदेश के लोगो का द्वारकाप्रसाद मिश्र की हरकतो स सावधान करना चाहता हू।' बरसो बाद चोर का भाई गिरकट कहावत सामने आयी और इन्दिरा और मिश्र का मन देखा गया और वह मेल भी तब तक रहा जब तक दोनो को एक-दूसरे स फायदा होता रहा।

नेहरूजी अपने सुदर चेहरे के प्रति सजग थे और उन्हें अपनी सुतवाँ नाक सहा आकार के सिर और धावको के से पावो पर नाज था। सारा दिन काम करके थक चुकने के बाद वे स्नान करते थे और भोजन की मेज पर तरोताजा दिखायी देते थे। फिर से ताजा दम हो जाने की क्षमता उनम कमाल की थी।

40

गोविन्दवल्लभ पंत

पंतजी के पूर्वज महाराष्ट्र के ब्राह्मण थे और वे अंग्रेज़ों के भारत आने से पहले ही अलमोड़ा में कुमाऊं महाराजा के संरक्षण में आ बसे थे। पंतजी सफल वकील थे और राष्ट्रीय आन्दोलन में उनकी भूमिका प्रमुख रही थी। वे उत्तरप्रदेश के पहले मुख्यमंत्री बने और 1955 तक इसी पद पर बने रहे। इसके बाद वे दिल्ली आ गये।

सितंबर 1954 में कलाशनाथ काटजू के गृह मंत्री पद के लिए सर्वथा अयोग्य सिद्ध होने पर मैंने प्रधानमंत्री को सुझाव दिया कि वे केंद्र में आने के लिए पंतजी को राज़ी करें। प्रधानमंत्री ने मेरी तरफ आंखें तरेरकर देखा और कहा "मैं कई बार उनसे कह चुका हूं लेकिन वे न तो ना कहते हैं और न हां। मैं उनसे अब नहीं पूछूंगा। अगर तुम चाहो तो उनसे बातें कर लो।" फलस्वरूप अक्तूबर 1954 के शुरू में मैं लखनऊ गया। जाने से पहले मैंने प्रधानमंत्री से बात की जिन्होंने मुझसे कहा कि अगर पंतजी आने को तैयार हों तो वे वित्त, रक्षा या गृह में से कोई भी विभाग ले सकते हैं। लखनऊ से पंतजी मुझे नैनीताल ले गये, जहां हमने एकांत में बातें कीं। अंत में वे केंद्र में आने के लिए तैयार हो गये। उन्होंने कहा कि उन्हें वित्त मंत्रालय लेने में कतई दिलचस्पी नहीं क्योंकि राज्य के वित्तीय मामले केंद्र के वित्तीय मामलों से एकदम भिन्न होते हैं (वे उत्तर प्रदेश के वित्त मंत्री भी थे) और इस उम्र में वे ऊंचे दर्जे की वित्तीय जटिलताओं का अध्ययन करना नहीं चाहेंगे। रक्षा मंत्रालय के लिए भी उन्होंने कोई उत्साह नहीं दिखाया। उन्होंने कहा कि गृह मंत्रालय उनकी प्रकृति के अनुकूल रहेगा। उन्होंने मुझसे वादा ले लिया कि जब तक वे दिल्ली की भूल भुलैयां में अपने पांव जमा नहीं लेंगे तब तक मैं उनकी सहायता करता रहूंगा। इस तरह 10 जनवरी 1955 को पंतजी को गृह मंत्री पद की शपथ दिलायी गयी। काटजू रक्षा मंत्रालय में चले गये।

जब मैं नैनीताल से लौटा तो लालबहादुर मुझसे मिलने आये। वे यह जानने

के लिए उत्सुक थे कि जहाँ प्रधानमंत्री असफल हुए, वहाँ मैं सफल हुआ या नहीं ? जब मैंने उन्हें बताया कि पंतजी आ रहे हैं और उनसे प्रधानमंत्री को काफी सहयोग मिलेगा तो वे खास खुश दिखायी नहीं दिये। लालबहादुर ने कहा, 'आपको निराशा भी हाथ लग सकती है।"

पंतजी के दिल्ली-आगमन के बाद अक्सर उनसे मेरी मुलाकात होने लगी। वे हर दिन शाम को छः बजे प्रधानमंत्री निवास में मेरे अध्ययन-कक्ष में आ जाते थे और आधा घंटा मुझसे गप शप किया करते थे। वे शाम की सैर से लौटते हुए उधर निकल आते थे। ऐसा लगभग छः महीने तक चला। पंतजी की विशाल काया को आराम से कुर्सी पर बिठाने के लिए, मुझे अपने अध्ययन-कक्ष में चौड़ी कुर्सी का प्रबंध करना पड़ा। मैंने मंत्रिमंडल-सचिव से पहले ही कह रखा था कि वे पंतजी से बराबर मिलते रहा करें और उन्हें संक्षेप में सभी कुछ बता दिया करें।

एक दिन पंतजी ने मुझसे कहा कि उन्हें अपनी विशाल काया की वजह से व्यापारिक एयरलाइंसों के यानों में यात्रा करने करने में तकलीफ होती है। उत्तर प्रदेश में तो उन्हें एक फ्लाइंग क्लब का विमान मिल जाता था। रेलगाड़ी से यात्रा करना उन्हें कभी पसंद नहीं आया। उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या इस मामले में कुछ किया जा सकता है। मैंने प्रधानमंत्री से बात की और उन्हें सुझाव दिया कि मौलाना आज़ाद और पंतजी को उन लोगों की सूची में रखा जा सकता है जो सरकारी कार्यों के लिए भारतीय वायुसेना के अति विशिष्ट वायुयानों में यात्रा के हकदार हैं। प्रधानमंत्री सहमत हो गये और रक्षा मंत्रालय को उचित निर्देश जारी कर दिये गये। लेकिन मैं जानता था कि पंतजी का हर जगह देर में पहुँचना कहावत बन चुका है। इसलिए जब मैंने पंतजी को इस व्यवस्था के बारे में सूचित किया तो साथ ही यह भी बता दिया कि भारतीय वायुसेना वाले समय के बड़े पाबन्द हैं और उन्हें उनके निर्धारित समय का पाबंद होना पड़ेगा, वर्ना उनके हवाई अड्डे पर पहुँचने पर वे उन्हें नहीं मिलेंगे। पंतजी वैसे भी कोई ज्यादा सफर करने वाले आदमी नहीं थे। उन्होंने भारतीय वायुसेना के लिए समय का पाबंद होकर दिखा दिया।

एक दिन शाम को पंतजी बड़े खुश खिले हुए और शरारत के मूड में थे। उन्होंने मुझसे सभ्य व्यक्ति का सबसे महत्त्वपूर्ण गुण बताया। उन्होंने कहा, "अगर कोई आदमी अपनी बीवी को किसी और के साथ बिस्तर में लेटे पकड़ ले तो उसे बिना कोई आवाज़ किये चुपचाप कमरे से बाहर निकल जाना चाहिए। अगली बार फिर पकड़ा हो देंगे तो हँसकर प्यार से अपनी पत्नी को बताये कि वह उसे कितनी गहराई से प्यार करता है।" मैंने इस विषय पर बातचीत बन्द करने के लिए उनसे पूछा "कितने लोग ऐसा कर सकते हैं ?"

पंतजी के गृह-मंत्री बन जाने के बाद प्रधानमंत्री ने उस समय के सभी वित्त-दस्तावेज़ों में अपने पास आने से पहले बजट पंतजी को दिखाने के लिए कह दिया। भारत में प्रधानमंत्री की अनुपस्थिति में विदेश-मंत्रालय से संबंधित मामले मौलाना आज़ाद को दे जाते थे और आर्थिक तथा आंतरिक मामले पंतजी को। मौलाना आज़ाद मंत्रिमंडल की बैठकों की अध्यक्षता करते थे। लेकिन सभी अहम मसले इन द्वारा प्रधानमंत्री को भेजे जाते थे जहाँ पर वे विदेश में होते थे। मौलाना की मृत्यु के बाद सभी मामले पंतजी के पास भेजे जाने लगे।

1956 में राज्य-पुनर्गठन विधेयक के अधीन बम्बई नगर को महाराष्ट्र में अलग

कर दिये जाने के विरोध म सी डी देशमुख ने 24 जुलाई को मत्रिमडल से त्याग पत्र द दिया। उस दौरान उ होंने पतजी पर अशोभनीय हमला किया और उन पर भ्रष्टाचार के आरोप लगाये तथा यहाँ तक जनता के सामने कह दिया कि वे इसक प्रमाण अदालती कमीशन क सामने देने को तयार है। देशमुख ने पतजी पर लगाये भ्रष्टाचार क आरोपो का ब्यौरेवार चिट्ठा खोला। नेहरूजी परेशान और नाराज़ हो गय। उ होने सुप्रीमकोट के अवकाश प्राप्त मुख्य यायाधीश एस आर दास स इन आरोपो की जाच का अनुरोध किया। पतजी ने आपसी बातचीत म मुझे बताया कि देश के लिए इतना बलिदान करने के बावजूद अपने जीवन के अंतिम वर्षो म उ ह इस तरह अपमानित होना पडा इसका उन्ह बडा दु ख है और वह भी एसे आदमी के हाथो जो अँग्रेजो का पिट्ठू था और आज़ादी क बाद निरी नौकरशाही की गणक मशीन है।' उ होने यह भी कहा लेकिन नेहरूजी के प्रति आदर निष्ठा और स्नेह के कारण मैं यहाँ रुका हुआ हू वर्ना कभी का दिल्ली छोड गया होता। यायाधीश एस आर दास ने पतजी पर लगे आरोपो की जाच की और उ ह पूरी तरह दोषमुक्त घोषित कर दिया। इस काड म देशमुख ने अपनी मूखता का अच्छा परिचय दिया। देशमुख और पतजी, दोनो म ही बदले की तीखी भावना थी। पतजी का आकार, स्मरण शक्ति और प्रतिशोध भावना हाथी के आकार स्मरण शक्ति और प्रतिशोध भावना से मिलती जुलती थी।

पतजी गृह मत्री थे तभी धौलपुर के महाराजा बिना वारिस के मर गय। मैंने प्रधानमत्री स कहा कि इस मामले पर भी लप्स की नीति' लागू की जा सकती है जैसा अग्रेजो के जमाने म कई बार किया गया था। प्रधानमत्री ने पतजी को इस विषय म कई बार लिखा। महाराजा नाभा की पत्नी धौलपुर के दिवगत महाराजा की बेटी थी और उसन धौलपुर की राजगद्दी पर अपने छोटे अल्पवयस्क बेटे को बिठाये जाने का दावा पेश किया। महाराजा नाभा पतजी के जँवाई से उन दिनो इतनी बार मुलाकात कर रहा था, जो पतजी के लिए अच्छा नही था। अत म पतजी ने किसी तरह स नाभा के अल्पवयस्क बालक का दावा स्वीकार कर लिया।

इस विषय म प्रधानमत्री के पत्रो के कारण पतजी कुछ हिचकिचा रहे थे। उन्होंने इस विषय म मुझसे भी कई बार बात की और नाभा के बालक के पक्ष मे कुछ लबे चौडे और अविश्वसनीय तक पेश किय। फिर उ होंने सुझाया कि मैं यह सभी तक प्रधानमत्री को बता दू। मैंने उत्तर दिया कि ऐसे मामले म उनका प्रधानमत्री से स्वय बात करना उचित रहेगा। वे हिचकिचा रहे थे। मैं भी जलती म हाथ देने को तयार न था। मुझे दिलचस्पी न लेते देखकर उन्होंने कुछ हफ्त इतजार किया और फिर प्रधानमत्री से भेंट की। बाद म मुझे पता चला कि प्रधानमत्री बेमन से पतजी का सुझाव मान गय। इस सिलसिले म पतजी के जवाई की बदनामी हुई और स्वय पतजी के खिलाफ भी अफवाह उडी।

लालबहादुर की भविष्यवाणी के बावजूद पतजी अपनी मत्यु के समय तक प्रधानमत्री को बराबर सहयोग और शक्ति दत रह। उनकी मत्यु स शोक सतप्त होकर नेहरूजी ने उस दिन लदन म किसी औपचारिक समारोह म भाग नही लिया। उन दिनो वे लदन म होनेवाली कामनवैल्थ प्रधानमत्रियो की कान्फ्रेंस म गये थ हालाकि समय पर नही पहुँच पाये थे। कुमाऊँ के शेर—पतजी के प्रति नेहरूजी के मन म बहुत स्नेह श्रद्धा और सम्मान था।

सोवियत व्यापार प्रतिनिधि ने उसके सामने तकनीकी सहायता और आर्थिक सहयोग उपलब्ध कराने का प्रस्ताव रखा है। मूलराज कमनदास टी टी के साहब से भेंट कर चुका था, लेकिन उन्होंने उसे टाल दिया था। मैंने मूलराज से कहा कि भारत में निजी उद्योग को तकनीकी सहायता और आर्थिक सहयोग देने के ऐसे प्रस्ताव पर मुझे आश्चर्य हुआ है। उसने बताया कि वह आज ही सोवियत राजदूत मेंशिकोव से मिला है और उन्होंने मुझे आपसे मिलने को कहा है। मैंने उसी दिन टी टी के से बात की। उन्होंने कहा कि रूसियों को इस्पात बनाना नहीं आता। उन्होंने मुझे एक बूढ़ी अमरीकी औरत के बारे में बताया जिससे जब यह कहा गया कि रूसियों ने कार बना ली है तो उसने पूछा, 'क्या वह चलती भी है?'

मेंशिकोव ने मुझे फोन किया और लंच पर बुलाया। उस समय उनके साथ लंच पर मेरे अलावा कोई नहीं था। लंच के दौरान उन्होंने सोवियत व्यापार प्रतिनिधि के प्रस्ताव की पुष्टि की। मैंने कहा कि इस्पात का कारखाना सोवियत सहायता से सरकारी क्षेत्र में लगाया जा सकता है। मैंने उन्हें उत्पादन-मंत्रालय के सचिव से मिलाया जो इस्पात विभाग भी देख रहे थे। यहीं से भिलाई इस्पात कारखाने की शुरुआत हुई और इसी से सोवियत यूनियन के साथ बड़े स्तर पर औद्योगिक और व्यापारिक संबंधों का शुभारंभ हुआ और बाद में पूर्वी यूरोप के देशों से भी संबंध बढ़े। मेंशिकोव मुझसे भी संबंध बनाये रहे और जब तक वे भारत में रहे उनके साथ लंच पर कई बैठकें जमी।

यद्यपि इस्पात टी टी के का विषय नहीं था फिर भी अमरीकी सहयोग से निजी क्षेत्र में इस्पात का एक बड़ा कारखाना लगाने के बारे में उन्होंने बी एम बिड़ला से बात की। बी एम बिड़ला ने सभी आवश्यक व्यवस्था कर ली और टी टी के ने योजना-आयोग और मंत्रिमंडल में इस प्रस्ताव को निकलवाने का वादा किया। गुलजारीलाल नन्दा इसके सख्त खिलाफ थे और प्रधानमंत्री ने नन्दाजी का समर्थन किया। टी टी के यह जानकर उबल पड़े और प्रधानमंत्री के लंदन जाने वाले दिन शाम को उन्होंने उन्हें अपना त्यागपत्र पकड़ा दिया। उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि जब तक इस्पात विभाग उन्हें नहीं सौंप दिया जाता वे सरकार में नहीं रहेंगे। लेकिन त्यागपत्र औपचारिक रूप से कभी भी स्वीकृत नहीं किया गया। टी टी के खुदक में यह कहकर मद्रास चले गये कि अब बात प्रधानमंत्री के हाथ में है। टी टी के ने यह हरकत गलत समय की जो अनुचित थी।

लंदन से हमारी वापसी पर घर से दफ्तर जाते समय, मैंने प्रधानमंत्री से टी टी के को वापस बुलाने का जिक्र किया क्योंकि उनका इस्तीफा अभी स्वीकृत नहीं किया गया था। प्रधानमंत्री गुस्से में बुरी तरह भड़क उठे। कार तक हिलने लगी। उन्होंने कहा 'मैं उस असहनीय व्यक्ति को बुलाने से रहा, उसने तो बदतमीजी की हद कर दी।' मैं अपनी बात पर डटा रहा और मैंने धीमे से कहा, 'दक्षिण से बहुत-से मंत्री आये लेकिन आपने सबको गँवा दिया—राजाजी, गिरि, गोपालस्वामी आयंगर को। विंध्याचल से परे के दक्षिणी क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करने वाला बस एक आदमी के सी रेड्डी आपके पास रह गया है।' वे चुप रहे। उसी शाम दिल्ली के इंडियन एक्सप्रेस कार्यालय द्वारा मैंने मद्रास में रामनाथ गोयनका को टेलीप्रिंटर पर संदेश भिजवाया कि वे जाकर अपने मित्र टी टी के से मिलें और मेरी तरफ से बताये कि वे दिल्ली बिना किसी शर्त के आ जाये और

शर्तो से चिपक रहकर प्रधानमंत्री को परेशानी म न डालें। मैंने यह भी कहा, 'इस्पात अत म उन्ही के विभाग मे जा मिलेगा। इसम मुझे कोई विशेष दिक्कत नहीं दिखायी देती। मैंने प्रधानमंत्री के सामने टेलीप्रिंटर सदेश की एक प्रति रख दी। उस समय मैं आर्थिक विषयों से सबधित मत्रालयों के पुनगठन पर एक अभिपत्र तयार कर रहा था।

अन्त में उनकी समझ न उनका साथ दिया और टी टी के दिल्ली लौट आये तथा उन्होंने व्यापार और उद्योग मत्रालय म फिर से काम शुरू कर दिया।

सरकारी-तत्र का पुनगठन होने पर 15 जून 1955 को नया इस्पात मत्रालय अस्तित्व म आया और टी टी के को उनके विभाग के अलावा यह मत्रालय भी सम्हालने को कहा गया।

सी डी देशमुख द्वारा त्यागपत्र देने के तुरत बाद 1 सितम्बर 1956 को टी टी के वित्त-मत्रालय मे चले गये।

टी टी के बडे तुनुक मिजाज आदमी थे और बोलते भी बहुत कडवा थे। कम-से-कम दो मौकों पर मैंने उन्हें लोकसभा के दो सदस्यो के कहर से बचाया, जिन्हें उन्होंने गाली दी थी।

जब उन्होने वित्त-मत्रालय सम्हाला तो टी टी के मुख्य वित्त-सचिव के रूप म एच एम पटेल को ले आये। टी टी के ने मुझे बताया था कि वे पटेल को काफी जिम्मेदारी के काम सौंप देंगे और एक तरह से उन्हें राज्य-मत्री के रूप मे लेंगे। मैंने कहा "बहुत बढिया। लकिन पटेल अति उत्साही व्यक्ति हैं जो ज्यादा हाथ-पाँव फैला सकते हैं।' टी टी के ने की के नेहरू को भी भारत म सर्वाधिक बुद्धिमान सरकारी अधिकारी कहा था जो उस समय वित्त मत्रालय म थे। मैंने उनस पूछा कि भारत के सभी सरकारी अधिकारियो से मिले बिना व एसा कस कह सकते हैं। सुनकर वे खामोश हो गये। लकिन एक वष के भीतर ही उन्होंने की क नेहरू को 'सिरफिरे' का खिताब दे डाला। मैं समझ नहीं पाया कि सर्वाधिक बुद्धिमान व्यक्ति अचानक सिरफिरा कसे हो गया!

टी टी के अक्सर ससद भवन के मेरे दफ्तर म चले आत थे और मेरे साथ बजट को छोडकर और बाकी सभी विषयो पर कम-से-कम घटा भर जरूर बातें करते थे।

नेहरूजी क मन्त्रिमडल से टी टी क के त्यागपत्र से जुडी बाद की घटनाओ को छोड रहा हूँ।

टी टी क 1962 म लोकसभा के लिए निर्विरोध चुने गये थे। सभी का पता था कि स्वतत्र पार्टी के उस उम्मीदवार के साथ यह सभी कुछ पूव नियोजित था जो उनके विरोध म खडा हुआ था। जब नयी सरकार बनी तो टी टी के फिर मन्त्रिमडल म आ गय। 1964 म लालबहादुर के मन्त्रिमडल म भी व वित्त-मत्री बन। लकिन उन पर आरोप लगाने वालो की कमी नही थी। उन्होंने लालबहादुर स कहा कि अगर व लोकसभा म उनके निर्दोषी होने का वक्तव्य नहीं देंगे तो वे त्यागपत्र द देंगे। लालबहादुर ने कहा कि जब तक के डी मालवीय की तरह उनक मामल की जाँच गुप्त रूप से सुप्रीमकोर्ट का कोई जज नहीं कर लेता तब तक वे इस तरह का वक्तव्य नहीं दे सकत। इस पर टी टी के न त्यागपत्र द दिया और व कभी भी वापस न आने क लिए अपने घर मद्रास चले गय। बीच बीच म मुझ उनक पत्र मिलत रह। कृष्ण मनन से विपरीत टी टी के मे कृतज्ञता का भाव रहता था।

[illegible]

जिन लोगा ने टी टी के पर आरोप लगाय थे उ ह बाद म पता चला कि मरते समय टी टी के निधन य। बिल्कुल उसी तरह हुआ जसा पैरीक्लीज के बारे म एच जी वल्म न कहा था, 'जो कोइ भी सावजनिक जीवन म किसी खास आहदे पर होता है उसके विरुद्ध ईर्ष्यालु लोग धार्मिक असहिष्णुता और नतिक दोपा के हथियार प्रयोग म लात है।' इस विवादास्पद और हठी व्यक्ति क साथ अपने सबधो की सुखद स्मतियाँ मैंने अभी तक सँजोकर रखी हैं।

अपने अतिम दिना म टी टी के पत्रकारो समेत अनेक लोगो से ज़िक्र किया करते थे कि नेहरूजी उ ह ही अपना गद्दीनशीन मानते थ। यह तो सचाई से कोसो दूर की बात हुई।

42

कामराज

आबनूस की तरह श्याम सुंदर चेहरा और चींटी खाने वाले पशु की तरह चौड़े होंठ। कामराज का यह रंग-रूप देखकर मुझे अक्सर सबसे पहले पाँवों पर खड़े होने वाले मानव की याद आती थी जो प्राचीनतम आदि मानव का प्रायः प्रतिनिधि रूप माना जाता है और पाँच लाख वर्ष पहले एशिया, अफ्रीका और यूरोप में जिसका वास था। कोई भी मानव विज्ञानी कामराज को पहली बार देखकर मानव के मूल जन्मस्थान के बारे में गलत धारणा बना सकता था और इस निष्कर्ष पर पहुँच सकता था कि सबसे पहला मानव अफ्रीका में नहीं भारत में पैदा हुआ था। एक अमरीकी ने एक बार कहा था कि कामराज की माँ स्याही की दावात रही होगी। कम्बख्त को मजाक करते हुए भी चुटकी लेने की आदत थी।

कामराज नाडार-समाज के सदस्य थे और केरल के एझवाओं की तरह ताड़ का रस निकाला करते थे। कामराज स्वर्गीय एस. सत्यमूर्ति की छत्रछाया में पले और उनके प्रति अंत तक वफादार रहे। उन्होंने कांग्रेस कार्यकर्ता के रूप में राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लिया। कामराज कोई अधिक पढ़े लिखे नहीं थे। वे केवल तमिल बोल सकते थे। पूरी जिंदगी इस कमी ने उन्हें आगे बढ़ने से रोका। उन्होंने अंग्रेजी का इतना ज्ञान जरूर हासिल कर लिया था कि उस भाषा में होने वाली बातचीत को समझ लें। लेकिन उन्होंने हिन्दी सीखने से इनकार कर दिया। सत्यमूर्ति के प्रति निष्ठावान रहने पर भी वे मन-ही-मन ब्राह्मण विरोधी रहे। ब्राह्मणवाद और हिन्दी भाषा के विरोध में वे तमिलनाडु में द्रविड़ मुनेत्र कड़गम के किसी भी नेता से पीछे नहीं थे। लेकिन उनका ब्राह्मणवाद का विरोध केवल तमिलनाडु तक ही सीमित था।

कठिन परिश्रम, सत्ता प्राप्ति के लिए अडिग निष्ठा और सत्यमूर्ति की

सहायता से कामराज शीघ्र ही कांग्रेस के प्रमुख नेताओं में आ गये और तमिलनाडु कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष बन गये। वे राजाजी के कट्टर विरोधी थे और इस मामले में वे गांधीजी के आदेशों की अवहेलना करने में भी न हिचके। काफी लंबे समय तक कामराज तमिलनाडु की सत्ता के घेरे से अलग रहे। उन्हें पीछे से कठपुतलियों को नचाने वाली रस्सियाँ खींचना ज्यादा अच्छा लगता था।

कामराज कुंवारे रहे और उन्होंने बड़ी सादी जिन्दगी बितायी। सरकार में कार्यभार संभालने या कांग्रेस के शक्तिशाली अध्यक्ष बनने और नेहरूजी के समय में सर्वोच्च प्रमुखता पाने के बावजूद उनका रहन का तरीका कभी नहीं बदला। लेकिन एक तमिल ईसाई उनके उपकारक रहे थे जिसका केरल में लंबा चौड़ा व्यापार था। इसी व्यक्ति से कामराज अपने अपनी माँ और अपनी आश्रिता बहन के लिए बड़ी समझदारी के साथ आर्थिक सहायता लेते रहे थे। अंत में कामराज ने अपने उपकारक को संसद के लिए चुने जाने में सहायता की और इस तरह उपकार का बदला चुकाया। मैं उस व्यक्ति को खूब अच्छी तरह जानता था।

पाँचवें दशक में कामराज पर दबाव डालकर उन्हें तमिलनाडु का मुख्यमंत्री बना लिया गया। वे कांग्रेस कार्यकारिणी के पहले से ही सदस्य थे। मुख्यमंत्रित्व के अपने कार्य काल में जब भी वे दिल्ली में कांग्रेस कार्यकारिणी कमेटी की बैठकों में शामिल होने के लिए आये उन्होंने कभी सरकार से यात्रा-व्यय और दूसरे भत्ते नहीं लिये। यह अलग बात थी कि दिल्ली में होते हुए भी वे तमिलनाडु सरकार का काफी काम निपटाया करते थे। शायद वही ऐसे मुख्यमंत्री थे जो इस मामले में इतनी सतर्कता बरतते थे।

भारत पर चीनी हमले के तुरंत बाद कामराज ने प्रधानमंत्री से कहा कि वे मुख्यमंत्री पद छोड़कर अपना सारा समय कांग्रेस के संगठन कार्य में लगाना चाहते हैं। उन्हें पता था कि तमिलनाडु में द्रविड़ मुनेत्र कषगम अपनी जड़ें काफी मजबूत कर रही है। उस समय नेहरूजी अस्वस्थ रहा करते थे। इंदिरा और सी सुब्रह्मण्यम ने सूत्र वहीं से पकड़ा जहाँ से कामराज ने छोड़ा था और उन्होंने कामराज योजना तैयार कर डाली। नेहरूजी ने कोई प्रतिरोध नहीं किया और उसे स्वीकार कर लिया। कामराज और राजनैतिक दृष्टि से कुछ महत्त्वपूर्ण और कुछ अमहत्त्वपूर्ण व्यक्तियों ने सरकार से त्यागपत्र दे दिया। 'लालबहादुर' शीर्षक अध्याय में मैंने उन सभी परिस्थितियों पर प्रकाश डाला है जिनमें मोरारजी देसाई और लालबहादुर को भी सरकार से निकलना पड़ा। भोले भडारिया को छोड़कर और सभी को पता था कि कुछ असुविधाजनक व्यक्तियों को सरकार से निकालने के लिए कामराज-योजना का षडयंत्र रचा गया था।

नेहरूजी ने शीघ्र ही कामराज को अध्यक्ष चुनवा लिया और जब तक नेहरूजी जीवित रहे कामराज ने इस पद पर बने रहकर भी एक साधारण कांग्रेस स्वयंसेवक की हैसियत से ही काम किया। कामराज के मन में हमेशा नेहरूजी के प्रति श्रद्धाजनित विस्मय बना रहा।

नेहरूजी की मृत्यु के बाद कामराज जोड़तोड़ करने और सत्ता दिलाने वाले व्यक्ति के रूप में उभरकर सामने आये। लालबहादुर शीर्षक अध्याय में मैंने उन स्थितियों का उल्लेख किया है जिनमें लालबहादुर प्रधानमंत्री बने और कामराज का इसमें क्या योगदान रहा।

लालबहादुर की मृत्यु के बाद कामराज और दिग्गजों ने लोकसभा में कांग्रेस

दल के नेता के मामले में मोरारजी के बजाय इन्दिरा का समर्थन किया। इसका कारण कामराज ने यही बताया कि 'वह चुम्बक की तरह वोटों को खींचेगी।' लेकिन सचाई यह थी कि दिग्गज महानुभाव किसी शक्तिशाली व्यक्ति को प्रधानमंत्री नहीं बनाना चाहते थे। इन्दिरा के चुनाव पर, मिस्र के एक सवाल के सामने राधाकृष्णन ने यह टिप्पणी की थी "हम समाचारपत्रों में रोज़ाना सुबह एक सुन्दर चेहरा देखते हैं।" इन्दिरा की बौद्धिक क्षमता और सामान्य दक्षता के बारे में राधाकृष्णन का कोई अच्छा मत नहीं था। यह बात उन्होंने मुझसे कही भी थी। उन्होंने मुझे बताया था कि नेहरूजी के जीवनकाल में इन्दिरा को युवकों के प्रतिनिधि के रूप में भेजने की उन्होंने सिफारिश की थी और बाद में उसके व्यवस्था-संगठन में उसका चुनाव कराया था। इन्हीं दो बातों का उन्हें जीवन भर अफ़सोस रहा। उन्होंने कहा कि इन्दिरा परीक्षा में बुरी तरह असफल रही।

इन्दिरा के कार्यकाल में जब भारतीय रुपये का बहुत अधिक अवमूल्यन किया गया तो समाचार पत्रों वगैरह ने अवमूल्यन का गुणगान बड़े ज़ोर शोर से किया और कहा कि इससे देश में क़ीमतों पर कोई असर नहीं पड़ेगा। इस अवमूल्यन पर कामराज बहुत विचलित थे। अगले दिन सुबह ही कामराज ने देखा कि बैंगन के दाम बढ़ गये थे। जो भी उन दिनों उनसे मिला उसने उन्हें बड़ा जला भुना पाया और बढ़ती हुई महँगाई के बारे में बात करते हुए वे बैंगन के दामों का हवाला ज़रूर देते थे। उन्हीं दिनों कामराज से मेरी भेंट अपने एक मित्र के घर में हो गयी। उन्होंने इन्दिरा के विरुद्ध बड़ी लम्बी बातें कहीं। उन्होंने बताया कि इन्दिरा ने उनके बारे में एक व्यक्ति से कटु शब्द कहे हैं। उस व्यक्ति की विश्वसनीयता पर उन्हें ज़रा भी शक नहीं था। इन्दिरा ने कहा था "कामराज से कौन बात करना चाहता है? वह तो बहुत ही बोर आदमी है।" मैंने उनसे कहा कि वह इस किस्म की स्त्री है जो जिस थाली में खाती है उसी में छेद करने लगती है। फिर वे अवमूल्यन के दुष्प्रभावों तथा बढ़ती महँगाई के बारे में बैंगन का हवाला देने पर उतर आये और उन्होंने तमिल में कहा "चिन्ता पनिक्क मूल इल्ल।" इसका अर्थ है कि उस छोकरी में ज़रा अक्ल नहीं। मैंने उनसे कहा "इसका पता आपको बहुत समय गुज़रने के बाद लगा है। उसे आर्थिक समस्याओं की ज़रा समझ नहीं। गणित में वह हमेशा कमज़ोर रही है। मेरे खयाल से वह अभी भी दो दूना तीन ही कहेगी। उसे एकड़ और हेक्टेयर में अंतर तक नहीं मालूम। आप उसे दोष क्या देते हैं? दोष तो आपका है।" कामराज चुप्पी लगा गये।

और तब आये 1967 के आम चुनाव। कामराज का यह भ्रम कि इन्दिरा वोटों को चुम्बक की तरह खींचेगी मृगतृष्णा ही निकला। कांग्रेस ने कई राज्यों में मात खायी और लोकसभा में भी कांग्रेस की स्थिति नाज़ुक हो गयी। कामराज योजना का खोखलापन सामने आ गया और वह बुरी तरह असफल हो गयी। तमिलनाडु से कांग्रेस का सफ़ाया हो गया। एक अज्ञात विद्यार्थी ने असेंबली के चुनावों में कामराज को चित्त कर दिया। कभी का शक्तिशाली कांग्रेस अध्यक्ष लँगड़ाता हुआ दिल्ली आ विराजा। यहाँ भी घटना चक्र उनके काबू से बाहर था। इस तरह उनकी हार दुतरफ़ा रही। वे इन्दिरा को प्रधानमंत्री पद पर बनाये रखने के पक्ष में नहीं थे। लेकिन लड़खड़ाती पार्टी के हित में वे नेतृत्व की लड़ाई भी नहीं होने देना चाहते थे। अंत में कामराज ने मोरारजी को मनाकर

सचिव बन गये। उन्हें प्रधानमंत्री-निवास में रहने को कह दिया गया। वे मेरे कमरे के सामने वाले कमरे में ठहरे थे। उन दिनों वे बहुत देर रात तक काम करते रहते थे और बक्त बेवक्त खाना खाते थे। इसलिए मेरी उनसे सहानुभूति होना स्वाभाविक था। उन दिनों वे धाकड़ मृदुला साराभाई से भयभीत थे और उन्होंने उनसे निबटने के लिए मेरी सहायता माँगी थी। मैंने उनसे कहा कि जब कभी भी मृदुला उन्हें तंग करे, वे मुझे सूचना दे दें और मैंने उन्हें आश्वासन दिया कि मैं उन्हें सीधा प्रधानमंत्री से मिला दूंगा। मैंने उन्हें सलाह दी कि वे मृदुला की तरफ कम-से-कम ध्यान दें।

लालबहादुर प्रधानमंत्री से जिस तरह से व्यवहार कर रहे थे वह मुझे पसंद नहीं था। वे इसी फ़िराक में रहते थे कि प्रधानमंत्री किस बात से खुश होते हैं और उसी के अनुसार वह काम करते थे। एक बार मैंने उनसे कहा भी कि वे अपना काम करने का ढंग बदल दें। साथ ही यह भी कह डाला, "आप प्रधानमंत्री के सामने बेबाक तथ्य रखें और आप पायेंगे कि निन्यानवे प्रतिशत मामलों में उनका निर्णय सही निकलेगा।" उन्होंने उत्तर दिया, "मथाई साहब, मैं जानता हूँ कि आपको पंडितजी से कुछ लेना नहीं है। आप उन्हें डाँट भी सकते हैं। लेकिन मैं तो एक मामूली-सा राजनीतिक कार्यकर्ता हूँ और मैं आपका ढंग नहीं अपना सकता।" इस तरह वे बड़े नपे-तुले व्यक्ति रहे।

नेहरूजी और श्रीप्रकाश 1951-52 के चुनावों में इलाहाबाद के आसपास के चुनाव-क्षेत्र से खड़े हुए—नेहरूजी फूलपुर से और श्रीप्रकाश इलाहाबाद नगर से। शास्त्रीजी को दोनों चुनाव-क्षेत्रों का प्रचार-अभियान सौंपा गया। चुनाव के बाद लालबहादुरजी रेल-मंत्री के पद पर मंत्रिमंडल में शामिल हो गये और 1952 में तुरंत ही राज्यसभा में चुन लिये गये।

एक रेल-दुर्घटना के बाद लालबहादुरजी ने मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दे दिया। उस समय आम चुनाव पास ही थे और उनका त्यागपत्र देना भविष्य के लिए राजनीतिक धारणा से खाली नहीं था। इससे साधारण मतदाताओं की आँखों में उनका रुतबा बहुत बढ़ गया।

1956 के चुनावों में लालबहादुरजी लोकसभा के लिए चुन लिये गये और फिर से मंत्रिमंडल में शामिल हो गये। इस बार वे व्यापार और उद्योग-मंत्री बने। रेलवे और इन नये मंत्रिमंडल में उनका काम औसत दर्जे से नीचे का रहा। वे दुलमुल आदमी थे और उनका दिमाग विचार-शून्य था। जहाँ तक कांग्रेस के संगठन-कार्यों का संबंध है वे दूसरे दर्जे की राजनीति के लिए प्रथम श्रेणी के व्यक्ति थे। जब कभी मैं उन दिनों के लालबहादुरजी की बातें याद करता हूँ तो मुझे एक प्रसिद्ध चीनी कवि की कहानी याद हो आती है। ईश्वर की दया से वह कवि जीवन की सभी वस्तुओं के उपभोग का प्रेमी था। एक दिन शाम को वह शराब के नशे में मस्त था। वह एक छोटी-सी नाव में सवार हुआ और उस चमकती चाँदनी में मानो नदी के बीच में सैर करने गया। वहाँ उसने पूरे चाँद का प्रतिबिंब पानी में देखा। सभी कवियों और उनसे मिलते-जुलते औरों की तरह वह उस समय कल्पना में सराबोर था। उस कल्पना को [illegible] भावा को [illegible] पार कर वह [illegible] विश्राम-[illegible] में [illegible]
सत्य कि चाँद का प्रतिबिंब उसी [illegible] का [illegible] वह [illegible]
है। उसने [illegible] रख दिया और [illegible]
[illegible]

नर्मी में डूब गया। मृत्यु से पहले वह खुशमिजाज आदमी एक उक्ति छोड़ गया जो शाश्वत सत्य बन गयी—'मैं चतुर और अति बुद्धिमान था, और जीवन के सामान्य अर्थों में मैंने अपनी जिंदगी खराब की या लेकिन मेरी एक आकांक्षा यही है कि मेरा इकलौता बेटा और उत्तराधिकारी बड़ा होकर औसत दर्जे का आदमी बने ताकि वह राजदूत या मंत्रिमंडल का मंत्री तो बन जाये। यह उक्ति हमारे मंत्रियों पर कितनी खरी उतरती है जो 'जीवन मंच पर अपना समय इधर-उधर के दफ्तर में गँवाते फिरते हैं' और हर उस विषय पर भाषण देकर लोगों का जीना हराम करते हैं जिसके बारे में उन्हें रत्ती भर पता नहीं होता।

विवादास्पद कामराज योजना पर अमल के फलस्वरूप नेहरूजी लालबहादुर को मंत्रिमंडल में से नहीं जाने देना चाहते थे। यह तथ्य लालबहादुरजी ने स्वयं मुझे बताया था। लेकिन एक समझदार आदमी ने नेहरूजी से कहा था कि या तो लालबहादुर और मोरारजी देसाई दोनों मंत्रिमंडल से बाहर किये जायें या फिर दोनों को ही रोक रखा जाय। नेहरूजी उस समय अस्वस्थ चल रहे थे और जिस व्यक्ति ने उनसे यह बात कही थी उसका नाम मैं यहाँ नहीं खोलना चाहता। उसी व्यक्ति ने यह भी कहा था कि अगर अकेले मोरारजी देसाई को निकाला गया तो लोगों पर साफ जाहिर हो जायगा कि यह अभिद्योतित योजना मोरारजी को बाहर करने के लिए तैयार की गयी थी और फलस्वरूप मोरारजी को जनता की सहानुभूति और समर्थन मिल जायगा। इस तरह लालबहादुरजी को मंत्रिमंडल से निकालना पड़ा। लेकिन जब भुवनेश्वर में नेहरूजी को दिल का दौरा पड़ा तो उन्होंने लालबहादुरजी को वापस मंत्रिमंडल में बिना विभाग के मंत्री के रूप में बुला लिया ताकि वे प्रधानमंत्री की सहायता कर सकें। विदेश मंत्रालय में शास्त्रीजी को एक कमरा मिला हुआ था और नेहरूजी की मृत्यु के समय तक उन्हें वहाँ सर्वाधिक निराशाजनक स्थितियों में रहना पड़ा। सभी महत्वपूर्ण मामलों को मंत्रिमंडल के सचिव और विदेश मंत्रालय के सभी वरिष्ठ सचिव नेहरूजी के पास ले जाते थे जहाँ इंदिरा उनके साथ लगी होती थी। शास्त्रीजी के पास केवल कुछ रिपोर्टें और दूसरी पठनीय सामग्री पहुँचा दी जाती थी। विदेश मंत्रालय के उप सचिव उनके पास यह सभी चीजें भेजते थे। उन दिनों शास्त्रीजी इंदिरा के विरुद्ध मुझसे बड़ी कड़वी-कड़वी शिकायतें किया करते थे। जरा दुख के साथ उन्होंने यह भी कहा, 'आपके न होने से मुझे बहुत नुकसान हुआ है। अगर आप इस समय नेहरूजी के साथ होते तो बातें ही दूसरी होतीं। नेहरूजी का स्वास्थ्य बहुत अधिक खराब चल रहा था लेकिन इसके बावजूद वे प्रधानमंत्री के अधिकार किसी और को सौंपना नहीं चाहते थे। उन्हें मंत्रिमंडल के सचिव और विदेश मंत्रालय के वरिष्ठ सचिवों से कह देना चाहिए था कि सभी मामले लालबहादुरजी को दिये जायें और उनके पास तो ऐसे ही मामले भेजे जायें जिन्हें वे या लालबहादुर अंतिम निर्णय के लिए प्रधानमंत्री के पास भेजना उचित समझें। लेकिन उन्होंने ऐसा कुछ भी नहीं किया क्योंकि जीवन भर उनका दूसरी श्रेणी के व्यक्ति का-सा यह विश्वास बना रहा कि अच्छी तरह से कोई भी काम करने के लिए उसे अपने आप करो।' प्रस्तुत उक्ति एक चीनी कहावत की है।

27 मई 1964 को नेहरूजी की मृत्यु के बाद तक कांग्रेस के दिग्गजों विशेष कर कामराज, अतुल्य घोष, सी बी गुप्ता और एस के पाटिल तथा आसपास मँडराते संजीव रेड्डी ने नेहरूजी के बाद लालबहादुरजी को प्रधानमंत्री बनाने का निर्णय ले लिया था। वे मोरारजी जैसे सबल व्यक्ति को प्रधानमंत्री नहीं बनाना

चाहते थे। लकवा पड जाने के बाद नेहरूजी ने लालबहादुर को वापस मन्त्रिमडल म बुलाकर अपनी पसद का सकेत दे दिया था। इन्दिरा इस दाँव म थी कि काय कारी प्रधानमत्री गुलजारीलाल नन्दा को ही प्रधानमत्री बना दिया जाय। लेकिन जिसकी भी कुछ चलती थी उसका ध्यान उनकी तरफ नहीं गया और उस समय इन्दिरा की कोई हैसियत भी नहीं थी।

इस तरह नहें लालबहादुर प्रधानमत्री बन गय। उन दिना यह लतीफा बहुता की जुबान पर था कि भारत किसी पुरुष का प्रधानमत्री पद पर देखना चाहता था न कि किसी चूहे को। लालबहादुरजी के प्रधानमत्री बनन के दस दिन बाद एन आर पिल्ल मुझे सिनमा दिखाने ले गये। उस दिन समाचार-दशन म दिखाया गया कि लालबहादुर अनामतास मिकोयान स भेंट कर रहे हैं जो उस समय रूस के उप प्रधानमत्री थे। लालबहादुर की छोटी कद-काठी जवाहर जकेट के बटन खुले हुए दोनों हाथ नमस्कार की मुद्रा म देखते ही दशका म ठहाका उठा। खेद है कि नेहरूजी के एकदम बाद अगला प्रधानमत्री बनने स उन्ह सबस बडा नुकसान रहा क्यांकि नेहरूजी के जमाने की तुलना म स्तर एकदम इतना नीचे आ गया कि उस किसी तरह स ऊपर नही उठाया जा सकता था। ग्रेट ब्रिटेन म पिट के बाद जब लाड एडिगटन प्रधानमत्री बने तो कसलरेयाग पार्लिमट म दहाडे 'पिट के बाद एडिंगटन जस लदन के बाद पैडिंगटन।' लाड एडिंगटन ज्यादा दिन प्रधानमत्री नही रहे।

शास्त्रीजी के प्रधानमत्री पद पर बने रहने के दौरान दो बडी घटनाए घटी। पहली थी कच्छ की घटना। इस घटना म हमारे हाथा म से कुछ प्रदेश चला गया। दूसरी थी थोडे अरस का भारत पाक युद्ध। अतर्राष्ट्रीय दबाव म आकर भारत युद्ध विराम क लिए तब राजी हो गया जब उसकी स्थिति दुश्मन से मजबूत थी। सोवियत यूनियन ने भी दबाव डालने म सक्रिय योग दिया था।

युद्ध के दिनो म कुछ समाचारपत्र वालो ने लालबहादुर का फौलादी दर्प पुरुष की सना दे डाली थी जिसे पढकर मुझे बहुत हँसी आयी। मैं उन्हें बरसा से जानता था और मुझ पता था कि व फौलाद से नहा रेतीली मिट्टी के बने हैं। उन्ह ता इतना तक नही पता था कि पश्चिमी मोर्चे पर हमारी सेनाए कहाँ कहाँ तनात हैं। सौभाग्य से उस समय हमारे थलसनाध्यक्ष जनरल जे एन चौधरी और वायुसेनाध्यक्ष एयरचीफ माशल अजनसिंह उच्च श्रेणी क लोग थ। उस छोट अरसे की लडाई म लालबहादुर और उनका परिवार कभी अपने निवास म नहीं सोये। राष्ट्रपति राधाकृष्णन ने मुझे बताया था कि व तो एक बडे-से गडढे म सोते थे। यह गडढा एक लबा चौडा जमीदाज कमरा था जो द्वितीय महायुद्ध क दौरान लाड लिनलिथगो के जमाने म दूर सब्जियो क बाग म जमीन म बहुत गहरे बनाया गया था। राष्ट्रपति भवन के एक तहखाने स वहा तक एक सुरग जाती थी। लेकिन राधाकृष्णन राष्टपति भवन म होत हुए भी जमीदोज नही हुए। उन्हाने मुझसे कहा था कि उन्ह अपने देश की जनता के साथ ताजा हवा म मर जाना ज्यादा पसद था।

ताशकद कान्फ्रेंस म सोवियत प्रधानमत्री अलक्सी कोसीजिन के दबाव डालत ही लालबहादुरजी झुक गये और जो भी कोसीगिन ने कहा वह उन्होने मान लिया। ताशकद स लालबहादुर ने अपने स्टाफ को फोन करक मालूम किया कि भारत म इस समझौते की क्या प्रतिक्रिया हुई है। आम स्थितियो मे व दिल्ली लौट आते और यहाँ उनका जरा गरमागरम स्वागत हो जाता। लेकिन फखरुद्दीन

की तरह उन्हें भी मालूम था कि मरने का कौन-सा समय उचित है। फिर मृत्यु तो अन्त-म विकारों को शांत कर देता है।

ताशकन्द में लालबहादुर की मृत्यु से दो दिन पहले मुझे एक बड़ा ही अस्वाभाविक सपना आया। मैंने देखा कि लालबहादुर का शव पालम हवाई अड्डे पर यान में से निकाला जा रहा है। अगले दिन सुबह ही मैंने अपने मित्र पी० ए० पणिक्कर को फ़ोन किया, जिन्होंने मुझसे कहा, 'तुम्हारी कुंडली बताती है कि तुम्हारा सपना सच होगा।' मैंने कहा "भाड़ में झोंको मेरी कुंडली को। काश! इस समय मेरे साथ कार्ल युंग होते!"

44

दो बहुत पुराने मंत्री

बाबू जगजीवनराम और स्वर्णसिंह दोनों ही अपनी-अपनी जाति विशेष से संबंधित होने के कारण ही मंत्री बने और बहुत लंबे समय तक इसी वजह से अपने पद पर बरकरार रहे।

जगजीवनराम

1946 में बनी अंतरिम सरकार में नेहरूजी अनुसूचित जाति के सदस्य के रूप में, मद्रास के मुनिस्वामी पिल्लै को लेना चाहते थे। मद्रास राज्य छुआछूत की *जंगली कुरीति के लिए कुख्यात था। लेकिन राजेंद्रप्रसाद ने जगजीवनराम का* नाम प्रस्तावित करने में पहल की, जिनका ज़िक्र वे वल्लभभाई पटेल और गांधीजी से पहले ही कर चुके थे। फिर तीनों ने मिलकर नेहरूजी से आग्रह *किया और* नेहरूजी राज़ी हो गये। इस तरह जगजीवनराम सरकार के भीतर घुसे। फिर 1952 में नेहरूजी जगजीवनराम को मंत्रिमंडल में शामिल नहीं करना चाहते थे। वे उन्हें गवर्नर बनाकर भेजना चाहते थे। लेकिन राजेंद्रप्रसाद उस समय राष्ट्रपति थे और उन्होंने प्रधानमंत्री पर दबाव डाला कि वे उन्हें मंत्रिमंडल में रखें। बाबू जगजीवनराम में काईयांपन और समझ दोनों हैं और वे कुछ विशेष प्रकार के कार्यों में विशेष रूप से दक्ष हैं। फिर भाग्य तो उनके साथ है ही।

गृह-मंत्रालय में बाबू जगजीवनराम से संबंधित एक फाइल समय के साथ-साथ मोटी होती गयी। इसका बाद में उनकी स्थिति पर कुछ प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। *इस फाइल को मेरे अतिरिक्त एक और जीवित व्यक्ति ने देखा है और वे हैं मोरारजी देसाई।*

अब लगता है कि बाबू जगजीवनराम ने अपने को अपराजेय *बना लिया है।* लेकिन मंत्रिमंडल की जानकारी के बिना आपातस्थिति घोषित किए जाने पर

सरकार से इस्तीफा देकर वे कुछ तो साहस दिखा सकते थे।

स्वर्णसिंह

हिन्दी और पंजाबी में शब्द को भ्रष्ट न किया जाता तो उनका नाम होता—स्वर्णसिंहम, अर्थात सोने का शेर। बलदेवसिंह की राजनीतिक ईमानदारी पर से नेहरूजी का विश्वास उठते ही, 1952 में स्वर्णसिंह को पंजाब सरकार में से बाहर निकालकर उन्हें केंद्र में मंत्रिमंडल स्तर का मंत्री बना दिया गया। अपने लंबे कार्यकाल में स्वर्णसिंह ने जितने विभाग संभाले हैं, उतने किसी और मंत्री ने नहीं संभाले। औसत योग्यता के सज्जन पुरुष होने के साथ-साथ उन्हें जिला अदालत के वकील का अनुभव भी प्राप्त था। लेकिन अपने कार्यों को पूरा करने में उन्होंने सूझ-बूझ और साहस की कमी का प्रदर्शन किया है। जब वे निर्माण, खान और शक्ति मंत्रालय में थे तो उनकी एक हरकत देखकर मुझे एक कहावत याद आ गयी थी "ईश्वर ने दो किस्म के लोग पैदा किये हैं—भले लोग, और गुनाह बख्शवाने वाले किस्म के लोग।" मेरे सुझाव पर प्रधानमंत्री और गृह-मंत्री पंतजी ने यूनियन पब्लिक सर्विस कमीशन के अध्यक्ष को इस बात के लिए राजी किया कि वर्मा शेल के वरिष्ठ अधिकारी के० के० साहनी को सरकार में ले लिया जाये। यहीं से सरकार की तेल-नीति शुरू हुई। शुरू में साहनी को योजना आयोग में नियुक्त किया गया, क्योंकि साहनी निर्माण खान और शक्ति मंत्रालय में पेट्रोलियम अफसर के छोटे पद पर नहीं आना चाहते थे। स्वर्णसिंह से कहा गया कि वे तेल-पेट्रोल से संबंधित सभी अहम मामलों में साहनी की सलाह ले लिया करें। जब स्वेज-संकट सामने आया तो विदेशी तेल कंपनियों ने खाड़ी-क्षेत्र से आने वाले कच्चे तेल पर समुद्री भाड़ा बढ़ाने की माँग उठायी। साहनी से सलाह लिये बिना स्वर्णसिंह चुपचाप राजी हो गये। पाकिस्तान और श्रीलंका तक ने यह मूर्खता नहीं की। इस मामले में भारत को कई करोड़ रुपयों का घाटा उठाना पड़ा। स्वर्णसिंह को इसके लिए दोषी ठहराया गया। जब टी० टी० के० ने वित्त-मंत्रालय संभाला तो स्वर्णसिंह इस्पात, खान और तेल मंत्रालय में आ गये जो नया-नया बना था और इसमें उनके सहयोगी बने राज्य-मंत्री के० डी० मालवीय। साहनी को तेल विभाग का अध्यक्ष बना दिया गया। उनका पद संयुक्त सचिव और अतिरिक्त सचिव के बीच का था। साहनी ने कुछ कदम ऐसे उठाये, जिनसे सरकार को करोड़ों रुपयों का लाभ हुआ, और वह भी ज्यादातर विदेशी मुद्रा में। विदेशी तेल कंपनियों द्वारा बड़े स्तर पर किये जाने वाले शोषण पर भी काफी सीमा तक रोक लगा दी गया। मैंने सुना है कि साहनी इस विषय पर पुस्तक लिख रहे हैं, जो शीघ्र ही प्रकाशित होगी। अंत में साहनी की के० डी० मालवीय से नहीं बनी और उन्होंने सरकार छोड़ दी।

अगर सरकार किसी ऐसे नाजुक मसले पर किसी विदेशी सरकार से लंबे अरसे तक समझौते की बातचीत चलाना चाहती हो, जिसका न तो हल आसान हो और न ही सरकार उसे हल करना चाहती हो तो इस काम के लिए सबसे उचित व्यक्ति स्वर्णसिंह रहेंगे। उनमें असीमित धीरज और बेछोर बातचीत के लिए बढ़ाते चलने वाली क्षमता है। इसी कारण वे कश्मीर-समस्या पर पाकिस्तान से हुई बातचीत में असाधारण रूप से सफल रहे। नेहरूजी के बाद के दौर में जब वे विदेश मंत्री बने तो अंतर्राष्ट्रीय मामलों में भारत की 'ढुलमुल' स्थिति के परिप्रेक्ष्य में उनका फीका व्यक्तित्व एकदम सही मेल खा गया। लेकिन

जनता से सीधा सम्पर्क कायम करना हमेशा बहुत जरूरी होता है। अजमेर के महत्व के कारण असुविधा होते हुए भी मुझे अब वहां दौरे पर जाना पड़ा। परिवार में किसी की मृत्यु हो जाने के कारण उस समय मैं वहाँ नहीं जा सका था। मेरे अजमेर न जाने के बारे में तरह तरह की अटकलें लगायी गयी है और तरह-तरह के संदेह और अफवाहें फैलायी गयी हैं। आयंगर के जनता के बीच में जाने से शक और अफवाहें काफी हद तक कम हुई हैं और जनता ने महसूस किया है कि सरकार हमारी भलाई और शांति के बारे में बहुत दिलचस्पी ले रही है। मेरे बाद के दौरे ने तो और भी अच्छा असर पैदा किया है। इससे चीफ कमिश्नर की स्थिति पर कोई बुरा असर नहीं पड़ा है। मैंने तो जनता के सामने उसकी योग्यता और पक्षपातहीनता की तारीफ की है। इन सभी बातों के बावजूद प्रश्न ज्यों का त्यों रहता है कि क्या प्रधानमंत्री को इस प्रकार का कदम उठाने का *अधिकार नहीं और इस बात का फैसला कौन करेगा? अगर प्रधानमंत्री इस तरह* का कोई भी कदम नहीं उठा सकता और स्वयं इस बात का निर्णायक नहीं हो सकता कि इस तरह के मामलों में क्या उचित और क्या अनुचित है तो वह न तो सही तरह से काम कर सकता है और न ही अपने कर्तव्यों का निर्वाह कर सकता है। दरअसल जिस तरह एक प्रधानमंत्री को कार्य करना चाहिए वह उस सूरत में जरा भी वैसा कार्य नहीं कर सकता। उसके प्रधानमंत्री होने का मतलब ही यही है कि वह औचित्य को परखने और निर्धारित नीति पर अमल करने में सक्षम है। अगर वह इतना सक्षम नहीं है तो वह प्रधानमंत्री बनने के योग्य नहीं है। दरअसल इसका मतलब तो अपने कार्यों का परित्याग हुआ और भविष्य में वह प्रभावकारी ढंग से कार्य नहीं कर सकता। इससे सरकारी कार्यों में कोई उचित तालमेल नहीं रहता और ऐसी स्थितियों में आमतौर पर प्रशासनिक मशीनरी कमजोर हो जाती है और विपरीत शक्तियां उसे विरोधी दिशाओं में खींचने लगती है।

9 अगर यह दृष्टिकोण सही है तो प्रधानमंत्री को पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिए कि वह कभी भी किसी भी तरीके से कारवाई कर सके। बेशक इस तरह की कारवाई से स्थानीय अधिकारियों के कामों में अनुचित हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए क्योंकि तात्कालिक जिम्मेदारी तो उन्हीं की होती है। स्पष्ट है कि प्रधानमंत्री सरकारी सेवाओं से उतनी ही निष्ठा और सहयोग की अपेक्षा करता है जितना कि कोई और व्यक्ति।

10 अगर प्रधानमंत्री की कार्य पद्धति इस तरह की नहीं होगी तो वह बराय नाम सरकार का अध्यक्ष होगा और सरकारी सेवाओं तथा जनता को उस सूरत में बहुत नुकसान उठाना पड़ेगा जब मंत्री लोग परस्पर विरोधी नीतियों पर अमल करेंगे।

11 यह हुई मेरी बात की पृष्ठभूमि। लेकिन चाहे कोई सा भी सूत्र लगायें व्यावहारिक कठिनाइयाँ निरंतर खड़ी होती रहती हैं। आमतौर पर इन कठिनाइयों को हल करने का तरीका यही हो सकता है कि इसके लिए मंत्रिमंडल में कुछ व्यवस्था की जाय ताकि औरों की तुलना में एक व्यक्ति को अधिक जिम्मेदारी सौंपी जा सके। मौजूदा हालात में या तो मुझे या सरदार पटेल को सरकार से बाहर हो जाना चाहिए। अपनी तरफ से मेरा यही कहना है कि मेरा ही बाहर जाना ठीक रहेगा। किंतु मेरे या उनके बाहर जाने से यह मतलब न निकाला जाय कि हम बाद में किसी तरह का विरोध खड़ा करेंगे। चाहे सरकार में रहें या सरकार से बाहर हम न केवल निष्ठावान कांग्रेसी रहेंगे बल्कि एक दूसरे के भी

निष्ठावान सहयोगी बन रहेंगे। तब भी हम अपने-अपने कार्य-क्षेत्रों में एक दूसरे से सहयोग करने का प्रयत्न करेंगे।

12 इसमें कोई शक नहीं कि मौजूदा स्थिति में हम दोनों में से किसी के भी बाहर जाने से राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सनसनी फैलेगी जिसके परिणाम अच्छे नहीं होंगे। लेकिन आगे किसी भी समय इस स्थिति का सामना करना पड़ सकता है। राज्यों के पुनर्गठन और भारत में साम्प्रदायिक संगठनों के फैलाव की समस्या को जाने भी दें तो इस समय कश्मीर का प्रश्न और पुनर्वास की समस्या हमारे सामने विकट रूप में हैं और इस समय एक-दूसरे से अलग चलने के भयानक परिणाम हो सकते हैं फलस्वरूप भारत का अहित हो सकता है। हम में से कोई भी ऐसा काम नहीं करना चाहेगा जिसमें राष्ट्र का अहित हो चाहे हमारी राष्ट्रीय अहित की परिभाषा एक दूसरे से पृथक ही क्यों न हो। पिछले पखवाड़े मैंने इस विषय पर गंभीरता से विचार किया है और मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि जहाँ तक हो सके हमें इस अवसर पर सरकार में एक-दूसरे से अलग नहीं होना चाहिए। हम बदलती हुई स्थितियों के दौर में से गुजर रहे हैं और सरकार में होने वाले किसी भी गंभीर परिवर्तन से सत्यानाश हो सकता है। मेरे खयाल से हम कुछ महीने और एक-दूसरे के साथ तब तक गाड़ी खींचनी चाहिए जब तक कश्मीर की समस्या और स्पष्ट रूप नहीं ले लेती और दूसरी समस्याओं को कुछ हद तक हल नहीं कर लिया जाता। यह सब कुछ करने का एक ही तरीका है कि हम एक दूसरे से पूरी तरह विचार विमर्श करें। इसके साथ ही ऊपर बताये गये प्रधानमंत्री के वक्तव्य को सही परिप्रेक्ष्य में रखकर परखें।

13 अगर ऐसा न हो सके तो मेरे या सरदार पटेल के सामने मंत्रिमंडल से हट जाने के अलावा और कोई विकल्प नहीं है। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ कि मौजूदा स्थिति में यह बहुत ही अनुपयुक्त होगा। इस निष्कर्ष पर मैं पूरी तटस्थता से सोच विचार के बाद पहुँचा हूँ। मैं फिर कहता हूँ कि अगर हम में से कोई भी सरकार से बाहर जाता है तो वह व्यक्ति मैं ही होना चाहूँगा।

14 पिछले कुछ अरसे से विभिन्न मंत्रालयों और सरकारी विभागों में ताल मेल न रखने की प्रवृत्ति रही है। इसमें विभिन्न सेवाओं के अधिकारियों पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। यह बड़े खेद का विषय है और हर सूरत में इस पर काबू पाया जाना चाहिए क्योंकि अगर मंत्रिमंडल और सरकार संयुक्त रूप से काम नहीं करती तो निश्चय ही सभी कामों पर बुरा असर पड़ता है और इससे देश में एक ऐसी मानसिकता पनपती है, जो सहयोग से काम करने में बाधा डालती है।

15 शायद जल्दी ही हम सरकारी ढाँचे में परिवर्तन करने पर विचार करना पड़ेगा और उप मंत्री संसदीय सचिव और ऐसी तरह के पद बनाने पड़ेंगे। कुछ विभाग उप मंत्रियों को सौंपना ठीक रहेगा और इस तरह के उप मंत्रियों की हरेक टीम एक मंत्री की निगरानी में रहेगी। इससे वास्तविक मंत्रिमंडल अपेक्षाकृत कुछ छोटा संगठन बन जायगा। इस समय विभागों का विभाजन तर्कसंगत नहीं है और कुछ विभाग बहुत बड़े हो गये हैं।

16 राज्य मंत्रालय एक नया मंत्रालय है जिसे बहुत सी अहम समस्याएं हल करनी पड़ती है। अब तक इन समस्याओं को बड़ी सफलता से हल किया गया है और बार बार सिर उठाने वाली दिक्कतों पर काबू पा लिया गया है। लेकिन मेरा खयाल है कि नीति-संबंधी मामलों पर पहले मंत्रिमंडल में विचार विमर्श किये बगैर भी कुछ निर्णय लिये गये हैं। वैसे मैं इन निर्णयों से सहमत हूँ, लेकिन

मन्त्रिमडल या प्रधानमन्त्री की जानकारी म लाये बिना इस तरह निणय लेने का तरीका अनुचित है। नया मत्रालय होने के कारण यह सामान्य पद्धति से हटकर काय करता है। बस कुछ सीमा तक यह जरूरी भी है, क्योंकि निणय तुरत लने पडते है। लकिन हमारी साधारण पद्धति के अनुरूप इन कार्यों के निष्पादन का प्रयत्न अवश्य किया जाना चाहिए।

17 संविधान-सभा की बठक से पहले या उसके अगले सत्र म हम इस विषय पर किसी-न किसी निणय पर पहुँचना होगा कि हमारी सामान्य आर्थिक नीति क्या होनी चाहिए। इसी नीति से पुनवास की समस्या को भी सम्बद्ध करना पड सकता है।

नयी दिल्ली
6 जनवरी 1948

परिशिष्ट—3

प्रधानमंत्री को एम ओ मथाई का पत्र

नयी दिल्ली
12 जनवरी 1959

प्रिय पंडितजी

मैं आपके सामने पहले ही कुछ ऐसे साम्यवादी समाचारपत्रों और अन्य पत्रिकाओं की कतरनें रख चुका हूँ जिन्होंने आमतौर पर सनसनीखेज चीजें छापने में विशेष दक्षता प्राप्त कर रखी है। इन समाचार पत्रों में सभ्य भाषा के प्रयोग से बचा गया है और इनमें ऐसी बातें दी गयी हैं जो मुझे नागवार गुजरी हैं। साम्यवादी समाचारपत्रों में जो कुछ भी लिखा गया है वह तथाकथित इंडियन प्रेस एजेंसी द्वारा प्रसारित समाचारों से लिया गया है। आई पी आई स्वयं में साम्यवादी प्रचार का माध्यम है।

चूँकि आपको सभी तथ्यों का पता है इसलिए मुझ पर लगाये गये दावों की सफाई आपके सामने देने की जरूरत मैं नहीं समझता। फिर भी इस पत्र में उन सभी तथ्यों का उल्लेख करना मैं उचित समझता हूँ।

जहां तक ट्रस्ट का संबंध है उसके बारे में राजकुमारी अमृतकौर आपको लिख चुकी है। यह ट्रस्ट मेरी माताजी के नाम पर है जिनका देहांत कई बरस पहले हो चुका है। राजकुमारी अमृतकौर और अपने खास दोस्तों को मैं अपनी माताजी के बारे में बहुत सी बातें बता चुका हूँ। जब राजकुमारी अमृतकौर ने ट्रस्ट का नाम मेरी माताजी के नाम पर रखने का प्रस्ताव रखा तो मैंने कोई आपत्ति नहीं की। मैं यहाँ केवल उन्हीं बातों पर लिखूंगा जिनमें मुझ पर व्यक्तिगत हमला किया गया है। बाकी बेवकूफी भरी बकवासों और सतही बातों तथा व्यय के दोषों पर मैं कुछ नहीं कहूँगा क्योंकि वे इसी काबिल हैं कि उन पर कुछ न कहा जाये।

जनवरी 1946 में जब मैंने इलाहाबाद में आपके साथ काम करना शुरू किया था तो उस समय उस काम से मुझे कोई आर्थिक लाभ नहीं होना था। आप मेरी पृष्ठभूमि से पूरी तरह परिचित थे। आपको उन परिस्थितियों के बारे में भी पता था जो उस समय मेरे पास थीं और जिनकी वजह से मैं बिना कोई वेतन लिये, अनिश्चित काल तक काम कर सकता था। आपको यह भी याद होगा कि जब 2 सितंबर 1946 को अंतरिम सरकार बनी तो मैंने सरकार में काम करने

से इंकार कर दिया था। 15 अगस्त 1947 को स्वाधीनता मिलने पर, आपने मुझसे सरकार में काम करने को कहा था। मैंने इस प्रस्ताव पर विशेष उत्साह नहीं दिखाया क्योंकि मेरे ख्याल से मैं सरकारी काम के लिए स्वभाव से ही अनुपयुक्त था। फिर अविवाहित होने के कारण मेरे पास अपने अकेले के लिए काफी कुछ था और मुझे वेतन पर कहीं नौकरी करने की कोई जरूरत नहीं थी। चूंकि आपके विचार में मेरे सरकार में आने से आपको काम में सुविधा होगी इसलिए बिना कोई वेतन लिये मैं सरकार में आने को राजी हो गया। लेकिन सिद्धांत रूप से आपका मेरा वेतन न लेना पसंद न था।

इसी तरह तभी से मैं एक प्रकार का तदर्थ अस्थायी सरकारी नौकर रहा हूं और यह मुझे कभी पसंद नहीं रहा है। आपको यह भी याद होगा कि पिछले कई बरसों में मैंने कम से-कम दर्जन बार आपसे अनुरोध किया है कि मुझे सरकारी कार्य से मुक्ति दी जाये। मैं इस दौरान आप ही के निवास में रहता रहा हूँ और चूंकि मुझे कोई घर गृहस्थी नहीं चलानी पड़ती इसलिए मेरे खर्च भी बहुत सीमित रहे हैं।

मेरा हमेशा से यह विचार रहा है और अब भी है कि यह मेरा अपना निजी मामला है कि मैं अपने पैसे का क्या करता हूँ बशर्ते मैं संसद द्वारा निर्धारित कर देता रहूँ। इसके लिए मैं किसी को जवाबदेह नहीं हूँ।

यह सच है कि मैंने फलों का एक बाग कुल्लू घाटी में 1952 में दो स्काट बहनों से 1,0 000 रुपये में खरीदा था जिसके साथ पूरा सजा-सजाया एक घर भी था। रजिस्ट्री और दूसरे खर्च 5 000 रुपये से ऊपर बैठे थे। यह सारा धन मेरी उन परिसंपत्तियों से आया था, जो मेरे पास आपके साथ काम शुरू करने से पहले थीं।

कुल्लू में जायदाद खरीदने से पहले मैं आपको अपने इरादे की सूचना मौखिक और लिखित रूप में दे चुका था। वह विस्तृत नोट अब भी मेरे पास है जो इस विषय में मैंने आपको दिया था। कुछ समय बाद मुझे लगा कि जब तक मैं अपने बाग पर न रहूँ तब तक जायदाद का कुशलता से प्रबंध करना कठिन होगा। इसलिए मैंने वह जायदाद बेच दी। इसे कलकत्ता की फर्म मार्टन एंड कंपनी ने खरीदा जो फलों की डिब्बाबंदी का काम करती थी। बचन पर मुझे 1 25 000 रुपये मिले। इस सौदे में मुझे कुछ सौ रुपये का घाटा हुआ। मैं सबके सामने घोषणा करना चाहता हूँ कि जब मैं स्वतंत्र होऊँगा तो मेरा इरादा हिमालय क्षेत्र में एक उचित जगह खरीदने का है क्योंकि हिमालय मुझे हमेशा अपनी तरफ आकर्षित करता रहा है।

अंतिम दोष मुझपर यह लगाया गया है कि मैंने कई जीवन बीमा पालिसियां ले रखी हैं। अगर मेरे कम्युनिस्ट दोस्त मेरे पास आकर मुझसे पूछने का कष्ट करते तो मैं उन्हें खुशी-खुशी बता देता कि मैंने एक नहीं कई वार्षिकी पालिसियां ले रखी हैं। इन पालिसियों पर मैं प्रतिवर्ष रुपये 18 290 62 पैसे प्रीमियम देता हूँ। मैं आपको भी इन पालिसियों के बारे में लिखित रूप में सूचना दे चुका हूं। अपने कम्युनिस्ट दोस्तों की जानकारी के लिए बता दूं कि आय कर वगैरह देने के बाद वेतन और नियोजनों से मेरी वार्षिक आय लगभग 27 500 रुपये है। यह आंकड़े अपने आप में पर्याप्त होंगे। दरअसल हर वर्ष मुझे अतिरिक्त बचत होती रहती है। बचत की इन रकमों को मैं किसी न किसी सरकारी बचत-योजना में लगा देता हूं।

आई पी आई के समाचार म बताया गया है कि अमरीकी सकिल म मेरी दोस्ती कभी कभी बहुत ही उजागर होकर सामने आ रही है। पढकर मुझे बहुत हंसी आयी। आप जानत ही हैं कि मैं मिलनसार आदमी नही हूँ और मैं ज्यादातर अपने काम म ही जुटा रहता हूँ। अमरीकी रूसी और सभी विदेशी मेरे मित्र हैं काई मेरा दुश्मन नहीं। अपन देश के अतिरिक्त किसी और देश के प्रति निष्ठावान हान मे मैं अपन कम्युनिस्ट दास्तो का मुकाबला नही कर सकता।

मुझे लगता है कि कम्युनिस्ट दोस्ता का यह निदनीय हमला निश्चय ही कि ही राजनतिक कारणा स किया गया है। यह भी स्पष्ट है कि यह हमला परोक्ष रूप म आप पर और सरकार पर किया गया है। डर है कि यह राजनीतिक नीतियो म घातक परिवतन का सूचक है, जो साम्यवादी दल में अक्सर हाते रहत हैं। खतरा इसी बात का है कि हमारे कुछ काग्रेसी लोग उनके इस जघ य खेल का शिकार हो जात है।

आपको कभी कभी या निरतर एक या एक से अधिक व्यक्तियो का बचाव करत रहना पडता है। मैं उन विशिष्ट लोगो म शामिल हाने का न तो दावा करता हूँ और न ही मुझे कोई अधिकार है। मैं अपना बचाव अपने आप करना चाहता हू। अपनी मौजूदा स्थिति म मैं ऐसा नही कर सकता। इसलिए मेरा आपसे अनुरोध है कि आप मुझे सरकार से सबध विच्छेद करन की अनुमति दें। फिर मैं आपके साथ काम करन उस समय आया था जब आपको सरकार से कुछ लना देना नही था। सरकार से बाहर रहकर मैं अब भी शायद आपके कुछ काम आ सकता हूँ। ऐसा करने म म अपन बधना के अतिरिक्त और कुछ नही खाऊँगा और यह वह बात है जिसे मेरे कम्युनिस्ट दोस्त तुरत समझ लेंगे।

मैं अपने इस पत्र को राजकुमारी अमृतकौर के पत्र के साथ समाचारपत्रो को देने की अनुमति आपस चाहता हूँ। सीध व्यक्तिगत हमल की उतनी नही जितनी फिक्र मुझे गदी अफवाहा की है। हालाकि इस तरह क व्यक्तिगत ब्यौरे म मुझे शम महसूस हाती है फिर भी सभी लोगा का बताने के लिए मैं इ ह समाचारपत्रो का देना चाहता हूँ। मुझे अपने देश के इतिहास के महत्वपूण दौर म आपके साथ काम करन का गव और सम्मान प्राप्त है और मेरे जैसा व्यक्ति जनता के कटघरे मे सबके सामने बखुशी खडा होने और उनके सभी सवालो क जवाब देने को तयार है। इसके बाद मैं उन समाचारपत्रो के विरुद्ध कोई कदम उठान के बारे म सोचूगा जि होने मेरे विरुद्ध अपमानजनक लख छाप है।

मैं बहुत पहले ही इस मामले मे कुछ करने की सोच रहा था लकिन कोई भी कदम उठाने स पहले मैंने आपके नागपुर से दिल्ली लौटन की प्रतीक्षा करना उचित समझा।

सौभाग्य से अभी मुझमे इतना दम बच रहा है कि दन हमलो का जवाब द सक। लेकिन तथ्यो की पडताल किये बिना लोकसभा और समाचारपत्रो म सरकारी अधिकारिया पर हमल की प्रवत्ति दिन-ब दिन बढती जा रही है जिससे उनका मनोबल बुरी तरह से गिरता जा रहा है। ऐसी अशोभनीय स्थिति म सरकारी सेवा या जन जीवन मे कोई भी स्वाभिमानी व्यक्ति नहा आना चाहेगा।

मुझे विश्वास है कि आप मेरा अनुरोध स्वीकार करेंगे। आपने पिछल तरह वर्षों मे मुझस जो स्नेहपूण व्यवहार रखा है उसके लिए मैं आपका हृदय स आभारी हूँ।

मैं जहाँ कहीं भी होऊँ, हमेशा की तरह मेरा स्नेह सम्मान आपके प्रति बना रहेगा।

सस्नेह आपका
हस्ताक्षर—एम ओ मथाई

प्रधानमन्त्री के नाम राजकुमारी अमृतकौर का पत्र

2 विलिंगडन क्रिसेंट
नयी दिल्ली
11 जनवरी 1959

प्रिय जवाहरलाल

चचम्मा ममोरियल ट्रस्ट क बारे में समाचारपत्रों में छपी खबरें पढ़कर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैं उस ट्रस्ट की अध्यक्षा हू। इस ट्रस्ट की पृष्ठभूमि के बारे में मैं आपको कुछ जानकारी देना चाहूँगी। यह एक जन परोपकारी ट्रस्ट है और सोसायटीज़ रजिस्ट्रेशन एक्ट के अधीन पंजीकृत है।

आज स कुछ वर्ष पहले मेरे कुछ विशिष्ट मित्रों ने जिन्हें मैं वरसों स जानती हू कुछ धन (6 लाख स कुछ अधिक) मुझे सौंपा था जिसे मैं विशेष लोकोपकारी उद्देश्य म व्यय कर सकती थी। मैंने इस धन को शुरू म ही एक बक म जमा करा दिया। चकि इसे मैं ज्यादा लबे अरसे तक अपने पास नहीं रखना चाहती थी इसलिए बाद म मैंने एक ट्रस्ट बनाने का निश्चय किया। मैंने इसकी ट्रस्टी बनने के लिए श्री एम ओ मथाई और कुमारी पद्मजा नायडू स अनुरोध किया। यह कुमारी पदमजा नायडू के पश्चिमी बगाल क गवनर बनने म पहले की बात है।

मुझे पता है कि इसका ट्रस्टी बनने स पहले श्री एम ओ मथाई न महालेखा नियंता और परीक्षक स सलाह ली थी कि क्या उनका ट्रस्टी बनना उचित है। उन्होंने मथाई साहब को आश्वासन दिया था कि जन लोकोपकारी ट्रस्ट का ट्रस्टी बनना किसी भी सरकारी कर्मचारी के लिए अनुचित नहीं और इसके लिए सरकारी अनुमति लेने की भी आवश्यकता नहीं। फिर भी उन्होंने गृह मंत्रालय स ट्रस्टी बनने की औपचारिक लिखित अनुमति लेने की एहतियात बरती।

मैं स्वय गुरु नानक इजीनियरिंग कालेज की कुछ समय स और गांधी स्मारक निधि की शुरू से ही ट्रस्टी रही हू। ग्रप कप्टेन लियोनार्ड चैशायर ने भी अपने 'होम्ज़' के लिए एक ट्रस्ट बनाया है और उसकी भी मैं ट्रस्टी हूँ।

ट्रस्ट का नाम रखने की पूरी जिम्मेदारी मेरी है। चचम्मा जीवन म उन बातों की प्रतीक रही है जिनका प्रतीक हमारी भारतीय स्त्रियां युगों युगों से रहती आयी हैं—जाति की निष्ठावान माता। मुझे लगा कि भारतीय स्त्री क नाते मुझे जिस स्त्रीत्व पर गर्व है उसके प्रतीक रूप म यह अनाम नाम बहुत ही उपयुक्त रहेगा। इसके अलावा ट्रस्ट का उद्देश्य ट्रस्ट के धन और आय को ऐसे कामों पर खर्च करना है जो लोकोपकारी घोषित किये जाय।

मैं ट्रस्ट क उद्देश्य नीचे लिख रही हूँ

(1) ऐसे विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति प्रदान करना जो ट्रस्टियों की राय म सामान्य और विशेष शिक्षा प्राप्त करने क योग्य हों। अनुसंधान और शैक्षिक यात्राएँ भी इसी क अंतर्गत आती हैं।

(2) चिकित्सा-सुविधा उपलब्ध कराने वाले अस्पतालों और अन्य जन संस्थानों को आर्थिक सहायता।

(3) पूर्णतया स्वयंसेवी सामाजिक कार्यों में जुटे व्यक्तियों को आर्थिक सहायता।

(4) स्त्रियों और बच्चों के कल्याणार्थ बने संस्थानों को आर्थिक सहायता।

(5) ऐतिहासिक और शैक्षिक महत्व की पुस्तकों के लेखन और प्रकाशन के लिए आर्थिक सहायता।

समाचारपत्रों में छपी खबरों ने ट्रस्ट निकाय के हिसाब किताब को बहुत बढ़ा चढ़ा कर दिखाया है। ट्रस्ट के पास कुल रुपये 10 73 683 31 पैसे हैं जिसमें उसके आवास के लिए इमारत खरीदने पर खर्च किया गया धन भी शामिल है। खबरों में लिखा गया है कि श्री शांतिप्रसाद जैन और बम्बई के दूसरे बहुत से व्यापारियों ने इस ट्रस्ट को दान दिया है। यह बात बिल्कुल गलत है। मैं बहुत ही सख्त शब्दों में इस आरोप का खंडन करती हूँ कि श्री हरिदास मूंधड़ा ने ट्रस्ट को कोई दान दिया है। मैं स्पष्ट शब्दों में कहना चाहूंगी कि मैंने ट्रस्ट के लिए इस तरह का कोई दान किसी भी ऐसे व्यक्ति से नहीं लिया है जिसे मैं पिछले पच्चीस बरसों से न जानती होऊँ।

अब तक हमने 25 000 रुपये व्यय किये हैं। यह धन उत्तरी भारत के एक ऐसे शैक्षिक संस्थान को दिया गया जो ग्रामीण स्त्रियों के प्रशिक्षण में रचनात्मक कार्य कर रहा है। यह धन मेरे कहने पर दिया गया।

ट्रस्ट को मकान का दान मेरे माध्यम से मेरे एक मित्र ने किया, जिन्हें मैं बरसों से जानती हूं। दानकर्ता से मेरा करार हुआ था कि मकान के हस्तांतरण के सिलसिले में हुआ व्यय उन्हें वापस दिया जायगा। यह व्यय लगभग 75 000 रुपये थे।

लेकिन मुझे बताया गया कि चूंकि इस पुराने धुराने मकान का किराया सिर्फ रुपये 189 06 पैसे प्रति माह है इसलिए निवेशन की दृष्टि से इस मकान का अधिग्रहण हानिकर है क्योंकि 75 000 रुपये पर बैंक का ब्याज ही बहुत ज्यादा होगा। फिर आजकल उस मकान का किरायेदार एक हयर ड्रेसर है जिसे उसमें से निकालने में मुझे बड़ी दिक्कत हो रही है। इन कारणों से ट्रस्ट को अच्छी से अच्छी कीमत पर यह मकान बेचना पड़ेगा। मेरा इरादा भी इसे बेचने का है।

उपहार-करार को तैयार कराने की जिम्मेदारी पूरी तरह से दानकर्ता पर थी। ट्रस्ट इस मामले में कतई जिम्मेदार नहीं। फिर भी मैं कहना चाहूँगी कि संपदा कर अधिनियम के अनुसार किसी भी मकान की कीमत उसके वार्षिक किराये से बीस गुना आंकी जाती है। इस प्रकार ट्रस्ट को दान में मिले मकान की कीमत रुपये 45,374 40 पैसे बैठती है लेकिन ट्रस्ट को किसी भी तरह से इसके लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता।

ट्रस्ट के अध्यक्ष के नाते इसकी निधियों के इस्तेमाल की पूरी जिम्मेदारी मुझ पर है। मेरी अनुमति के बिना ट्रस्ट में से एक भी पैसा खर्च नहीं किया जा सकता। जैसा कि समाचारपत्र की खबरों में बताया गया है उससे एकदम उलट श्री एम ओ मथाई प्रबंधक-ट्रस्टी नहीं हैं।

ट्रस्ट के खातों की लेखा परीक्षा चार्टर्ड एकाउन्टेंट्स की एक फर्म करती है जो सरकार की अनुमोदित सूची में है।

मुझे यह देखकर दुःख होता है कि हमारे जन जीवन में धीरे धीरे गिरावट

आती जा रही है। लोगा पर हमला किया जाता है उन पर आरोप नगाय जात है और तथ्या की पडताल की जरा सी कोशिश के बगर दोषारोपण किया जाता है।

जहाँ तक श्री एम ओ मथाई पर किय गय व्यक्तिगत हमला का सबध है, व निश्चय ही अपन-आप उनस निपटेंग।

आप इस पत्र का जिस तरह चाह उपयाग कर सकत हैं।

सच्च आपकी
हस्ताक्षर—अमतकौर

प्रधान मत्री-सचिवालय
नयी दिल्ली 15 जनवरी 1959

उपरिलिखित 17 जनवरी 1959 शनिवार स पहल प्रकाशित या प्रसारित न किया जाये।

वी आर वी/आर ए के
1000/15 1 59/15 15/228 पी आर एम

परिशिष्ट—4

पत्र स० 1046—पी एम एच/59 दिनाक 6 मई, 1959
प्रधानमंत्री द्वारा राज्यसभा के अध्यक्ष को

अध्यक्ष महोदय

ससद म श्री एम ओ मथाई पर लगाये गये अनक दोपा स आप परिचित हागे। 11 फरवरी को मैंने मत्रिमडल सचिव से इन दोपा की पडताल करने और यह पता लगाने का नरोध किया था कि क्या श्री एम ओ मथाई न सरकार के अधीन अपने कायकाल म सरकारी पद का कोइ दुरपयोग किया है ? यह पडताल मैंने अपनी जानकारी के लिए छानबीन के रूप म करायी थी। मैंने ससद म कहा था कि मत्रिमडल-सचिव की रिपोट मिलत ही मैं इस वित्त मत्री और महालेखा निय ता और परीक्षक के पास अलग अलग भेज दूगा ताकि व किसी भी काय के वित्ताय औचित्य पर निणय न सकें।

मत्रिमडल सचिव न यह रिपोट मुझे 2 मई 1959 को भजी। मन इसकी प्रतिया महालखा निय ता और परीक्षक को भेज दी था। साथ म उनकी टिप्पणियाँ भी सलग्न हैं।

विभागीय जाच को प्रचारित करन का तरीका आम नही है। फिर मौजूदा जाँच विभागीय जाच न हाकर तथ्य मालूम करने के लिए एक पडताल से अधिक नही।

मैं पहल ही कह चुका हूँ कि मत्रिमडल सचिव की रिपोट या अपनी रिपोट मैं आपको भेजूगा। इसीलिए मैं यह पत्र आपको लिख रहा हूँ और इसके साथ ही अपना एक नोट भी नत्थी कर रहा हूँ, जो मैंने मत्रिमडल सचिव की रिपोट के आधार पर लिखा है। इस नोट म मत्रिमडल सचिव की टिप्पणियाँ और निष्कप सक्षेप म दिये गय है।

मत्रिमडल सचिव का रिपोट और महालखा निय ता और परीक्षक तथा वित्त मत्री की टिप्पणिया पर विचार करन के बाद मैं इस निष्कष पर पहुँचा हूँ कि श्री मथाई न अपने सरकारी पद का दुरपयोग कतई नही किया है।

भवदीय

हस्ताक्षर—जवाहरलाल नेहरू

श्री एम ओ मथाई पर लगाये गये कुछ आरोपो के सबध मे प्रधानमत्री का नोट

1 मैंने 11 फरवरी 1959 को मत्रिमडल सचिव से कहा कि वे इन दावो की जाच करें कि क्या श्री एम ओ मथाई ने सरकारी सेवा म रहने क दौरान अपने पद का दुरुपयोग किया है, और इसके बाद वे अपनी रिपोर्ट मुझे पेश करें। कुछ दिनो बाद 17 फरवरी को गृह मत्री ने राज्यसभा म घोषणा की कि इन आरोपो के बारे म जिस किसी के पास भी कोई जानकारी हो वह उस मत्रिमडल-सचिव के पास भेज दे। उन्हे कोई जानकारी नही भेजी गयी। हा जेन स किसी व्यक्ति का पत्र जरूर प्राप्त हुआ था जिसम सबूत दिये बिना कुछ सामान्य आरोप लगाये गये थ। इसके अलावा एक पत्र और भी मिला था जिस पर भेजने वाले का नाम नही था।

2 मत्रिमडल-सचिव ने श्री मथाई की वित्तीय स्थिति के बारे म उन्ही से उनके विवरण प्राप्त किये। उन्होने उनके द्वारा दाखिल किये गये आय कर और सपदा कर के विवरण भी देखे। एक बैंक की पास-बुक और दूसरे बैंक की खाता विवरणी की भी उन्होने पडताल की। उन्होने पाया कि श्री मथाई के बयान और बैंको से मिली जानकारी मेल खाती है।

3 श्री मथाई पर सरकारी सेवा म रहने के दौरान अपने सरकारी पद के दुरुपयोग का आरोप लगाया गया था। मत्री म आने स पहले आसाम-बर्मा सीमा पर अमरीकी एडमास म सेवा और अमरीकी अतिरिक्त सामग्री के निपटान स मिला उनके पास काफी रुपया था। सरकार म मेरे प्रवेश स पहले इलाहाबाद म श्री मथाई मेरे पास आये थे। मैंने उनसे कहा था कि मैं उन्हे उचित वेतन देने की स्थिति म नही हूँ। उन्होने उत्तर दिया था कि आसाम बर्मा सीमा पर एडमास म सेवा करने के दौरान उन्होने काफी धन अर्जित किया है और वे वेतन लिये बगर कई वर्षों तक अपना गुजारा कर सकते है। जहा तक मुझे याद है उन्होने दो या तीन लाख रुपया अपने पास जमा बताया था। सरकार म मेरे आने के बाद भी वे बिना वेतन के मेरे साथ रहे। बाद म उनका वेतन 750 रुपये और फिर 1 500 रुपये प्रतिमास निर्धारित किया गया। उन्हे विशेष अधिकारी का पद दिया गया और उनका पद नियमित नही था जो प्रधानमत्री सचिवालय के लिए अनिवार्य होता है। उनकी नियुक्ति तदर्थ और अस्थायी आधार पर की गयी थी और उन्हे स्थायी सरकारी नौकर नही माना जाता था।

4 उनके पास शुरू का पैसा और वेतन तथा लाभाश और ब्याज से होने वाली आय को देखकर मत्रिमडल सचिव ने उन विभिन्न भुगतानो और खरीदो को उचित पाया है जो बाद मे की गयी हैं और जिनका हवाला विविध विवरणो और बैंक विवरणियो म मिलता है। इसी म स वे समय समय पर अपने रिश्तेदारो को भी पैसा देते रहे है।

5 कुल्लू घाटी म खरीदी गयी जायदाद 1 20 000 रुपये की थी और उसका बिक्रीनामा रजिस्ट्री के साथ था। इसे खरीदने के लिए उन्होने अपने शेयर और दूसरे नियोजन बेचे थे। कुछ समय बाद उन्होने यह पाया कि वह कुल्लू घाटी की अपनी जायदाद का प्रबध दिल्ली बैठे नही कर सकते इसलिए उन्होने उसे लगभग खरीदी गयी कीमत पर ही बेच दिया। इस सौदे की जानकारी उन्होने

खरीदने और वचन से पहले मुझे दे दी थी। मन्त्रिमंडल सचिव का खयाल है कि इस सौदे में उन्होंने अपने सरकारी पद का दुरुपयोग नहीं किया।

6 उन्होंने जो बीमा-पालिसियाँ ले रखी हैं उनमें कुछ को उन्होंने वार्षिकी भृति में बदलवा लिया है। इनका भुगतान कुछ तो अपने पास के पैसे से किया है और कुछ अपनी भविष्यनिधि में से निकालकर किया है। मन्त्रिमंडल सचिव की राय में इन मामलों में से भी किसी में उन्होंने अपने पद का दुरुपयोग नहीं किया है।

7 'चैचम्मा मेमोरियल ट्रस्ट' के मामले का जहाँ तक संबंध है यह ट्रस्ट अगस्त 1956 में कायम किया गया था और यह जनोपकारी ट्रस्ट है। इसके मूल ट्रस्टी राजकुमारी अमृतकौर और श्री एम ओ मथाई हैं। ट्रस्ट के उद्देश्य हैं ऐतिहासिक और शैक्षिक मूल्य की पुस्तकों के प्रकाशन में वित्तीय सहायता विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियों का अनुदान, स्वयंसेवी सामाजिक सेवाओं के कार्यकर्ताओं, अस्पतालों तथा चिकित्सा-सुविधा देनेवाले संस्थानों को आर्थिक सहायता तथा स्त्रियों और बच्चों के कल्याण हेतु बने संस्थानों की आर्थिक मदद देना। बाद में एक ट्रस्टी और नियुक्त किया गया—पद्मजा नायडू को। इसका कोई भी व्यक्ति अकेला मनेजिंग ट्रस्टी नहीं है। श्री एम ओ मथाई ने बताया है और राजकुमारी अमृतकौर ने पुष्टि की है कि सभी दान राशियाँ राजकुमारी ने प्राप्त की हैं। श्री एम ओ मथाई न तो दानकर्ताओं के पास गये हैं और न ही उन्होंने दान राशियाँ एकत्र की हैं।

8 इस ट्रस्ट के निर्माण के अवसर पर श्री एम ओ मथाई ने इस विषय को भारत के महालेखा नियन्ता और परीक्षक के पास भेजा था और इसके ट्रस्टी बनने के औचित्य के बारे में पूछा था। उन्हें उत्तर मिला था कि इसमें कोई आपत्ति नहीं। लेकिन श्री मथाई ने औपचारिक रूप से गृह मन्त्रालय को इस विषय में लिख दिया था। गृह सचिव ने उत्तर दिया था कि इसमें कोई आपत्ति नहीं है। इसका उल्लेख उन्होंने मुझसे भी किया था।

9 इस ट्रस्ट को नकद दान राशियां 10,12 000 रुपये की मिली। इसके अलावा 3 जनवरी 1958 को मेसर्स बिड़ला काटन स्पिनिंग और वीविंग मिल्स दिल्ली ने 9 तीस जनवरी मार्ग का मकान दान में दिया। मन्त्रिमंडल के सचिव ने सर्वेक्षण-अधीक्षक से इसका मूल्यांकन कराया, जिन्होंने रिपोर्ट दी कि इस मकान और भूमि का मूल्य 1,87 000 रुपये है। श्री जी एम बिड़ला ने बताया है कि ट्रस्ट के उद्देश्यों के लिए राजकुमारी अमृतकौर के अनुरोध पर यह मकान दिया गया है।

10 राजकुमारी अमृतकौर का बयान है कि सभी दानराशियां इस मंतव्य के साथ इकट्ठी की गयी थीं कि उन्हें गुप्तदान माना जायगा। इसलिए वे दानकर्ताओं का नाम बताने को तैयार नहीं। दरअसल उन्होंने मुझे और मन्त्रिमंडल-सचिव को उन नामों की सूची निजी रूप से दिखा दी है लेकिन इस शर्त के साथ कि इन नामों का प्रचार नहीं किया जायेगा। इस सूची में बीस दान राशियों का उल्लेख है, जिनका भुगतान 14 अक्तूबर 1954 से 17 दिसंबर, 1958 तक किया गया है। इसमें से आधे से अधिक धन राजकुमारी अमृतकौर ने इस ट्रस्ट के निर्माण से पहले ही प्राप्त कर लिया था।

11 ट्रस्ट निकाय धन से अब तक केवल 25 000 रुपया खर्च किया गया है। इसके अलावा 73 000 रुपया दिल्ली के भूमि विकास अधिकारी को तीस जनवरी

माग वाले मकान के पट्टे के हस्तान्तरण के सिलसिले में दिया गया है। रुपये 1,798 56 पैसे मिल को स्टाम्प ड्यूटी और रजिस्ट्री के खर्चे में दिये गये हैं। बाकी का रुपया सुरक्षित है। भुगतान के अलावा ट्रस्ट निकाय का धन ज्यों का त्यों है। उसकी पुष्टि बैंक विवरणों से होती है। राजकुमारी अमृतकौर का कथन है कि वे धन को थोड़ा थोड़ा करके नहीं खर्च करना चाहतीं। उनका उद्देश्य पर्याप्त मात्रा में धन इकट्ठा करके लोकोपकारी उद्देश्यों के लिए ट्रस्ट का उपयोग नींव की तरह करना है।

12 मन्त्रिमंडल-सचिव का कथन है कि उनके समक्ष पेश किये गये तथ्यों के अनुसार श्री मथाई ने इस ट्रस्ट के सिलसिले में अपने सरकारी पद का दुरुपयोग नहीं किया है।

13 जहाँ तक श्री मथाई द्वारा विदेशी बैंकों में अघोषित धन के आरोप का संबंध है उसमें कोई सचाई नहीं है। लगता यह है कि कुछ पैसा प्रधानमन्त्री ने पश्चिमी जर्मनी में तत्कालीन राजदूत ए सी एन नम्बियार को किसी विशेष उद्देश्य के लिए भेजा था। बाद में श्री ए सी एन नम्बियार के बीमार पड़ जाने के कारण उन्होंने इस पैसे को संयुक्त खाते में जमा कराना उचित समझा ताकि उनके असंभावित निधन की स्थिति में इसे निकालने में कोई दिक्कत न हो। चूंकि यह पैसा श्री एम ओ मथाई के माध्यम से भेजा गया था इसलिए उन्होंने उन्हीं का नाम संयुक्त खाते के लिए शामिल कर लिया। न तो श्री मथाई को कोई चक्बुक भेजी गयी और न ही श्री मथाई ने इस खाते से कुछ लिया दिया। जाँच में पता चला है कि इस खाते में 948 50 स्विस फ्रैंक शेष हैं।

नयी दिल्ली हस्ताक्षर—जवाहरलाल नेहरू

6 मई, 1959

मन्त्रिमंडल सचिव की रिपोर्ट पर वित्त मंत्री श्री मोरारजी देसाई की टिप्पणी

श्री मथाई पर लगे आरोपों के बारे में मन्त्रिमण्डल सचिव की रिपोर्ट को ध्यानपूर्वक पढ़ने के बाद, मैंने उनसे जाँच के विषय और छानबीन पर विचार विमर्श किया था और इन निष्कर्षों पर पहुँचा हूँ कुल्लू के बाग किन्हीं स्कॉट बहनों से सही तरीके से खरीदे गये थे और उस मामले में किसी तरह की अनुचित सौदेबाजी का प्रश्न ही नहीं उठता। किसी कंपनी को इस जायदाद की बिक्री में भी कहीं कुछ अनुचित या अनौचित्यपूर्ण नहीं है। यह फर्म फलों का ठिकाबंदी करता थी और फिर जायदाद कमोबेश उतने ही पैसों में बेची गयी जितने में खरीदी गयी थी। श्री मथाई ने दोनों सौदे करने से पहले प्रधानमन्त्री को सूचित कर दिया था।

श्री मथाई की पालिसियों में भी मुझे कोई अनियमितता नहीं मिली। विभिन्न पालिसियों के प्रीमियमों के भुगतानों में भी कहीं कुछ ऐसा नहीं है जिसका हिसाब न मिलता हो। इस सिलसिले में किये गये भुगतान श्री मथाई ने अपने वेतन की आय और उस धन में से किये हैं जो उनके पास 1946 के शुरू में प्रधान मन्त्री के पास आने से पहले था। जो बड़ी पालिसी 48 000 रुपये की है उसका एक मुश्त भुगतान भविष्यनिधि में से निकाले धन और बचतपत्र बेचकर किया गया है।

पिछले दस बरस के दौरान उन्होंने अपनी बहनों और अपने भाईयों को लगभग 1 25 000 रुपया भेजा है। वह पैसा रजिस्टर्ड और बीमाकित डाक

मामला म दफ्तर के मनकों के जरिए भेजा गया और इनके बारे मे कुछ छुपाकर नही रखा गया।

इन सौदो को देखकर यह सवाल सामने आता है कि श्री मथाई के पास इतना पैसा कहाँ स आया, अर्थात यह धन वैध है या उनके पास अवैध तरीके स आया है ?

निम्नलिखित मदो म कुल रकम 5 75 000 रुपये निकलती है

(1) 13 वर्षों का 250 रुपया प्रति मास की दर से गुजारा खर्च	रुपये	39 000
(2) बीमा प्रीमियम का भुगतान		1 38 466
(3) मौजूदा परिसंपत्तियाँ खरीदने म लगा धन		2 47 000
(4) भाई-बहनो को भेजा गया धन		1 25 000
(5) बैंक शेष—24 2-1959 का		25,781
	योग	5 75,247

श्री मथाई के विवरण जताते हैं कि उनके पास 3 90 000 रुपये थे जिनम स उन्होंने 1,25 000 रुपये अपने भाई-बहनो के लिए अलग रख दिये। यह काम 1946 म प्रधानमन्त्री के पास आने स पहले किया गया। वेतन और नियोजना से उनकी कुल निवल आय 2 31 074 रुपये बैठता है। इन दोनो का जोड हुआ 6,21 000 रुपये। इससे स्पष्ट है कि मूल परिसंपत्तियो म वेतन और नियोजनो से नई आय जोडें तो वह भुगतानो और बैंक शेष से 45 753 रुपये अधिक होती है। यह रकम गुजारे के व्यय के अलावा कुछ निजी व्यय तथा 1,25 000 रुपये के अलावा कुछ भेजी गयी रकमो के परिणामस्वरूप बचती है जो कुछ अनुचित नही लगती।

अब प्रश्न यह है कि क्या श्री मथाई का वह वक्तव्य स्वीकार्य है जिसम उन्होने प्रधानमन्त्री के साथ काम शुरू करने स पहले अपने पास 3 90 000 रुपये बताये थे और जिनमे भाई-बहनो को भेजे जाने वाले 1 25 000 रुपये भी शामिल हैं। प्रधानमन्त्री के पास आने स पहले श्री मथाई अमरीकी रेडक्रास म काम करते थे। हमे बताया गया है कि श्री मथाई के कार्यों की रेडक्रास अधिकारियो ने बडी प्रशंसा की थी। यह भी कहा गया है कि इसी प्रशंसा के कारण युद्ध की समाप्ति पर जो अतिरिक्त स्टाक बच रहा था उसका एक भाग उन्हे दे दिया गया था। इस अतिरिक्त स्टाक का ज्यादातर हिस्सा नष्ट कर दिया गया था और एक हिस्सा भारतीय अधिकारियो को मिल गया था। 1946 मे अतिरिक्त स्टाक के इस तरीके के बारे म मैं और लोगो से भी सुन चुका हूँ। इसलिए इस मामले म श्री मथाई के बयान पर सदेह की कोई गुंजाइश नही निकलती खासकर उस स्थिति मे जब उन्होने प्रधानमन्त्री के साथ सेवा शुरू करने से पहले ही उन्हे बता दिया था कि उनके पास दो-तीन लाख रुपये हैं। 1947 के बाद से उनकी आय-कर और सपदा कर के भुगतान की विवरणिया नियमित हैं।

श्री मथाई का कथन है कि इनके अलावा उनके पास न तो कोई जायदाद है और न कोई धन। न ही किसी और व्यक्ति ने ऐसी जानकारी दी है कि उनके पास कोई जायदाद है। जसा कि मैंने ऊपर कहा है उनके द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण उचित है और न ही इसके विपरीत कोई सबूत ही हमे मिला है। इसलिए प्रमाण के बिना किसी का भी यह कहना उचित नही होगा कि श्री मथाई न यह

परिसपत्तियाँ अपने सरकारी पद का दुरुपयोग करके या अनुचित तरीके से प्राप्त की हैं।

प्रधानमंत्री की सेवा में आने से पहले उन्होंने अपनी परिसंपत्तियों की सूचना प्रधानमंत्री को दे दी थी और बाद में फिर बागों के मोल के बारे में भी उन्हें सूचित कर दिया था। उन्होंने बीमा पालिसियों के बारे में उन्हें इसलिए सूचना नहीं दी क्योंकि उन्हें पता ही नहीं था कि नियमों के अनुसार इस तरह की सूचना भी देनी होती है। इसका स्पष्टीकरण हाल ही में किया गया है। फिर श्री मथाई अस्थायी सरकारी कर्मचारी थे और प्रधानमंत्री के साथ ही सरकारी सेवा से निकल जाते। अर्थात किसी भी समय के स्थायी सरकारी कर्मचारी नहीं होते। वे किसी सामान्य सरकारी सेवा में नहीं थे। वहरहाल मैं पहले ही यह कह चुका हूँ कि भुगतान नियमित थे।

अब प्रश्न केवल चैचम्मा ट्रस्ट का रहता है। श्री विष्णुसहाय की जाँच से पता चलता है कि इस ट्रस्ट के मामले में कोई अनियमितता नहीं है और सारी रकम राजकुमारी अमृतकौर के प्रयत्नों से प्राप्त हुई है। एक दानकर्ता और राजकुमारी के बीच हुए पत्र-व्यवहार से इस बात की पुष्टि होती है। 1954 में श्री मथाई ने जो पत्र गृह-सचिव को यह मालूम करने के लिए लिखा था कि क्या उनका ट्रस्टी बनना गलत तो नहीं होगा उसमें स्पष्ट कर दिया था कि वे ट्रस्ट के लिए धन नहीं प्राप्त करेंगे। राजकुमारी अमृतकौर द्वारा ट्रस्ट को श्री मथाई की माँ का नाम देना और इसके लिए श्री मथाई का सहमत हो जाना समझदारी नहीं कही जा सकती लेकिन उसे किसी भी सूरत में सरकारी पद के दुरुपयोग या अनैतिक कार्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती।

राज्यसभा में गृह-मंत्री घोषणा कर चुके हैं कि अगर श्री मथाई के विरुद्ध लगे आरोपों में से किसी भी आरोप के बारे में किसी भी व्यक्ति के पास कोई जानकारी और प्रमाण हों तो वह श्री विष्णुसहाय को दे दिया जाय। कोई भी व्यक्ति विश्वसनीय सूचना या प्रमाण के साथ सामने नहीं आया। इस संबंध में यह तथ्य महत्वपूर्ण है। इन सभी बातों और श्री विष्णुसहाय द्वारा की गयी जाँच से प्राप्त उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट हो जाता है कि श्री मथाई को किसी भी प्रकार से अपने सरकारी पद के दुरुपयोग या किसी अवैध कार्य के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता जैसा कि आरोप लगाया गया है।

नयी दिल्ली
6 मई 1959

हस्ताक्षर—मोरारजी देसाई

भारत के महा लेखा नियन्ता और परीक्षक द्वारा मन्त्रिमंडल-सचिव की रिपोर्ट पर टिप्पणी

प्रधानमंत्री को प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट में मन्त्रिमंडल-सचिव ने श्री मथाई पर लगे इन आरोपों की जाँच की है कि प्रधानमंत्री के विशेष सहायक के रूप में अपने कार्यकाल में क्या उन्होंने अपने सरकारी पद का दुरुपयोग किया है। सभी उपलब्ध सामग्री के विश्लेषण के बाद मन्त्रिमंडल सचिव इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि श्री

एम ओ मथाई के द्वारा सरकारी पद के दुरुपयोग के बारे म कोई प्रमाण नही है। रिपोट पढकर मुझे भी इस निष्कप से असहमत होने का कोई कारण नजर नही आता।

हस्ताक्षर—ए के चदा
6-5 1959

ट्रस्ट की निधियो का निपटान

फरवरी 1964 म अपनी मृत्यु से पहले राजकुमारी अमतकौर न ट्रस्ट की परि-
सम्पत्तियो का निपटान कर दिया था। अनेक शक्षिक चिकित्सा सबधी और
सामाजिक सेवाओ के सगठना और सस्थाना को बडी रकमो के अनुदानो के अलावा
मुख्य लाभ प्राप्तकर्ता निम्न रहे हैं

(1) आल इडिया इस्टीच्यूट आफ मडिकल साइसज
(2) इडियन कौंसिल फार चाइल्ड वेल्फेयर
(3) हिन्द कुष्ठ निवारण सघ
(4) इण्डियन रेडक्रास सोसायटी
(5) एडविना माउटबटन ममोरियल फड
(6) मोतीलाल सन्टेनेरी फन्ड
(7) ट्यूबरक्लोसिज एसोसिएशन आफ इडिया
(8) नशनल वाई डब्ल्यू सी ए
(9) लडी इरविन कालिज
(10) सरोजिनी नायडू और मागरट कजिन्स फड

नामानुक्रमणिका